ुनिक हिन्दी साहित्य मे डा० प्रतापनारायण टण्डन की उपलब्धियाँ रचनात्मक
ाओं के क्षेत्र में विशिष्ट हैं। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, एकांकी,
ोचना तथा शोधादि क्षेत्रो मे उनकी कृतियाँ नयी दिशाओं के संकेत उपस्थित
ती हैं। प्रस्तुत कृति मे सर्वोन्मुखी प्रतिभा से सम्पन्न इस नवोदित साहित्यकार
व्यक्तित्व और कृतित्व का सम्यक् विश्लेषण पाठकों को मिलेगा। श्री राजेन्द्र-
न अग्रवाल ने इस आलोचनात्मक कृति मे समीक्ष्य साहित्यकार के उन्नतशील
हित्यिक व्यक्तित्व का शास्त्रीय दृष्टिकोण से परीक्षण करने के साथ-साथ उनके
ूल्यात्मक परिवेश के अभिनव स्वरूप का भी परिचय दिया है। निष्पक्ष
याकन के दृष्टिकोण के साथ-साथ अकुंठित भावना को आधार बना कर अनागत
अटूट आस्था का सन्तुलित समन्वय दिग्दर्शित कराने वाली यह आलोचनात्मक
ति विवेचनात्मक आयाम के एक सर्वथा नवीन क्षेत्र का उद्घाटन करती है।

प्रकाशक : विवेक प्रकाशन
किशोर बुक-डिपो
अमीनाबाद, लखनऊ

मुद्रक : अधिकार प्रेस,
२२, कैसरबाग, लखनऊ

संस्करण : प्रथम, १९६६

मूल्य : अठारह रुपये पचास पैसे

हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज

(डा० प्रतापनारायण टण्डन का साहित्य)

राजेन्द्रमोहन अग्रवाल
एम० ए०, साहित्यरत्न
पी'-एच० डी० शोधछात्र, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रकाशक : विवेक प्रकाशन
किशोर बुक-डिपो
अमीनाबाद, लखनऊ

सर्वाधिकार : लेखक के अधीन

मुद्रक : अधिकार प्रेस,
२२, केसरबाग, लखनऊ

संस्करण : प्रथम, १९६६

मूल्य : अठारह रुपये पचास पैसे

आदरणीय श्री बनारसीदास जी अग्रवाल को

विषय-सूची

अध्याय : २—औपन्यासिक उपलब्धियों के केन्द्र बिन्दु

पृष्ठ ५४-१३४

अध्याय : ३—कहानी कला का नवीन सोपान

डा० टण्डन जी की कहानियों का द्वितीय काल पृ० १९१—१९९ ।

अध्याय : ७—हिन्दी शोध: नव दिशा पृष्ठ ३१९—३७५

निवेदन

हिन्दी साहित्य की विधाओं की बहुमुखी प्रगति उसके वर्तमान स्वरूप का परिचय देने के साथ ही, प्राचीन साहित्यिक विधाओं से उसके अन्तर का भी स्पष्ट आभास दे देती है, इसके नव-विकसित रूप एक ओर प्राचीन भारतीय परम्परा का आंचल थामे हैं, तो दूसरी ओर पाश्चात्य साहित्य की ओर भी लुब्ध दृष्टि से देख रहे हैं; यही कारण है, आधुनिक हिन्दी साहित्य का आधार परम्परा-जन्य होते हुए भी रूप विन्यास से पूर्ण परिवर्तित लगता है और इसके प्रबुद्ध मनीषी भी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं। हिन्दी साहित्य की नवोदित विधाओं एवं उनके नूतन साहित्य का मूल्यांकन इस दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है; और यह मूल्यांकन तब तक अपूर्ण ही रहेगा, जब तक उससे सम्बन्धित साहित्यकारों की मन: स्थिति विशेष का परिचय प्राप्त न हो जाये। परन्तु साहित्यकारों और उनके साहित्य का अध्ययन समग्र रूप में उतना लाभप्रद नहीं है, जितना व्यक्तिपरक रूप मे है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के व्यक्तित्व और साहित्य के सन्दर्भ में रचित यह पुस्तक, इस रूप में, एक लघु, पर महत्वपूर्ण प्रयास है।

वर्तमान युग मे समीक्षात्मक साहित्य का महत्व उतना ही है, जितना सर्जनात्मक साहित्य का; अपितु, कुछ अंशों में उससे अधिक ही है। इसलिए, नवोदित साहित्य और उसके रचयिता के योगदान का निर्पेक्ष अध्ययन अति आवश्यक हो जाता है। आजकल इस प्रकार के अनेक मूल्यांकन–ग्रन्थ निकल रहे हैं, जिनमें प्रभृति साहित्यिकों की समर्थ रचनाओं और व्यक्तित्व का अध्ययन किया गया है, किन्तु खेद है कि ये समालोचनाएं निष्पक्ष न होकर गुट-विशेष अथवा किसी दबाव के वशीभूत ही रही है। साथ ही एक तथ्य दृष्टव्य है कि यह मूल्यांकन नवीनता को हीन दृष्टि से देखने वाले पुरातनपंथी साहित्यिकों को लेकर ही किया गया है। और यह कहने में भी संकोच नहीं है, कि इस मूल्यांकन मे योग्यता का नहीं, प्रभाव का विशेष ध्यान रखा गया है, जबकि इस समय आवश्यकता ऐसी समालोचनाओं की है, जो नयी पीढ़ी का प्रति-

निषिप्त करने वाले साहित्य मनीषियों की निष्पक्ष समीक्षा कर
मर्यादित लेखकों का नवीन मार्ग प्रशस्त हो सके। साहित्य शाश्वत है
है, जीवनोल्लासक है और नित्य परिवर्तित समाज का सच्चा प्र
प्रतिबिम्ब है; इस दृष्टि से सर्वांगसान्वेषी कलाकारों की साहित्य सा
बोध के सन्दर्भ में विशेष महत्त्व हो जाता है।

इस आलोचनात्मक कृति में मैंने समर्पित साहित्यकार डा० प्र
टण्डन के उन्नतशील साहित्यिक व्यक्तित्व का सार्वभौम दृष्टिकोण से द
के साथ-साथ उनके अनुभूत्यात्मक दर्शन के अभिनव स्वरूप का
दिया है। इसमें उनकी रचनाओं की निष्पक्ष दृष्टिकोण से समीक्षा
है और निर्णय, विश्व साहित्य के सन्दर्भ में लिये गये हैं। इस कृ
समीक्षात्मक कृति विवेचना के सर्वथा नवीन क्षेत्र का उद्घाटन करती

अन्त में, मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ, जिनकी रचना
मार्ग निर्देशन किया है। पूज्य डा० श्री प्रतापनारायण टण्डन जी के प्र
ज्ञापन तो छोटे मुह बड़ी बात होगी, पर अपने प्रिय प्रकाशक श्री कु
जी के प्रति आभार प्रदर्शन आवश्यक समझता हूँ, जो इस पुस्तक
में अन्त तक कृत संकल्प रहे।

राजेन्द्रमोहन अग्र

एम. ए., साहित्यरत्न
पी-एच. डी. शोध छात्र
७६–बिड़ला हाउस, मोतीमहल

अध्याय : १

परिचय, कृतियाँ, प्रेरणा तथा प्रभाव

निधित्व करने वाले साहित्य मनीषियों की निष्पक्ष समीक्षा कर नवोदित लेखकों का नवीन मार्ग प्रशस्त हो सके। साहित्य शाश्वत है, जीवनोन्नायक है और नित्य परिवर्तित समाज का सफल प्र प्रतिबिम्ब है; इस दृष्टि से नवीनतान्वेषी कलाकारों की साहित्य सा बोध के सन्दर्भ में विशेष महत्व हो जाता है।

इस आलोचनात्मक कृति में मैंने समीक्ष्य साहित्यकार डा० प्र टण्डन के उन्नतशील साहित्यिक व्यक्तित्व का शास्त्रीय दृष्टिकोण से प के साथ-साथ उनके अनुभूत्यात्मक परिवेश के अभिनव स्वरूप का दिया है। इसमें उनकी रचनाओं की निष्पक्ष दृष्टिकोण से समीक्ष है और निर्णय, विश्व साहित्य के सन्दर्भ में लिये गये हैं। इस समीक्षात्मक कृति विवेचना के सर्वथा नवीन क्षेत्र का उद्‌घाटन करते

अन्त में, मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ, जिनकी रचन मार्ग निर्देशन किया है। पूज्य डा० श्री प्रतापनारायण टण्डन जी के प्रति ज्ञापन तो छोटे मुंह बड़ी बात होगी, पर अपने प्रिय प्रकाशक श्री जी के प्रति आभार प्रदर्शन आवश्यक समझता हूँ, जो इस पुस्तक में अन्त तक कृत संकल्प रहे।

राजेन्द्रमोहन अग्र

एम. ए., साहित्यरत्न
पी.-एच. डी. शोध छात्र
७६–बिड़ला हाल, मोतीमहल

अध्याय : १

परिचय, कृतियाँ, प्रेरणा तथा प्रभाव

व्यक्तित्व और चिन्तन

जीवन परिचय

यह शान्त शीतल सा दिखने वाला ज्वालामुखी पर्वत, जो अपने ऊपर फैले हुए हरित कोमल नव-दूर्वादलों के व्याज से मस्त समीर के साथ अठखेलियाँ कर रहा है, देख कर सहसा कोई कल्पना भी नही कर पाता कि इसके अन्तर में वह ज्वाला भभक रही है, जो फटने पर भीषण विस्फोट का रूप धारण कर लेती है। कुछ ऐसा ही व्यक्तित्व डा० प्रतापनारायण टण्डन का है। पूर्णरूपेण सौम्य, मधुरभाषी, उदारचेता, तथा गहन पारिवारिक झंझावातों में भी स्मित मुस्कान बिखेरने वाला व्यक्तित्व अपने विचारो में महान् क्रान्तिकारी भी हो सकता है, यह कल्पना से परे की बात है—एक ऐसा क्रान्तिकारी जो हृदय की पीड़ाओं को पी कर भी मुस्कुराता रहता है।

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन का व्यक्तित्व विरोधों का एक केन्द्रबिंदु है। निपट अशिक्षित वातावरण मे रह कर भी शिक्षा की ऊष्मा से चारो ओर व्याप्त हो जाना, अत्यल्प अवस्था में (२८ वर्ष) डी० लिट् की उपाधि ग्रहण करना और न केवल भावयत्री अपितु कारयत्री प्रतिभा का भी खुल कर परिचय देना, उन्हें हिन्दी साहित्यकारो की श्रेणी से उठा कर विश्व साहित्यकारो की प्रथम श्रेणी मे खड़ा कर देना है। आर्थिक विपन्नता होते हुए भी दिल से दानी, हँसमुख होते हुए भी तटस्थ निर्मोही, समय पड़ने पर दूसरे का

प्राप्त करके भी अप्रतिदानाकांक्षी, निरीहता में भी सगर्वता, आदि ऐसे तथ्य हैं जो उनकी विचित्र स्थिति का परिचय देते हैं। एक साहित्यिक के रूप में भी उनका कृतित्व विरोधों का संगम रहा है; यदि वे एक कुशल तथा प्रबुद्ध समीक्षक हैं तो भावुक कवि भी, कल्पनाशील उपन्यासकार तथा कहानीकार हैं तो चिन्तक आलोचक भी; ऐतिहासिक नाटककार हैं तो हास्य रचनाओं के आप्रतीक भी; और जिज्ञासु शोधार्थी का रूप तो इन सभी रूपों पर अपना आधिपत्य जमाये हुए है। एक साथ पूरब और पश्चिम का मेल—यह भी एक विशेष सन्तुलन के साथ, असाधारण व्यक्तित्व की ही बात है।

पतला दुबला-छरहरा शरीर, पर एक साँचे मे ढला हुआ कि देख कर एकटक देखते ही रह जायें। उन्नत ललाट और ग्रीवा के बीच अनवरत स्मित हास्य बिखेरते पतले होठ, गौर वर्ण के साथ मिलकर सहसा ही किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। चाहे कितनी ही परेशानी क्यों न हो, यदि कोई मिलने आये तो यह चेहरा 'आइये.. ...' कह कर मुस्कुराते हुए स्वागत करता ही मिलेगा; और उसे देख कर कोई कह भी नहीं सकता कि वह इस मुस्कुराहट के पीछे कठोर परेशानियों के झूले पर झूल रहा है। विपत्तियों पर मुस्कुराना यदि जाना है तो डा० टण्डन ने। शील-वर्फ से ढकी झील की तरह ऊपर से दृढ़ता-कठोरता, पर जरा सी भी विनय अथवा विनम्रता की ऊष्मा उसे पिघलाने को काफी है। प्रौढ़ मस्तिष्क एवं प्रबुद्ध चिन्तक होते हुए भी सदैव वाचालता की सीमा पार कर मिलनसार प्रवृत्ति का खुला परिचय उनके व्यक्तित्व की विशेषता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन का समस्त व्यक्तित्व ही एक निराली शान और अदा की भीनी-भीनी मुस्कान बिखेर रहा है। सांसारिक संघर्षों की भयंकर भी विभिषिकाओं में प्रकम्पित होते हुए भी—सभी ओर निरुत्साहित करने वाला वातावरण पाकर भी इतनी अधिक मात्रा में साहित्य सर्जना, सर्वोच्च डिग्री डी० लिट् की प्राप्ति, उनके असाधारण व्यक्तित्व की एक न्यून उपलब्धि ही है। विश्व के वे सर्वप्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने तेईस वर्ष की अत्यल्प अवस्था में डाक्टर ऑफ फिलॉसफी तथा अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में डाक्टर ऑफ लिट्रेचर (डी० लिट्) की उपाधि प्राप्त की।

१६ जुलाई सन् १६३५ के सौभाग्यशाली दिन डा० प्रतापनारायण टण्डन का जन्म लखनऊ के एक घने मोहल्ले (रानी कटरा) मे हुआ। बचपन

शहर के मध्यवर्गीय परिवार में व्यतीत हुआ। आस-पास का वातावरण तो उच्च, मध्य और निम्न वर्गीय परिवारों का एक जमघट ही था। एक विदेशी भाषा में प्रकाशित होने वाले भारतीय लेखकों के परिचय ग्रंथ के अनुसार "..........यद्यपि उच्च, मध्य और निम्नवर्गीय परिवारों के एक जमघट के बीच में पला। अप्रौढ़ किन्तु भावात्मक बुद्धि से मैं अपने चारों ओर के वातावरण को देखता समझता और विस्मित भाव से उनके पारस्परिक अन्तर को समझने की चेष्टा करता।"

'वातावरण के पारस्परिक अन्तर' वाक्य द्वारा लेखक ने अपने सम्बन्ध में बहुत बड़ी बात कह दी है। लेखक का आगे का कथन 'वयस्क होने तक मैं संयुक्त परिवार में रहा' इसकी ओर भी पुष्टि करता है। वयस्क होने की आयु को एक विभाजक रेखा द्वारा विभाजित नहीं किया जा सकता। जब उत्तरदायित्व संभालने की क्षमता आ जाये, व्यक्ति वयस्क हो जाता है। कार्य भार को बखूबी निभाना ही वयस्कता का द्योतक है—यद्यपि इस आयु की सीमा होनी अवश्य है, परन्तु इस सीमा में अन्तर काफी होता है। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन अपने को समय से पूर्व ही वयस्क समझने लगे थे। उनका स्वाभिमान झुकना तो जैसे जानता ही नहीं था, इसीलिए सम्भवतः जीवन ने नाना मोड़ लिये; और ऐसे मोड़ लिये, जिन्होंने उनका जीवन ही बदल दिया।

पिता श्री हरनारायण टण्डन देवताओं के कृपालु और उदार स्वभाव को भी मात करने वाले, जो देखें अनायास ही अपना हृदय समर्पित कर दें; माता आदि-जननी का साक्षात् प्रतिबिम्ब; भरा पूरा परिवार; बड़ों का संरक्षण और छोटों से सत्कार सभी उनके लिये सभाव रूप में थे। किन्तु ये सभाव ही उनके लिए समस्त अभावों का एक मात्र कारण बने। वह देवत्व ही क्या जो पशुत्व को ललकार नहीं सके, अथवा उसके द्वारा किये गये आक्रमण से अपनी अथवा अपने शावक की रक्षा न कर सके। वह संरक्षण ही क्या जो अपने स्वार्थ के आगे संरक्षित का गला काटने में भी न चूके। एक बात और भी है; आलसी कभी नहीं चाहता कि कोई कर्मठ हो—खास-कर जो उनके शासन के नीचे है; और यदि वह कर्मठ हो जाता है तो आलसी उनके मार्ग में जरा भी नहीं अखरवायेगा। वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन के व्यक्तित्व के प्रभाव ने सबको आतंकित कर दिया और उनकी उग्रता को कुष-

रहने के लिए नाना प्रयत्न हुए—दुश्चेष्टाएँ हुईं, ऊपर से मीठी तान सुना कर बगल में छुरी घोंपी गई—इसी के अनुभव ने उन्हें यह लिखने को बाध्य किया 'वातावरण के पारस्परिक अन्तर को समझने की चेष्टा करना।'

बचपन के प्यारे नामों से शोभित गौर वर्ण और खान-पान में राजकुमार से दिखने वाले डा० प्रतापनारायण टण्डन की प्रारम्भिक शिक्षा उसी मोहल्ले के कई छोटे बड़े स्कूलों में हुई। एक स्थानीय कॉलेज से इन्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। वहाँ नियमित रूप से अध्ययन करते हुए क्रमशः बी. ए.; बी. ए. (आनर्स), तथा एम. ए. स्पेशल (हिन्दी) किया। साहित्य सम्मेलन—हिन्दी-विश्वविद्यालय—प्रयाग से प्रथमा, विशारद तथा साहित्यरत्न की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। एम. ए. स्पेशल (हिन्दी) की परीक्षा देते समय एक खोज रचना भी प्रस्तुत की, जिसका शीर्षक 'प्रेमचन्द और उनके समकालीन उपन्यासों में वर्गभावना' था और जो उसी वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग प्रकाशन द्वारा प्रकाशित की गयी थी। सन् १९५८ में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा 'हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास' शीर्षक प्रबन्ध पर पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की गयी। आगे चलकर उन्होंने विश्व समीक्षा-शास्त्र का सैद्धान्तिक और प्रवृत्ति-गत अध्ययन करते हुए 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ' शीर्षक से एक प्रबन्ध प्रस्तुत किया, जिस पर इसी विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९६३ में डी. लिट्. की उपाधि प्रदान की गयी। ये दोनों रचनाएँ अब प्रकाशित हो चुकी हैं।

सदैव विकासोन्मुखी शिक्षा सम्बन्धी अपना व्यक्तित्व निर्मित करने के बीच डा० प्रतापनारायण टण्डन को कितने संघर्ष करने पड़े हैं, यह उनका भुक्तभोगी हृदय ही जानता है। वस्तुतः यह शिक्षा काल का समय उनके जीवन का सबसे अधिक परीक्षा का समय, अथवा यों कहिये कि सभी इष्ट-मित्रों, रिश्तेदारों द्वारा दिये गये धोखों और कष्टों का समय है।

पिता—जिन्होंने दफ्तरों में क्लर्की करते समय सदैव अफसरों का आदेश-पालन करना ही सीखा, कभी यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि वे ऑफीसर की तरह आदेश भी दे सकते हैं; अतः सदैव उनका उद्देश्य यही रहा कि उनका पुत्र कहीं क्लर्की पा जाये तो जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि प्राप्त हो जाये। यह

नहीं कि वे ऐसा द्वेषवश सोचते हों अपितु सत्य तो यह है कि इस सोचने में उनके जीवन भर के संस्कारों की दासता—विवशता—थी; उन्हें इसी में अपने पुत्र का कल्याण दीखता था—इससे आगे की कल्पना उन्हें अपनी सामर्थ्य से बहुत आगे की बात दिखाई देती थी। किन्तु तथाकथित अन्य संरक्षक? उनकी स्थिति ऐसी नहीं थी। उनके क्रिया-कलापों के मूल में था द्वेष—सब पर अपने एकमात्र स्वामित्व की प्रबल आकांक्षा—जिसने छोटे-बड़े के विवेक पर भी पर्दा डाल दिया था।

लेखक के संयुक्त परिवारिक जीवन की सबसे बड़ी घटना उनकी माता का स्वर्गवास और फिर कलह और कटुता की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप स्थायी रूप से गृह त्याग है। यह वह घटना है, जिसने लेखक के संवेदनशील हृदय पर कठोरतम आघात किया है, लेकिन उसी ने उन्हें आत्मनिष्ठ और दृढ़ भी बनाया है। स्नेहमयी जननी का वात्सल्यमय साया हटने के एक मास के भीतर ही—अभी जबकि उनकी चिता की राख भी ठंडी नहीं हुई थी—कठोर परिस्थितियों के नग्न यथार्थ बोध ने उन्हें पल भर के लिए स्तब्ध कर दिया। परंतु अगले ही पल उन्होंने भावी जीवन पथ का निर्धारण कर लिया। इसके बाद की स्थिति बहुत मर्मवेधी है। लू में सड़कों पर आश्रय के लिए भटकना, ठण्डी रातों को रेलवे प्लेटफार्म पर सोना, रोग, भूख और भयानक आर्थिक संघर्ष—उसकी गाथा बहुत लंबी है, परंतु अंततोगत्वा, सगे संबंधियों के आश्रय से विहीन, अपार संघर्ष सागर की उद्दाम लहरों से जूझते हुए उन्होंने कुछ समय के लिए किनारा पाया। ममता, मोह, और माया के सभी बंधनों को तोड़ कर वह अचल व्यक्तित्व का द्योतन करते रहे। और यह संघर्ष अभी भी सतत अटूट रूप से जारी है।

प्रतिनिधि कृतियाँ

डॉ० प्रतापनारायण टंडन का साहित्य रचना का क्रम बाल साहित्य से आरम्भ हुआ था। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी अनेक स्फुट कृतियाँ तथा पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। उन सबका नाम अथवा परिचय प्रस्तुत कर सकना यहाँ संभव नहीं है। डॉ० टंडन के समग्र साहित्य में से यहाँ संक्षेप में

उनकी लिखी हुई प्रतिनिधि तथा स्तरीय कृतियों का प्रकाशन विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। काल क्रम के विचार से विविध पत्र-पत्रिकाओं में लिखित कहानियाँ, एकांकियों, निबन्धों, शोध पत्रों तथा संपादकीय टिप्पणियों में से भी प्रतिनिधि रचनाओं की सूची यहाँ पर संक्षिप्त रूप में उपस्थित की जा रही है। आगे के अध्यायों में इन्हीं के आधार पर डा० प्रतापनारायण टण्डन के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं विचार दर्शन का विश्लेषण किया जायगा।

शिवराज भूषण—(सम्पादित ग्रंथ); प्रकाशन वर्ष—सन् १९५४; प्रकाशक—विद्यामन्दिर, रानी कटरा, लखनऊ; मूल्य—१·५०; पृष्ठ-संख्या—१६२।

प्रस्तुत ग्रंथ महाकवि भूषण कृत 'शिवराज भूषण' का सटीक सम्पादन है, जिसे लेखक ने अपने अध्ययन काल में किया है। इसके प्रारम्भिक ३२ पृष्ठों में महाकवि भूषण का परिचय तथा वीर रस में उनके स्थान का निर्देशन किया गया है।[१] बीच के ६६ पृष्ठों में पाठ्य है और अन्तिम ६४ पृष्ठों में पाठ्य की टिप्पणी तथा व्याख्या दी गयी है। पुस्तक के अन्तिम भाग से लेखक की विद्यार्थी कालीन कुशाग्र बुद्धि का अच्छा परिचय मिलता है। लेखक की आयु तथा अनुभव देखते हुए पुस्तक सराहना योग्य है।

अब यह पुस्तक अप्राप्य है।

आधुनिक साहित्य : (निबन्ध संग्रह). प्रकाशन वर्ष—१९५६ प्रकाशक : विद्यामन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ। मूल्य—४ ००, पृष्ठ सं० १३६।

इसमें सैद्धान्तिक और आलोचना सम्बन्धी निबन्ध हैं। अपने इन निबन्धों के विषय में इसी पुस्तक के सम्बन्ध में डा० टण्डन ने इसकी भूमिका में लिखा है—"इन निबन्धों में जहाँ एक ओर मैंने हिन्दी में प्रवाहित विभिन्न साहित्य-धाराओं की परीक्षा तथा उत्कृष्ट कृतियों के मूल्यांकन की चेष्टा की है, वहाँ दूसरी ओर अपनी कतिपय साहित्यिक स्थापनाएँ भी की हैं, जो साहित्य सम्बन्धी मेरे

१—देखिये : महाकवि भूषण (सटीक) पृष्ठ ५ से ३२ डा. प्रताप नारायण टंडन

दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करती हैं।"* लेखक की प्रथम मौलिक रचना होते हुए भी इसके निबन्ध अपने में संगठित है तथा एक कुशल चिन्तन तथा प्रतिभाशाली कलाकार मस्तिष्क का परिचय देते हैं। पुस्तक में कुल १८ निबन्ध हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं—(१) हिन्दी साहित्य में गतिरोध का प्रश्न, (२) सृजनात्मक ह्रास के कारण, (३) साहित्यिक सकलन के महत्व, (४) प्रगति का नया रास्ता, (५) विश्व उपन्यास साहित्य : एक महत्वपूर्ण कथानक, (६) उपन्यास कला (हेनरी जेम्स के विचार), (७) उपन्यास का कथानक (ई० एम० पार्स्टर के विचार), (८) आधुनिक उपन्यास का प्रारम्भिक विकास, (९) हिन्दी उपन्यास का प्रवृत्तिगत विकास, (१०) वृन्दावनलाल वर्मा के तीन उपन्यास, (११) त्यागपत्र : एक मूल्यांकन, (१२) मैला आँचल : एक मूल्यांकन, (१३) हिन्दी कहानी का विकास, (१४) आधुनिक हिन्दी एकांकी, (१५) कवि जानकीवल्लभ शास्त्री, (१६) प्रगतिवाद, (१७) प्रयोगवाद और कवि माथुर तथा (१८) साहित्यिक परम्परा का महत्व।

इनमें से अनेक निबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित होने से पूर्व अनेक सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं तथा विद्वानों की चर्चा का विषय बने रहे हैं। कुछ निबन्ध उनके हिन्दी उपन्यास सम्बन्धी प्रबन्ध के अंश भी हैं। पाश्चात्य उपन्यास साहित्य का भी निबन्ध संख्या छः तथा सात से संक्षिप्त परिचय मिल जाता है। समग्र रूप से, प्रारम्भिक रचना का ध्यान करते हुए इसे विशिष्ट कृति कहा जा सकता है। अब यह निबन्ध संग्रह अप्राप्य है।

कैंडिड—(अनुवाद); प्रकाशन वर्ष—१९५६, प्रकाशक—साहित्य प्रकाशन दिल्ली, मूल्य ३.००, पृष्ठ संख्या, १८६।

प्रस्तुत कृति फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार वाल्टेयर के उपन्यास 'कैंडिड' का अनुवाद है और काफी ख्यातिप्राप्त है। इस अनुवाद ने इस पुस्तक को इतना लोक-प्रिय कर दिया कि इसके बाद इसी 'पैटर्न' पर अन्य व्यक्तियों द्वारा भी अनुवाद किये गये हैं। अनुवादों के एक परम्परागत दोष—अनुवाद में मूल भाव तथा भाषा को विकृत कर देना—पाया जाता है। यह लेखक जान-बूझ कर

---

*१० आधुनिक साहित्य (निवेदन) डा. प्रताप नारायण टंडन, पृष्ठ-१

नही करता अपितु उसका अपना ज्ञान ही इस कार्य का द्योतक है। किन्तु इस उपन्यास के अनुवाद ने मूल भावों को न केवल सशक्त ही किया है, अपितु अपनी भाषा की प्रौढ़ता भी प्रदान की है। इस तरह यह हिन्दी में अनूदित उपन्यासों की शृंखला मे एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह पुस्तक अब अप्राप्य है।

हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना : प्रेमचन्द युग—प्रकाशन वर्ष—१९५६, प्रकाशक—लखनऊ विश्वविद्यालय, हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य—४.०० । पृष्ठ संख्या— १८३ ।

मूल रूप से यह कृति लखनऊ विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग की एम० ए० परीक्षा (स्पेशल) की खोज रचना के रूप में लिखी गयी थी। इसमें एक विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन उपन्यारा साहित्य का *सम्यक् अध्ययन किया गया है। साथ ही यह कहना भी आवश्यक है कि* "इसकी रचना के समय हिन्दी उपन्यास के विकास के काल विभाजन में कोई विशेष सूक्ष्मता नहीं दिखायी जाती थी, इसीलिए प्रेमचन्द युग की स्थूल रूप से ही *सीमाएँ निर्धारित की गई हैं।"**

पुस्तक में कुल छै अध्याय हैं तथा १७१ पृष्ठ हैं तथा १२ पृष्ठ प्रारम्भ में हैं। कुल १८३ पृष्ठ हैं। भूमिका मे एक प्रकार से पुस्तक के अध्यायों का *सारांश भी दे दिया गया है। अध्यायों मे प्रतिपादित विषय निम्न-प्रकार से हैं—*

(१) युग पीठिका; १—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनैतिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पृष्ठभूमि, २—आधुनिक उपन्यास का प्रारम्भ और विकास तथा प्रेमचन्द का पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य।

(२) तत्कालीन वर्ग चेतना : १—नव जागरण—सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, तथा राजनैतिक क्षेत्र में,२—वर्ग-भावना : प्रेरणा तथा विकास—वर्गभावना का स्वरूप, प्रेरणा, भूमि, पूँजी, श्रम, वर्ग भावना का विकास तथा वर्ग भावना की व्याख्या।

(३) कुछ प्रमुख वाद : परिचय प्रारम्भ और विकास; १—आदर्शवाद, २—

---

*हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना : निवेदन : डा० प्रताप नारायण टंडन, पृष्ठ-१

व्यक्तिवाद, ३—समाजवाद, समाजवाद और गाँधीवाद—समाजवाद और व्यक्ति-वाद—समाजवाद और साम्यवाद, ४—साम्यवाद, ५—प्रगतिवाद।

(४) प्रेमचन्द और उसके समकालीन उपन्यासकारों की वैचारिक पृष्ठ-भूमि—१—साहित्य, कला और समाज, २—स्त्री समाज, ३—राजनैतिक विचार-धारा—स्वराज्य की समस्या-शोषण—आर्थिक संघर्ष।

(५) आलोच्य युग के उपन्यासों में वर्गभावना का विश्लेषण—१—उच्चवर्ग—जमींदार वर्ग—पूँजीपति वर्ग—महाजन वर्ग, २—मध्य वर्ग—क्लर्क वर्ग—अन्य व्यवसायी ३—निम्न वर्ग—कृषक वर्ग—श्रमिक वर्ग।

(६) उपसंहार—१—हिन्दी उपन्यास का प्रवृत्तिगत विकास—प्रेमचन्द का पूर्ववर्ती काल—प्रेमचन्द काल—प्रेमचन्दोत्तर काल, २—हिन्दी उपन्यास का विकास : प्रेमचन्द और उनके बाद।

यद्यपि यह विद्यार्थी काल की आचार्यों की नाना भेद रूपी नीति मे जकड़ी हुई एक छोटी सी शोध कृति है, फिर भी इससे लेखक के मस्तिष्क की प्रौढ़ता का अच्छा आभास मिलता है।

रीता की बात—(उपन्यास) प्रकाशन वर्ष : सन् १६५७, प्रकाशक—प्रेम पब्लिशर्स, गोलागंज, लखनऊ, मूल्य—२.०० ।

यह उपन्यास डा० टण्डन का पहला उपन्यास है और आकार से लघु है। किन्तु उपन्यास, शिल्प विधान की दृष्टि से बेजोड़ है; कथानक मे युवाकालीन यौवन होते हुए भी एक नवीनता है। हिन्दी के सशक्त समीक्षक डा० देवराज ने लिखा है—'उपन्यास का कथानक सरल-सीधा किन्तु मार्मिक है। उसकी कहानी विश्वसनीय बन सकी है, यह बड़ी बात है। रीता और रमेश के प्रणय विकास का चित्रण और रीता की डायरी उपन्यास के विशेष सफल अंश हैं। उपन्यास की समस्या मूलतः नैतिक है, और वह सशक्त रूप में सामने आई है........। *

उपन्यास छोटा है फिर भी अपने मे इतना सगठित है (भाषा, भाव और

*रीता की बात : डा० प्रताप नारायण टंडन।

शिल्प विधान की दृष्टि से) कि कहीं नजुनच की गुंजाइश ही नहीं रहती। यह निश्चित है कि रीना (नायिका) के परिपक्व जीवन की कथा कुछ और विस्तार तथा सूक्ष्मता से कही जाती तो उपन्यास अपने में और भी गहन तथा प्रभावशाली बन सकता था। इस पर भी इस उपन्यास की लोकप्रियता एवं श्रेष्ठता निर्विवाद है। यही कारण है कि इस उपन्यास का पाकेट बुक्स संस्करण सन् १९६२ में हिन्द पॉकिट बुक्स, दिल्ली से प्रकाशित हो गया है। इस पॉकिट बुक्स संस्करण में पुस्तक में पूर्व कथानक को संशोधित करके और सशक्त बनाने का सफल प्रयास किया गया है।

'रीता की बात' उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद सन् १९६५ में प्रकाशित हो चुका है। अनुवादक भी स्वयं लेखक ही हैं। प्रकाशक अल्फाबीटा पब्लिकेशन, कलकत्ता है और मूल्य ५.७५ रु० है।

हिन्द पॉकिट बुक्स संस्करण ने इस उपन्यास के प्रति हिन्दी पाठकों की प्रियता प्राप्त की तो अंग्रेजी अनुवाद ने इसे विश्व साहित्य—विशेषकर विदेशी साहित्य—की तुलना में स्थित कर दिया है, इससे बढ़ कर किसी उपन्यास की लोकप्रियता का और क्या प्रमाण हो सकता है। वस्तुतः यह उपन्यास लेखक का प्रथम उपन्यास होते हुए भी हिन्दी साहित्य में बेजोड़ और अपने ढंग का निराला उपन्यास है जो पालने में ही 'पूत' का परिचय दे रहा है।

अब यह पुस्तक अप्राप्य है।

हिन्दी साहित्य : पिछला दशक—(आलोचना)—प्रकाशन वर्ष—सन् १९५७, प्रकाशक—हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ, मूल्य—४.५०, पृष्ठ संख्या—१४४।

इसमें आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में गत दस-बारह वर्षों में हिन्दी साहित्य के विकास का चित्रण किया गया है। साथ ही साहित्य में जिन तत्वों के आधार पर विभिन्न मोड़ हुए हैं उनका सांस्कृतिक तथा साहित्यिक महत्व तथा हिन्दी साहित्य के विकास में सहायक के रूप में योगदान को आँका गया है। *इस

---

*दे० आधुनिक साहित्य : पिछला दशक, निवेदन डा० प्रताप नारायण टंडन।

आलोचनात्मक पुस्तक में १—हिन्दी कविता, २—हिन्दी उपन्यास, ३—हिन्दी कहानी, ४—हिन्दी नाटक, ५—हिन्दी एकांकी, ६—हिंदी निबन्ध और ७—हिंदी आलोचना की आधुनिक युगीन पृष्ठभूमि में उनकी नवीन उपलब्धियों का संयोजन किया गया है। साथ ही इसमें प्रवृत्तियों की सम्यक् विवेचना भी की गई है।

हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास—प्रकाशन वर्ष—सन् १९५९, प्रकाशक हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, मूल्य—१२ रु० पृष्ठ संख्या—४२२ (प्रथम संस्करण), (द्वितीय संस्करण), (अंग्रेजी संस्करण)।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक का लखनऊ विश्वविद्यालय हिंदी विभाग द्वारा पी. एच. डी. के लिये स्वीकृत शोध प्रबन्ध है। यह अपने ढंग की अनूठी शोध कृति है। इसकी भूमिका में लेखक ने लिखा है—"हिंदी उपन्यास के इतिहास पर एक विहगम दृष्टि डालने पर यह ज्ञान होता है कि उसके विकास के आदि युग से लेकर अब तक के विविध विकास युगों में न केवल कथावस्तु की दृष्टि से वैभिन्नय मिलता है, वरन् शिल्प रूपों की दृष्टि से भी पर्याप्त परिवर्तनशीलता लक्षित होती है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हिंदी उपन्यास के इतिहास के काल-गत शिल्प रूपों और प्रयोगों का अध्ययन किया गया है............ ....यह अपने ढंग का सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन है।'*'सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन' वाक्य लेखक के दुर्लंध्य साहस का परिचायक है जो स्पष्ट रूप से अपने विषय की मौलिकता सिद्ध कर रहा है।

इस शोध प्रबन्ध में कुल आठ अध्याय हैं। जिनमें प्रथम अध्याय में उपन्यास का साहित्य मे स्थान, परिभाषा, स्वरूप और महत्व, 'गद्य काव्य और उसके भेद, उपन्यास में युगीन समस्याएँ; अध्याय दो में उपन्यास के मूल तत्व, उसमें कथानक की प्रधानता तथा विशिष्टता, कथोपकथन के भेद तथा कथानक का उपन्यास में स्थान; अध्याय तीन में हिंदी उपन्यास के प्रेरणा स्रोत तथा कथा-शिल्प के आदि रूप; हिंदी उपन्यास का उद्भव और विकास (प्रारम्भिक) तथा उसमे कथा शिल्प का स्वरूप; अध्याय पाँच मे कथा विकास की विविध पद्धतियाँ

---

*दे० हिंदी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास, डा. प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ—१३

कथात्मक पद्धति, भावात्मक पद्धति, नाटकीय पद्धति, विश्लेषणात्मक पद्धति तथा फ्लैश बैक पद्धति; अध्याय छः में रचना उद्देश्य के अनुरूप कथा का संगठन—कथानक का वर्गीकरण, मनोरंजन, कुरीति-निवारण अथवा समाज सुधार, मनोविश्लेषण, आंचलिक चित्रण तथा हास्य आदि; अध्याय सात में कथा शिल्प के अभिनव प्रयोग और ज्योति स्तम्भ (उपन्यासों के विवरण के साथ); तथा अंतिम अध्याय आठ मे उपसंहार करते हुए उपन्यास में कथाशिल्प और उसका महत्व तथा हिंदी उपन्यास की भावी संभावनाओं—शिल्प की दृष्टि से—का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इससे लेखक के विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है।

अपने में कृति (विशद विषय पर होते हुये भी) सम्पूर्ण है और सिमटी हुई है। इस पुस्तक को शोधार्थियों द्वारा सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि एक वर्ष से कम समय में ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया और सन् १९६४ मे दूसरा संस्करण मूल्य १५·०० प्रकाशित हुआ है। इस द्वितीय संस्करण में लेखक ने सामयिक परिवर्तित विचारों को देखते हुए संशोधन करके काफी नया मैटर जोड़ा है, जिससे ग्रंथ की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

अन्धी दृष्टि—(उपन्यास); प्रकाशन वर्ष—सन् १९६०; प्रकाशक—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य—२·००; पृष्ठ संख्या—१०७। द्वितीय संस्करण—सन् १९६१।

समय क्रम के अनुसार प्रस्तुत कृति लेखक का दूसरा उपन्यास है। किन्तु कथानक के गठन एवं मनोविज्ञान की सुस्पष्ट विवेचना के कारण इसे सबसे उत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है। अन्धी बालिका के व्याज से लेखक ने बाल मनोविज्ञान का बड़ा स्वाभाविक एवं हृदयग्राही चित्रण किया है। इसमें रीति (बालिका) की विवशता, आकुलता और दमित उत्साह की एक विरोधात्मक कथा है। वातावरण के सजीव चित्रणों से पूरित इस कथा में सर्वत्र मौत का सन्नाटा छाया सा दिखाई देता है। तमाम लोग इधर-उधर घूम रहे हैं मुर्दों की तरह। इसकी मार्मिक कथा अनायास ही हृदय को छू लेती है।[1]

१ - : डा० प्रताप नारायण टंडन, (प्रकाशकीय वक्तव्य)।

सूरदास का कृष्ण के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का चित्रण हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं। उन्होंने अपनी अन्धी आँखों से बाल स्वभाव का कोना-कोना झाँक लिया है; किन्तु सूर अन्धे होते हुए भी बहरे नहीं थे। उनकी अनुभवी आँखों ने वातावरण का अनुभव काफी किया था, अतः यह बाल-वर्णन एक संवेदनशील कलाकार के लिए स्वाभाविक ही था, लेकिन एक बाह्य दृष्टि युक्त व्यक्ति यदि अन्धे बालक की चेष्टाओं का उसी कुशलता से अंकन करे तो यह असाधारण बात है। क्योंकि ऐसा मनोविज्ञान सामान्यतया सर्वत्र अध्ययन करने को नहीं मिलता।

इस दृष्टि से लेखक का प्रस्तुत उपन्यास उसे एक विशिष्ट रूप दे देता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि यदि सूर अन्धी आँखों से काव्य के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का कोना-कोना झाँक आये हैं तो डा० प्रतापनारायण टण्डन अपनी सशक्त एवं संवेदनशील आँखों से अन्धे बालक के मनोविज्ञान एवं सामान्य बाल स्वभाव के गहनतम छिद्र भी (कोनों की कौन कहे) गद्य के माध्यम से झाँक ही नहीं आये अपितु उनमें प्रविष्ट हो चुके हैं। वस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास लेखक की असाधारण एवं सबसे विशिष्ट कृति है।

बदलते इरादे—(कहानी संग्रह)—प्रकाशन वर्ष—१९६०, प्रकाशक—हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, मूल्य ४·७५, पृष्ठ संख्या—२७२।

यह कहानी संग्रह लेखक का कहानी क्षेत्र में प्रथम प्रयास है; इनका रचना काल कोई एक समय विशेष न होकर सन् १९५५ से १९६० तक का फैला हुआ विस्तृत धरातल है। और ये कहानियाँ मात्र पुस्तकाकार प्रकाशन हेतु ही नहीं लिखी गईं, अपितु अधिकांश कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं और अनेक आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ से प्रसारित भी हो चुकी थीं।[1] इन रचनाओं में लेखक के युवा मस्तिष्क की प्रौढ़ता का दर्शन होता है।

कुल मिला कर इसमें २७ कहानियाँ हैं जिनका विषय सामान्य—दैनिक

१—देखिये, बदलते इरादे : निवेदन : डा० प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ—६।

जीवन से सम्बद्ध है। इन कहानियों का क्रम इस प्रकार है : मेरी नाकामयाबी आँख का वार्ड; पुराने दोस्त; मुनिया; इन्टरव्यू लेटर; लतीफ; चौक हजरतगंज; गोरी के........; बदलते इरादे; सड़क, बस और यात्री; आलम अली; रहस्य; गलतफहमी; मध्यस्थ; जीवन सिंह; लंच टाइम; आखिर खत; सर्पिणी की आकर्षण-कथा; सुहना; उतार-चढ़ाव; जन्नत से बाहर उचक्का; वह चेहरा; चपरासियों की चाय; वह रात, वह मरीज; रेल यात्रा से; मनहूस दिन; पार्टनर; वह काटा है; ठहराव; एक शिकारी की डायरी के कुछ पृष्ठ; भविष्य के लिए; फिल्म का षड़यन्त्र; कुमायूं का आदमखोर; गीली; आदमी जागेगा; तथा कुड़की।

हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास—(संक्षिप्त शोध प्रबंध) प्रकाशन वर्ष—१९६०; प्रकाशक—हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ, मूल्य ५.००; पृष्ठ संख्या—२८६।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की "हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास" नामक शोध रचना (पी० एच० डी० की थीसिस) का संक्षिप्त रूप है। इसमें लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध के अध्याय ५ (कथा विकास की विविध पद्धतियाँ), अध्याय ६ (रचना उद्देश्य के अनुरूप कथा का संगठन) तथा अध्याय ८ (उपन्यास में कथा शिल्प और उसका महत्व तथा हिन्दी उपन्यास की भावी सम्भावनाएँ : शिल्प की दृष्टि से) को निकाल दिया है—क्योंकि इनका सम्बन्ध प्रत्यक्षत: कथा शिल्प विषयक विकास से है—तथा शेष अंश को संशोधित कर दिया है। इस ग्रंथ में हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भ और विकास के स्वरूप का स्पष्टीकरण है और प्रत्येक युग में होने वाली औपन्यासिक प्रगति का विवरण है। न केवल विद्यार्थियों की ही, अपितु जिज्ञासु पाठकों की दृष्टि से भी यह पुस्तक पठनीय है।

स्वर्ग यात्रा—(ऐतिहासिक नाटक); प्रकाशन वर्ष-सन् १९६२; प्रकाशक—एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली; मूल्य २.००; पृष्ठ संख्या—९२।

स्वर्ग यात्रा एक ऐतिहासिक नाटक है; इसमें कोडमदे की गौरव-गाथा का राजपूती आन-बान, मर्यादा और प्रतिष्ठा, शौर्य का भव्य प्रदर्शन, प्रेम का विवेकहीन स्वीकरण, और बलिदान की त्यागमयी भावना का निदर्शन कराते

हुए चित्रण किया गया है।* सारी कथावस्तु का विभाजन चार अंकों में है तथा नाटक के अन्य पात्र तत्कालीन विभिन्न वृत्तियों के प्रतीक हैं। रोचकता तथा वातावरण को प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से यत्र-तत्र गीतों की योजना की गई है; राजस्थानी जीवन से लिया होने के कारण इस उपन्यास के गीत राजस्थानी लोकगीत ही हैं। यह नाटक अपने संक्षिप्त रूप में आकाशवाणी के लखनऊ इलाहाबाद केंद्र से 'कोडमदे' शीर्षक से प्रसारित भी किया जा चुका है।

स्पर्श ले पानी की बूँदें—(उपन्यास); प्रकाशन वर्ष—सन् १९६४; प्रकाशक—विवेक प्रकाशन, लखनऊ; मूल्य—४.००, पृष्ठ संख्या—१५२।

लेखक का प्रस्तुत उपन्यास अब तक की उनकी समस्त कृतियों से सशक्त, प्रौढ़ एवं नवीनता से आवेष्टित है। उपन्यास का कथानक केवल बारह या अधिक अधिक से सोलह घण्टों का है, किन्तु घटना क्रम में इतनी विविधता है—विचारों का वह सम्यक्, परन्तु सुसंगठित प्रवाह है कि इसे आधुनिक युग के महान् उपन्यासों की श्रेणी में खड़ा कर देता है।

उपन्यास के दो पक्षों—उज्ज्वल पक्ष (जीवनदर्शन) तथा अन्धकारमय पक्ष (मृत्यु का चित्रण) में उपन्यासकारों ने प्रथम पक्ष का चित्रण किया, खूब किया और अच्छा किया। परन्तु जो स्वतः ही उज्ज्वल है उसके चित्रण में उज्ज्वलता लाना गौरव की बात उसी प्रकार नहीं है जैसे राम गाथा गाना (राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है—कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य है‡); किन्तु अन्धकारपूर्ण पक्ष का चित्रण इस खूबी व स्पष्टता से किया जाये कि वह भी उज्ज्वल होकर चमकने लगे, उपन्यासकार के कुशल शिल्प एवं सशक्त भावों का ही प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में अचला की कथा है, जिसकी प्रसव वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है। अचला के माध्यम से भारतीय नारी की मातृत्वाकांक्षा और उसकी विडम्बनात्मक परिणति इस कृति में चित्रित है। "मौत के प्रत्याशित—अप्रत्याशित रूपों की परिचित विकृति और उसकी भयानक छाया में

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

*दे० स्वर्ण गाथा : निवेदन डा० प्रतापनारायण टंडन पृष्ठ—४

‡देखिये, मैथिलीशरण गुप्त : साकेत
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

'नवाब कनकौवा' (एकांकी संग्रह) श्री अमृत लाल नागर को समर्पित है। इस पुस्तक में क्रम से 'नवाब कनकौवा' 'टेलीग्राम', 'नौ हजार की चपत', और 'गलतफहमी' चार एकांकी सगृहीत हैं। 'नवाब कनकौवा' एकांकी आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित भी चुका है। एक प्रकार से ये हास्य एकांकी हैं; किन्तु इनका हास्य उच्छृंखलता की सीमा को नहीं छूता, अपितु शिष्ट हास्य है।

ये एकांकी लेखक की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हैं। लखनऊ नवाबी की परम्परा को पीटने वाले व्यक्तियों की 'नवाबी वपौती' आपसी नफासत का चित्रण करने के साथ ही लेखक ने कनकौवे बाजी का भी सुन्दर चित्रण किया है, जिससे लेखक के स्वयं कनकौवे बाजी के ज्ञान का (जो सत्य भी है) परिचय मिलता है। ये एकांकी बाल साहित्य एवं किशोर साहित्य की दृष्टि से विशेष उपयुक्त हैं।

समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ—(शोध प्रबंध) प्रकाशन वर्ष—सन् १९६५; प्रकाशक—विवेक प्रकाशन, लखनऊ, खण्ड दो; मूल्य दोनों खण्ड—५०·००, पृष्ठ संख्या—९७५।

प्रस्तुत ग्रन्थ-समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ —लखनऊ विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की डी. लिट्. उपाधि के ल स्वीकृत शोध प्रबन्ध का संशोधित रूप है। इसमें विश्व समीक्षाशास्त्र का सैद्धान्तिक इतिहास तथा विविध देशों की प्रमुख भाषाओं तथा परम्पराओं; विशेष रूप से संस्कृत, हिन्दी, यूनानी, रोमीय, अंग्रेजी, फारसी, स्पेनी, जर्मन, रूसी तथा अमरीकी आदि का वैज्ञानिक एवं गवेषणा पूर्ण अध्ययन उपस्थित किया गया है। प्रमुख समीक्षात्मक परम्पराओं, विचार प्रणालियों, तथा चिंतन धाराओं का विकासात्मक इतिहास प्रस्तुत करने के साथ ही साथ इसमें पूर्वीय एवं पाश्चात्य वैचारिक दृष्टियों का तुलनात्मक अध्ययन तथा सम्यक् मूल्यांकन भी उपस्थित किया गया है; जिसके कारण यह प्रबन्ध हिन्दी शोध के इतिहास की गौरव शालिनी परम्परा में एक ऐतिहासिक उपलब्धि बिन्दु के रूप में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है।*

*दे० समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, डा० प्रतापनारायण टंडन प्रकाशकीय वक्तव्य।

प्रस्तुत ग्रन्थ आलोचना साहित्य के इतिहास की शृंखला में एक महत्वपूर्ण एवं अन्यतम कृति है। इसमें विश्व समीक्षाशास्त्र का विवेचन करके लेखक ने हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण उपलब्धि देने के साथ ही उसके एक बड़े अभाव की पूर्ति भी है, साथ ही यह ग्रंथ लेखक के विस्तृत एवं गहन अध्ययन तथा विदेशी साहित्य में उसकी पैठ का परिचायक है। यह अपने ढंग का—आकार, प्रकार, विषय, मूल्य सभी दृष्टि से—अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल दस अध्याय हैं। इसके पहले अध्याय में समीक्षा के सैद्धान्तिक स्वरूप की विवेचना की गयी है। दूसरे अध्याय में पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के विकास और विविध सिद्धान्तों के स्वरूप पर उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विचार किया गया है। तीसरे अध्याय में संस्कृत समीक्षाशास्त्र के विकास का परिचय देते हुए विविध सिद्धान्तों का और उनके स्वरूप का स्पष्ट निर्देशन किया गया है। चौथे अध्याय में रीतिकालीन हिन्दी साहित्य के विकास और विभिन्न सिद्धान्तों के स्वरूप की विमर्शात्मक व्याख्या की गई है। पाँचवें अध्याय में पाश्चात्य और भारतीय समीक्षा परम्पराओं और दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। छठे अध्याय में पाश्चात्य वैचारिक आन्दोलनों का स्वरूप और सैद्धान्तिक आधार स्पष्ट किया गया है। सातवें अध्याय में भारतीय वैचारिक आन्दोलन का स्वरूप और सैद्धांतिक आधार का स्पष्ट विवरण दिया गया है। आठवें अध्याय में पाश्चात्य और भारतीय वैचारिक आन्दोलनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नवें अध्याय में आधुनिक हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों का परिचय देते हुये उनके अन्तर्गत आने वाले प्रमुख समीक्षकों के सैद्धान्तिक विचारों की संक्षेप में परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। अन्तिम दसवें अध्याय में उपसंहार के रूप में एक सम्यक् मान निर्धारण की आवश्यकता और सम्भावनाओं पर विचार किया गया है।

इस ग्रन्थ पर लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९६३ का बोनर्जी रिसर्च प्राइज भी लेखक को प्रदान किया गया है।

हिन्दी उपन्यास कला—(आलोचना)— प्रकाशन वर्ष—सन् १९६५; प्रकाशक हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ. प्र. शासन, लखनऊ, मूल्य ६.५०; पृष्ठ संख्या २४ + ३७३ = ३९७।

प्रस्तुत ग्रन्थ अपने विषय का अनूठा ग्रन्थ है, जिसे हिन्दी समिति के प्रस्ताव पर लिखा गया था। इसमें हिन्दी उपन्यास कला का सैद्धान्तिक विवेचन और व्यावहारिक विकास स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिए उपन्यास के मान्य उपकरणों को आधार बनाया गया है। 'हिन्दी उपन्यास' कला की रचना करते समय लेखक का उद्देश्य उपन्यास कला का सम्यक् सैद्धान्तिक विश्लेषण करना रहा है। यह अध्ययन विशेषतः हिन्दी उपन्यास के सिद्धान्तों और व्यावहारिक रूपों के विकास के सन्दर्भ में किया गया है।‡ साथ ही इस पुस्तक मे सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण तथा व्यावहारिक निदर्शन की पूर्णता की दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य उपन्यास साहित्य दोनों को ही समाविष्ट कर लिया गया है। हिन्दी समिति के सचिव श्री सुरेन्द्र तिवारी ने लिखा है—"- - -आदि काल से लेकर वर्तमान समय तक के इतिहास का सिंहावलोकन किया गया है और आज की विविध प्रचलित शैलियों की विवेचना की है।"*

वस्तुतः यह ग्रन्थ लेखक के सुस्पष्ट ज्ञान एवं विस्तृत विचारधारा का परिचायक है।

पथरीले प्रतिरूप—(कविता संग्रह) ; प्रकाशन वर्ष—सन् १९६५, प्रकाशक— विवेक प्रकाशन, लखनऊ ; मूल्य ४·०० ; पृष्ठ संख्या ८४।

सन् १९६४ में एक शैक्षिक दौरे पर लेखक को विदेश जाने का अवसर मिला था और वहा उन्होंने रोम, पिस्टोइयो, फ्लोरेंस, पीसा आदि महत्वपूर्ण नगरों का भ्रमण किया था। वहाँ की भव्यता एवं ऐतिहासिक परम्पराओं ने लेखक के कवि हृदय को प्रभावित किया और उसकी भावधारा कविता के रूप मे प्रवाहित हो उठी ; उसका एकत्र जल प्रस्तुत कविता-संग्रह 'पथरीले प्रतिरूप' है।

'पथरीले प्रतिरूप, में पाश्चात्य सांस्कृतिक उपलब्धियो और वैज्ञानिक प्रगति के पार्थिव किन्तु जीवन्त रूपों को भाषाबद्ध किया गया है। 'मूर्त और अमूर्त आधारों के साथ अनुभूत्यात्मक सन्तुलन की जो संयोजित अभिव्यक्ति

‡ हिन्दी उपन्यास कला : भूमिका डा० प्रतापनारायण टंडन पृष्ठ—१५
* वही, प्रकाशकीय

इस संग्रह की कविताओं में मिलती है, वह हिन्दी काव्य के क्षेत्र में सर्वथा अनछुई वस्तु है।* वस्तुतः इस कृति में रोमान्टिक संवेदनशीलता से पृथक् उनसे आधुनिक आत्मबोध के सांकेतिक सन्दर्भ भी यत्र-तत्र होते हैं। प्रस्तर प्रतिमाओं अथवा भव्य प्राचीरों एवं संस्थानों को देख कर लेखक ने अपनी अनुभूति एवं संवेदना को भी सजग किया है। यह अपने ढंग की हिंदी में सर्व-प्रथम और अनूठी कृति है।

अभिशप्ता (उपन्यास)—इस उपन्यास की रचना लेखक ने एक रोगिणी युवती की ओर से आत्म-कथात्मक शैली में की है। कथा का आरम्भ सिटी हास्पिटल के फीमेल वार्ड नं० ७ बी से होता है। यहाँ पर कथा की प्रधान पात्री निशा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है। वह सोचती है कि शायद कल का दिन देखना उसके भाग्य में नहीं लिखा है। इसलिए वह अपने अतीत जीवन पर एक दृष्टि डालती है, जो वस्तुतः दमित आकांक्षाओं, आत्म-पीड़न की भावनाओं अतृप्त अभिलाषाओं और कैंसर नामक भयानक रोग से संघर्ष की कथा है। वह सोचती है कि यह सब आकस्मात ही नहीं हुआ है। वह यह भी अनुभव करती है कि अब उसके सारे सम्बन्धियों और परिचितों में से प्रत्येक व्यक्ति उसके और मौत के बीच सीधे संघर्ष से हट गया है। मृत्यु की निकटतम अनुभूति के साक्ष्य में लिखी गयी निशा नामक कैंसर पीड़िता युवती की जीवन-कथा इस उपन्यास में अत्यन्त मार्मिक रूप में मिलती है।

वासना के अंकुर (उपन्यास)—यह डा० प्रतापनारायण टंडन का यथार्थ-वादी जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया मौलिक उपन्यास है। निम्न मध्य-वर्गीय सामाजिक जीवन की परम्परागत रीतियों और संस्कारों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। मानव जीवन की स्वाभाविक आकांक्षाओं और उनकी क्रूर विडम्बनात्मक परिणतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति इस उप-न्यास में मिलती है। निम्न मध्यवर्गीय समाज के महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को किन अपमानजनक परिस्थितियों से सर्वथा असहाय रूप में गुजरना पड़ता है इसका अंकन लेखक ने उपन्यास में व्यापक सामाजिक आधार पर किया है। निम्न मध्य वर्गीय समाज के लोग स्वयं अपने ही संस्कारों के बंधन में अपने अज्ञान के वश होकर बँधे रहते हैं। श्रेष्ठ जीवन स्तर पर जीने की बलवती

*दे० पथरीले प्रतिरूप, डा० प्रतापनारायण टंडन (भूमिका)।

आकांक्षा उन्हें क्रियाशील बनाती है, परन्तु दुर्भाग्य उन्हें कभी पनपने नहीं देता। इस दृष्टि से यह उपन्यास एक नवीन कृति है।

स्फुट रचनाएँ

इन रचनाओं के अतिरिक्त डा० प्रतापनारायण टण्डन की अनेक रचनाएँ, उनके रचना काल के प्रारम्भ से ही भारत की विविध पत्र-पत्रिकाओं (साप्ताहिक, मासिक और त्रैमासिक) में सदैव प्रकाशित तथा आल इण्डिया रेडियो से प्रसारित होती रही हैं एवं पाठकों तथा श्रोताओं द्वारा बहु प्रशंसित हुई हैं। इन रचनाओं के अध्ययन से एक ओर लेखक के विस्तृत ज्ञान एवं ठोस चिन्तन का प्रमाण मिलता है, तो दूसरी ओर उनकी लोकप्रियता पर भी सूक्ष्म प्रकाश पड़ता है। पाठकों द्वारा निरन्तर बढ़ती हुई माँग के कारण ही पत्र-पत्रिका-सम्पादकों ने अनेक रचनाओं को अनेक बार विभिन्न पत्रों में प्रकाशित किया है और प्रमुख रचना के रूप में अग्रस्थान दिया है। सम्पादकों के पत्रों से ज्ञात होता है कि जिन दिनों लेखक कोई रचना देने के 'मूड' में नहीं होता था, वे बिना उनकी अनुमति के दूसरी पत्रिकाओं में प्रकाशित किसी रचना का पुनर्प्रकाशन कर देते थे।

आगे लेखक की स्फुट रचनाओं की काल क्रमानुसार (प्रकाशन वर्ष) तालिका दी जा रही है। यह तालिका सम्पूर्ण नहीं है, क्योंकि काफी प्रयत्न करने के पश्चात् भी दर्जनों पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध नहीं हो पायीं, जिनमें उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

लखनऊ	१. मेरी नाकामयाबी	कहानी
	२. अन्तराल (क० सं०)	पु० समीक्षा
	३ अगला कदम (उ०)	"
नागपुर	प्रेमचंद युग के उपन्यासों में उच्च वर्ग	लेख
कलकत्ता	जब सृजन शक्ति कुंठित हो जाती है	लेख
आगरा	'मृगनयनी' का मूल्यांकन	लेख
"	प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासों में निम्न वर्ग	लेख
पटना	मैला आंचल-एक मूल्यांकन	समीक्षा
लखनऊ	एक चेहरा	कहानी
जबलपुर	मनहूस दिन	कहानी
जोधपुर	प्रेमचंद और उनके परवर्ती उपन्यासकार	निबंध
पटना	आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि	निबंध
लखनऊ	आधुनिक उपन्यास का विकास	"
जबलपुर	वह काटा है	कहानी
कानपुर	आलम अली	"
अम्बाला	चौक से हजरतगंज तक	"

अगस्त ५७	युग चेतना (मा०)	लखनऊ	आधुनिक हिंदी कविता	सम्पा०
"	"	"	अन्धी गली	पु० स०
अक्तूबर ५७	कल्पना (मा०)	हैदराबाद	बड़ी-बड़ी आँखें (उप०)	पु० स०
नवम्बर ५७	वसुधा (मा०)	जबलपुर	इंटरव्यू लेटर	कहानी
"	आस्था (मा०)	देवरिया	बदलते इरादे	"
नव-दिस. ५७	साहित्यकार (मा०)	इलाहाबाद	साहित्यिक संकलन का महत्व	लेख
दिसम्बर ५७	युग चेतना (मा०)	लखनऊ	लेखक और समीक्षक	सम्पा०
"	युग प्रभात (मा०)	केरल	आधुनिक हिंदी निबंध	लेख
जनवरी ५८	युग चेतना (मा०)	लखनऊ	साहित्य और युगीनता	सम्पा०
"	जागृति (मा०)	अम्बाला	सड़क बस और यात्री	कहानी
फरवरी ५८	युगचेतना (मा०)	लखनऊ	साहित्य में यथार्थता की समस्या	सम्पा०
मई ५८	मनोरमा (मा०)	इलाहाबाद	बच्चों के मानसिक विकास की समस्या	लेख
"	जागृति (मा०)	अम्बाला	आदर्श ग्राम	एकांकी
जून १९५८	मधुकर (मा)	दिल्ली	सर्पिणी की रोमांचक आकर्षण कथा	कहानी
"	युग चेतना (मा)	लखनऊ	ठहराव	संस्मरण
	साहित्य परिचय (मा)		युग और साहित्य	लेख
	नवनीत (मा)	बम्बई	कुमायूँ का आदमखोर	शिकार सं.

जून-जौ० ५८	अजन्ता (मा.)	हैदराबाद	नई पीढ़ी के उपन्यासों में कथा शिल्प के रूप	निबंध
जुलाई ५८	युग चेतना (मा.)	लखनऊ	कथा अंश	कहानी
,,	जागृति (मा.)	अम्बाला	आँख का वार्ड	,,
अगस्त ५८	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	उपन्यास में शिल्पकला और उसका महत्व	लेख
अक्टूबर ५८	सरिता (मा.)	नई दिल्ली	आदमी जागेगा	कहानी
नवम्बर ५८	युग चेतना (मा.)	लखनऊ	उचक्का	,,
,,	युग प्रभात (मा.)	केरल	आधुनिक हिन्दी एकांकी	निबंध
दिसम्बर ५८	सरस्वती संवाद (मा.)	आगरा	उपन्यास की व्याख्या और क्षेत्र	,,
जन. फर. १९५९	साहित्य संदेश (मा.)	आगरा	वर्मा जी के उपन्यासों में कथा शिल्प के रूप प्रयोग	लेख
अप्रैल ५९	युग चेतना (मा.)	लखनऊ	प्रारम्भिक युगीन कथा साहित्य में कथा रूपों का विकास	संम्पा.
अक्टूबर ५९	शिक्षा (त्रैमा.)	उ. प्र. शासन लखनऊ	प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य	निबंध
मार्च ६०	सप्तसिन्धु (मा.)	पटियाला	मध्य युगीन उपन्यासों में कथारूप	,,
अप्रैल ६०	शिक्षा (त्रैमा.)	लखनऊ	प्राचीन लोक कथा साहित्य	,,
—				कहानी

जौलाई ६०	काव्यशास्त्र अंक (अतिरिक्त अंक)	आगरा	प्राचीन रोमीय विचारक और उनका दृष्टिकोण	निबन्ध
जनवरी १९६२	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	प्राचीन ग्रीक विचारक और उनका समीक्षात्मक दृष्टिकोण	निबंध
,,	सारिका (मा)	दिल्ली	एक शाम की बात	कहानी
फरवरी ६२	राष्ट्रीवाणी	पूना	पाश्चात्य समीक्षा की पृष्ठभूमि	लेख
मार्च ६२	,,	,,	पुनर्जागरण कालीन पाश्चात्य समीक्षा	लेख
,,	ज्ञान साहित्य (मा)	पटियाला	निशा	कहानी
,,	नई कहानियाँ (मा.)	दिल्ली	भेद की बात	,,
अप्रैल ६२	सप्त सिन्धु (मा.)	पटियाला	केशव कृत 'वीर सिंह देव चरित' में वीर रस वर्णन	लेख
,,	मनोहर कहानियाँ (मा.)	इलाहाबाद	एक लाश : एक आत्मा	कहानी
,,	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	प्राचीन युगीन यूरोपीय समीक्षा	निबन्ध
जून ६२	,,	,,	१६वी सदी में यूरोपीय समीक्षा	,,
,,	त्रिपथगा (मा.)	लखनऊ	प्राचीन रोमीय विचारक और उनका दृष्टिकोण	,,
जौलाई ६२	राष्ट्रवाणी (मा)	पूना	मध्य युगीन यूरोपीय समीक्षा	,,
जौलाई/अग. ६२	सप्तसिंधु (मा.)	पटियाला	एकांकी की विषय वस्तु	,
	जन साहित्य (मा.)	पटियाला	नौ हजार की चपत	एकांकी

सितम्बर ६३	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	प्रतीकवादी साहित्यान्दोलन	निबंध
दिसम्बर ६३	,,	,,	प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य धाराएँ	,,
,,	कहानी (मा.)	इलाहाबाद	मिस पिन्टों की दास्ताने मुहब्बत	कहानी
जनवरी ६४	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	अनुकरण सिद्धांत और रस विषयक दृष्टिकोण	निबंध
जून ६४	जन साहित्य (मा.)	पटियाला	कोडमदे	रेडियो नाटक
अक्टूबर ६४	स्त्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	पिस्टोइया का एक भवन	कविता
नव./दिस. ६४	जन साहित्य (मा.)	पटियाला	नेहरू और भाषण कला	निबंध
,,	स्त्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	ट्रेसी फाउन्टेन	कविता
,,	सप्त सिंधु (मा.)	पटियाला	स्मृति की छाया	एकांकी
जनवरी ६५	,,	,,	१८ वीं सदी के अंग्रेजी समीक्षक	निबंध
,,	स्त्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	अभागिनी	कहानी
मार्च ६५	लहर (मा.)	अजमेर	संस्कारों की दूरी	,,
अगस्त ६५	कहानी (मा.)	,,	तिकोनी रोशनी का व्यूह और साढ़ी जग	,,
सितम्बर ६५	कादम्बिनी (मा.)	दिल्ली	'दोमानी' बमानी 'टूमारो'	यात्रा संस्मरण

अगस्त ६२	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	१८ वीं सदी में यूरोपीय समीक्षा	निबंध
सितम्बर ६२	"	पूना	ड्रायडन के आलोचना सिद्धान्त	"
अक्टूबर ६२	"	"	मध्ययुगीन अंग्रेजी समीक्षा	"
"	शिक्षा (त्रैमा.)	लखनऊ	राष्ट्रीय मान्यताएँ और समालोचना सिद्धांत	"
दिसम्बर ६२	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	१९ वीं सदी में यूरोपीय समीक्षा	"
जनवरी ६३	राष्ट्रवाणी (मा.	पूना	नवयुगीन यूरोपीय समीक्षा	निबंध
फरवरी ६३	"	"	आधुनिक अमेरिकी समीक्षा	"
"	सप्त सिंधु (मा.)	पटियाला	१७वीं शताब्दी पूर्व यूरोपीय समीक्षा	"
मार्च ६३	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	डा० जानसन के समकालीन आलोचक	"
अप्रैल ६३	"	"	आधुनिक युग की यूरोपीय समीक्षा	"
मई ६३	"	"	अंग्रेजी आलोचना और रिचर्ड्स	"
जून ६३	"	"	अंग्रेजी आलोचना की नई प्रवृत्तियाँ	"
"	लहर (मा.)	अजमेर	औरत और पकौड़ी की जिन्दगी	कहानी
जुलाई ६३	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	अस्तित्ववाद और साहित्यालोचन	निबंध
अगस्त ६३	"	"	अति यथार्थवादी विचार आन्दोलन	"
"	फिल्मी दुनिया (मा.)	दिल्ली	लाल रेशम का पतला धागा	कहानी

सितम्बर ६३	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	प्रतीकवादी साहित्यान्दोलन	निबंध
दिसम्बर ६३	„	„	प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य धाराएँ	„
„	कहानी (मा.)	इलाहाबाद	मिस पिन्टो की दास्ताने मुहब्बत	कहानी
जनवरी ६४	राष्ट्रवाणी (मा.)	पूना	अनुकरण सिद्धांत और रस विषयक दृष्टिकोण	निबंध
जून ६४	जन साहित्य(मा.)	पटियाला	कोडमदे	रेडियो नाटक
अक्टूबर ६४	खत्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	पिस्टोइया का एक भवन	कविता
नव./दिस. ६४	जन साहित्य (मा)	पटियाला	नेहरू और भाषण कला	निबंध
„	खत्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	ट्रैसी फाउन्टेन	कविता
„	सप्त सिंधु (मा)	पटियाला	स्मृति की छाया	एकांकी
जनवरी ६५	„	„	१८ वीं सदी के अंग्रेजी समीक्षक	निबंध
„	खत्री हितैषी (मा.)	लखनऊ	अभागिनी	कहानी
मार्च ६५	लहर (मा.)	अजमेर	संस्कारों की दूरी	„
अगस्त ६५	कहानी (मा)	„	तिकोनी रोशनी का व्यूह और शाही जग	„
सितम्बर ६५	कादम्बिनी (मा.)	दिल्ली	'रोमानी' बमानी 'टूमारो'	यात्रा संस्मरण

अन्य स्फुट रचनाएँ—इसके अतिरिक्त लेखक की अनेक रचनाएँ फुटकर पुस्तकों, निबंध संग्रहों, अभिनन्दन ग्रन्थों एवं स्मृति ग्रंथों में संगृहीत हैं, जिनमें कुछ का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

१. 'जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व' (सम्पादक, श्री सत्यप्रकाश मिलिंद) में 'जैनेन्द्र के उपन्यास साहित्य में शिल्प रूप' निबंध।
२. 'युग-मनु प्रसाद' (सम्पादक डा० ब्रजकिशोर मिश्र एवं श्री गिरीश चन्द्र त्रिपाठी), में 'प्रसाद के उपन्यास और युगीन शिल्प विशेषताएँ' नामक निबंध।
३. 'बाबू देवकी नन्दन खत्री : स्मृति ग्रंथ, (स० श्री गिरीश चन्द्र त्रिपाठी) में खत्री जी के उपन्यासों में शिल्प रूप।
४. 'माखन लाल चतुर्वेदी : एक विद्रोही आत्मा'।

आकाशवाणी से प्रसारित रचनाएँ—उपर्युक्त स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त आकाशवाणी से भी डॉ० प्रतापनारायण टंडन की अनेक वार्ताएँ, पुस्तक समीक्षाएँ, कहानियाँ, हास्य नाटक, ऐतिहासिक नाटक तथा शब्द चित्र आदि प्रसारित हो चुके हैं। विविध पुस्तकों की समीक्षा के अतिरिक्त उनके लिखे हुए "नवाब कनकौवा" तथा 'कोडमदे' नामक रेडियो रूपक एवं "इंटरव्यू लेटर", "सुहता", जीवनसिंह", "लतीफ", "गीली", "एक शाम", "भेद की बात", "शिशु कन्या" तथा "माया जाल" आदि कहानियाँ भी आकाशवाणी से प्रसारित हो चुकी हैं।

साहित्यिक क्षेत्र की ओर आकर्षण

डा० प्रतापनारायण टण्डन में भावयत्री और कारयत्री दोनों प्रतिभाओं का गंगा-यमुना सा संगम है। साहित्य में उनकी रुचि सहसा उद्भूत हुए उफान की तरह जाग्रत नहीं हुई, अपितु इसके सन्दर्भ में बाल, किशोर और युवा मस्तिष्क की अनवरत तपश्चर्या का बल झांक रहा है। पारिवारिक झंझावातों की विभीषिकाओं से ऊब कर लेखक का

कोमल पर चिन्तक मस्तिष्क किशोरावस्था से ही साहित्य साधना की ओर उन्मुख होने लगा था। एक स्थान पर लेखक ने स्वयं लिखा है—"साहित्य के अध्ययन के लिए बचपन से ही रुचि रही........साहित्य लेखन के क्षेत्र मे प्रवेश मूलतः बाल साहित्य के सन्दर्भ में हुआ। लिखने की प्रेरणा भी प्रारम्भ में बाल साहित्य के पारायण से हुई, "वस्तुतः लेखक के जीवन का किशोर-काल अनेक बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं से लेखक तथा सम्पादक के रूप में सम्बद्ध रहा। अपने विद्यार्थी जीवन में कॉलेजो में छात्र सम्पादक के रूप मे, कार्य करने का अवसर मिला, फलतः बाल साहित्य की ओर स्वतः रुचि प्रगति करती गयी।

लेखक का बाल साहित्य से सम्बन्ध अधिक नही रहा। इसमे लेखक के पारिवारिक जीवन का भी बहुत बड़ा हाथ है। बाद मे तो उन्हें इतनी झुंझल सवार हुई—इतनी वितृष्णा हुई कि उन्होंने स्वय ही—लगभग अपने समस्त बाल साहित्य को नष्ट हो जाने दिया। पारिवारिक झुन्दाल ने लेखक की अनेक अन्यतम बाल साहित्य सम्बन्धी रचनाओं को नष्ट करा दिया।

साहित्य प्रेरणा—जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, लेखक की साहित्य के प्रति रुचि बाल्यकाल से ही थी जो शनैः शनैः विकसित हो रही थी। साहित्यिक अध्ययन के विकास के साथ-साथ देशी-विदेशी साहित्यकारों की रचनाओ से परिचय हुआ और कृतियों को बुद्धि की तुला पर तोलने का अवसर मिला। श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ मन में एक विचित्र अनुभूति जाग्रत करती थीं। साहित्य सर्जना की प्रेरणा में लेखक का कोई एक केन्द्र-बिन्दु न होकर जीवन के बहु-रूपी पक्ष थे। सामाजिक विडम्बना ने उसे झकझोर दिया था; दैनिक, सामान्य-जीवन में अनेक अप्रत्याशित परिणतियो ने नई प्रेरणा दी और उन पर लिखने को विवश किया। एक स्थान पर लेखक अपने विषय में कहता है—"विविध सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों के जीवन की विडम्बनात्मक परिणतियाँ कभी-कभी स्तब्ध सा कर देती हैं। जीवन के वे क्षण, जिनमें वास्तव में मनुष्य जीता है, ही यथार्थतः जीवन्त पल होते हैं। मेरी मान्यता है कि मानवीय जीवन और उसके विविध क्षेत्रीय कार्य-कलाप की विशिष्ट उपलब्धियाँ इन्हीं जीवन्त क्षणों के आधार पर निर्धारित होती हैं।"*

---

* दे० विदेशी पत्रिका में छपी आत्मकथा।

प्रेरणा दो प्रकार से प्राप्त होती है—क्रियात्मक रूप से और प्रतिक्रियात्मक रूप से। अनुकूल वातावरण का सीधे हृदय पर सुन्दर प्रभाव डालना क्रियात्मक प्रेरणा है और मन के प्रतिकूल वातावरण के विरोध में कार्य करना, उस वातावरण से प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा प्राप्त करना है। कभी-कभी अनुकूल वातावरण वह प्रेरणा नहीं दे पाता जो प्रतिकूल वातावरण दे देता है। विरोध में दब पड़ा हुआ तूफान दब कर नहीं रह सकता—सब में प्रकट हो ही जाता है। उसमें दृढ़ता होती है; और यह दृढ़ता ही सफलता के मार्ग को प्रशस्त करती है। डा० प्रतापनारायण टण्डन की साहित्य-साधना में यदि अनुकूल क्रिया-कलापों से प्रेरणा दी है तो ऐसी प्रेरणाएँ भी कम नहीं रहीं, जिन्होंने पग-पग पर हतोत्साहित किया—लेखक की भर्त्सना की और इनसे प्रेरित होकर लेखक और भी अधिक संकल्प युक्त होकर लेखन कार्य में लगा रहा। लोग उन पर हँसते थे—उनका मजाक बनाते थे और वह एकान्त में बैठा लिखता रहता था—इस अटूट संकल्प को लिए कि इन हँसने वालों को दिखा देना है, कि जिस पर तुम विद्रूप की हँसी हँस रहे हो, उसकी कलम में कितनी ताकत है।

प्रभाव

लेखक का साहित्यिक जीवन उसकी सतत् साधना एवं कठिन तपश्चर्या का परिणाम है। अनवरत साहित्य सागर का मन्थन करके जिन भाव रत्नों को निकाला है, उनमें अपनी अनोखी चमक है—निराली आभा है; ऐसी आभा जो अपने ढंग की अकेली है। फिर भी उसे पूर्णतया प्रभाव-हीन नहीं कहा जा सकता। कोई भी व्यक्ति आसपास के वातावरण, पुस्तक प्रणयन से उद्भूत विचारों के प्रभाव से अछूता नहीं बचता, न्यूनाधिक प्रभाव पड़ ही जाता है। अन्यथा सभ्यता और शिष्टता शब्द ही मिट जायें। डा० प्रतापनारायण टण्डन भी इसके अपवाद नहीं हैं। युगचेतना के सम्पादक होने के नाते तथा विदेश भ्रमण के कारण अनेक देशी-विदेशी साहित्यकारों के सम्पर्क में आये। विचारों
ने, नैसर्गिक है कि चिन्तन को विवेकमय बनाया। विदेशी
अध्ययन की ओर प्रारम्भ से ही रुचि रही है, अतः उनका यह
उनकी रचनाओं पर स्पष्ट दीखता है।

विदेशी प्रभाव—लेखक के विचारों पर अनेक विदेशी-साहित्य कार का प्रभाव पड़ा है। डा० प्रतापनारायण टण्डन प्रारम्भ में स्टीफेन ज्विग, शेक्सपीयर, एन्टन चेखव, अलबर्टो मोरेविया तथा गुस्ताव फ्लाबेयर आदि प्रभावित हुए थे। साहित्य की उपलब्धियों के रूप में मुख्य रूप से इन्ही साहित्य-कारों की कृतियों का परिचय प्राप्त हुआ। किन्तु जैसे-जैसे उनके ज्ञान को प्रौढ़ता प्राप्त होती गयी, साहित्यकारों से परिचय का क्षेत्र बढ़ता गया। टी०एस० इलियट के व्यक्तित्व एवं रचनाओं ने लेखक के साहित्यिक जीवन पर काफी प्रभाव डाला है, वे इन कथाकारों की रचनाओं की प्रशंसा करते हैं। उनका कहना है कि इनकी रचनाओं में सशक्त विचार एक गुच्छे के रूप में गुँथे रहते हैं, और भाषा भाव तथा शिल्प का आश्चर्यजनक संगठन रहता है। किसी बड़ी बात को कहने के लिए उतने ही बड़े धरातल का निर्माण करते हैं और अपनी इच्छित बात को कहने के लिए वातावरण तैयार करके ही उसे कहते हैं, फल यह होता है कि उसका प्रभाव पाठक पर सफल पड़ता है। एव पाठक उस बात पर, कहने के ढंग पर मुग्ध हो जाता है। इतना होते हुए भी इनकी खूबी यह है कि कहीं कोई शिथिलता नहीं आती और पढ़ने में आकर्षण पूर्ववत रहता है—गतिरोध नहीं होता।

मई-जून १९६४ में डा० प्रतापनारायण टण्डन को यूरोप भ्रमण का अवसर प्राप्त हुआ था। इस यात्रा के दौरान उन्हें नित्य नवीन अनुभूतियाँ हुई। इन्होंने उनके जीवन को काफी सीमा मे प्रभावित किया। ऐतिहासिक नगरो की भव्यता, हर ओर विशाल जन समूह का कोलाहल, भारी चहल-पहल, हाईवेज और बाईवेज पर कारों का फुलस्पीड से उत्पन्न तुमुल गर्जन और दिन-रात दुल्हिन की तरह सजे विराट् बाजार तो दूसरी ओर प्राचीन ऐतिहासिक स्थानो पर व्याप्त निस्तब्धता, गहन शान्ति, एवं प्राचीनतम सस्कृति तथा वैभव के जगमगाते प्रतिरूप—जहाँ कोलाहल भी भयभीत होकर शांत खड़ा हो, एक ही नगर में एक ओर साज-सज्जा में आधुनिकतम साधन तथा वैज्ञानिकता की अनुपम प्रगति तो दूसरी ओर अति प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति अपने उसी रूप मे पूर्ण सुरक्षित, जिसे देख कर लगता है कि अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व के वातावरण में, उसी समय की चहल-पहल मे प्रवेश कर गये हों—को देख कर लेखक ने नई प्रेरणाएँ प्राप्त की। रोम निवासियों द्वारा अपनी प्राचीन को इस कुशल सुरक्षा को देख कर लेखक चकित रह गया। प्राचीनता की

से ये मगर यदि अग्रतम थे तो आधुनिकता की होड़ में भी किसी से पीछे नहीं : इन्होंने लेखक को अपने देश की एक सीमा तक प्रभावित किया। बाद में क्रमशः टॉलस्टाय, हार्वर्ड फास्ट, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, दास्तोएव्स्की, डी. एच. लारेंस, सामरसेट माम, एमाइल जोला, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, ज्याँ पाल सार्त्र, अल्बर्ट कामू, तथा शोलोखोव आदि लेखकों की उपन्यासात्मक अवगति प्राप्त की। अन्य अनेक विदेशी लेखकों की इन्हीं प्रकार की रचनाओं की कलात्मक उच्चता ने लेखक को प्रभावित किया है। इन विदेशी साहित्यकारों की भावभूमि और शिल्प विधान दोनों ही से लेखक प्रभावित है। इनकी कृतियों की कलात्मक उच्चता में किसी न किसी रूप में समग्रता आभासित होती है—ऐसी समग्रता जो इतर साहित्यकारों में बहुत कम दिखायी देती है। इसीलिए लेखक इन साहित्यकारों के विषय में अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव के सदर्भ में कोई आनुपातिक अथवा तुलनात्मक स्तर और स्थान निर्धारण में कुछ कठिनाई अनुभव करता है। जिन विदेशी साहित्यकारों से लेखक प्रभावित हुआ है उनके सम्बन्ध में उसका विचार है कि ये लेखक मूल मानवीय अनुभूतियों के सजग व्याख्याता रहे हैं और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उनकी वैचारिक उपलब्धियाँ अद्वितीय रही हैं।

कथा साहित्य में लेखक की विशेष रुचि रही है। उसका चिन्तनशील मस्तिष्क अपने विचारों को कथा-साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने में अधिक सफल रहता है (लेखक के अधिकतर प्रबन्ध एवं समालोचनाएँ भी उपन्यास-कला से सम्बन्धित हैं)। इसी कारण से, यह द्रष्टव्य है कि लेखक विश्व साहित्य में जिन साहित्यकारों से किसी प्रकार की अनुभूत्यात्मक निकटता का अनुभव करता है, उनमें से अधिकांश कथा साहित्य के ही प्रणेता रहे हैं। यह दृष्टिकोण विशेष का ही प्रभाव है कि लेखक पहले उल्लेख किये गये लेखकों को ही संसार के श्रेष्ठतम कथाकारों में परिगणित करता है (क्योंकि इनके विचार और लेखक के विचार परस्पर सामंजस्य रखते हैं)।

डा० प्रतापनारायण टण्डन से इस विषय में अनेक बार वार्तालाप का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जब-जब इस विषय और वहाँ की गति में, अपने देश के जीवन स्तर तथा वहाँ के जीवन स्तर में, अपने देशवासियों की विचार प्रणाली (Thinking Method) में तथा वहाँ के देशवासियों की विचार प्रणाली

में भारी अन्तर दिखायी दिया; और उस अन्तर से लेखक काफी सीमा तक प्रभावित हुआ। उसका थोड़ा बहुत आभास उनकी कृति पथरीले प्रतिरूप की कविताओं एवं भूमिका से होता है।

भारतीय साहित्य का प्रभाव—यदि विदेशी साहित्यकारों के साहित्य ने डा० प्रतापनारायण टण्डन के प्रौढ़ मस्तिष्क को समर्थ चिन्तन की समर्थता प्रदान की, तो भारतीय साहित्यकारों के अमर साहित्य ने लेखक की विचारभूमि को उर्वर बनाया तथा चिंतन क्षेत्र की दिशा निर्देशित की। प्रारम्भ से ही लेखक का भारतीय साहित्य से सम्पर्क रहा, यह सम्पर्क उनकी रचनाओं के माध्यम से प्राप्त हुआ। जिन लेखकों की कृतियों से लेखक का घनिष्ठ रूप में परिचय हुआ, उनमें आदि कवि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास, महाकवि कालिदास, बाणभट्ट, तुलसीदास, रवीन्द्र नाथ, शरत्चन्द्र तथा प्रेमचन्द आदि हैं। भारतीय साहित्य में इनकी वरेण्य उपलब्धियाँ सदैव एक सजग अवगति का संकेत देती रही हैं। जीवन के प्रति इन साहित्यकारों का दृष्टिकोण तथा जीवन में उनकी आसक्ति और अनासक्ति के संतुलित बिंदु निर्धारण का उनका विवेक भी अपने ढंग का निराला एवं आस्था-जनक है। लेखक इनकी अनुभूतियों से भी एक मात्रा में प्रभावित हुआ है। इनकी समर्थ लेखनी से निसृत शिल्प-विधान तथा घटना का सगठन अद्वितीय है जो सदैव लेखक के लिए मार्ग निर्देशन का कार्य करते रहे हैं। लेखक का स्पष्ट मत है कि महर्षि वेदव्यास का महाभारत जिस बड़े धरातल पर है तथा जिस कथानक को उन्होंने उठाया है, वह अपने ढग का बेजोड़ है और विश्व के समस्त साहित्यकार उनके सम्मुख घुटने टेक जाते है—टक्कर लेने की तो बात ही कौन कहे।

वर्तमान हिंदी साहित्यकारों में जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अज्ञेय तथा डा० देवराज की कृतियों से विशेष परिचय हुआ। इन लेखकों की रचनाओं का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर लेखक ने स्वय लिखा है—"आधुनिक हिन्दी साहित्य के सम्बंध में मेरा अनुमान है कि उसका स्तर और उपलब्धियाँ किसी भी दृष्टि से हीन नहीं हैं। आज हिंदी साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त चतुर्मुखी जागरूकता और क्रियाशीलता उसकी रचनात्मक सामर्थ्य की परिचायक है। ससार की समृद्ध भाषाएँ, जो अपने पीछे सैकड़ों वर्षों की साहित्यिक और रचनात्मक परम्पराएँ लिये हुए हैं, उनकी तुलना में हिंदी का आनु

पातिक महत्व विशिष्ट है। कथा साहित्य, आलोचना, कविता तथा नाटक के क्षेत्र मे अनेक साहित्यकार आधुनिकतम बौद्धिक अवगति का परिचय दे रहे हैं।" *

अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', अमृतलाल नागर लिखित 'बूंद और समुद्र', 'भगवती चरण वर्मा लिखित 'भूले विसरे चित्र', यशपाल लिखित 'झूठा सच' तथा डा० देवराज के 'अजय की डायरी' से लेखक की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में समर्थ एवं सशक्त कृतियाँ है। इसी कारण हिन्दी में लेखक इन साहित्यकार विशेष प्रभावित है। डा० देवराज के दार्शनिक चिंतन ने लेखक के विचारों एक निश्चित सीमा की ओर प्रेरित किया है। लेखक के लेखन में वर्तमान ि इसी ओर का आभास देती है। आगे की कृतियों में उनका सुनिश्चित वैचार स्वरूप सामने आ सकेगा।

* दे० विदेशी भाषा में इन प्रमुख साहित्यकारों के सम्बन्ध में लेख बोध।

अध्याय : २

औपन्यासिक उपलब्धियों के केन्द्र बिन्दु

उपन्यासों का विकास क्रम

डा० प्रतापनारायण टण्डन की रचनाओं का उपन्यास साहित्य को विशिष्ट योगदान है। उनकी स्वयं की रुचि उपन्यास-साहित्य की ओर विशेष है। अतः सर्व प्रथम हम उनके उपन्यासों का ही आकलन करेंगे। साथ ही यह ध्यान भी रखना जरूरी है कि उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य-विधा है। आज के उपन्यासकारों ने (अधिकांश ने) उपन्यास को जीवन का गम्भीर अध्ययन न समझ कर केवल हल्के पठन की वस्तु ही समझ रखा है, और अपनी इस धारणा के अनुसार ही उसका रूप गठित किया है। क्योंकि 'उसे पढ़ने में अधिक माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए हमारे प्रौढ़ आलोचक महा-रथियों को उसकी उपेक्षा करना अनिवार्य सा हो गया है।'* क्योंकि उसमें उन्हें आलोच्य सामग्री ही नहीं मिलती। किंतु डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों ने साहित्य-क्षेत्र में फैली इस मान्यता को हिला दिया है, उनके उप-न्यासों का ध्यान जीवन-मूल्य की ओर ही विशेष है। कलात्मक सौष्ठव परिपक्व है और विषय एवं शिल्प अपने ढंग का अनोखा है। इसी कारण उनके उपन्यासों के मूल्यांकन की नितान्त आवश्यकता है।

इसके पूर्व कि हम डा. प्रताप नारायण टण्डन के उपन्यासों की साहित्यि समीक्षा प्रस्तुत करें, उपन्यास साहित्य के विकास पर एक दृष्टि डाल लें

---

* दे० हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा० गणेशन, पृष्ठ—१

आवश्यक है, क्योंकि इससे उनके पूर्व की प्रवृत्तियों का स्वरूप एवं विसर्ग-क्षेत्र का परिचय मिल जायेगा।

हिन्दी उपन्यास साहित्य का विकास—हिंदी में प्रायः ९० वर्षों से उपन्यास साहित्य का अन्य विधाओं पर प्रभुत्व सा रहा है। बीच में कुछ समय के लिए काव्य ने प्रमुखता धारण कर ली थी, किन्तु इससे उपन्यास की महत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा—यह सतत प्रगतिशील ही रहा। अन्य आंदोलन तो साहित्य सागर में उठने वाले उन ज्वारभाटे के समान थे जो उठते थे और शीघ्र ही तिरोहित हो जाते थे, किन्तु उपन्यास की धारा उस जान्हवी के समान थी जो समय, देश और वातावरण के प्रभाव से आकार परिवर्तन भले ही कर ले, किन्तु अव्याहत गति से आगे को प्रवाहित होती ही रहती है।

हिंदी उपन्यास की परम्परा का वास्तविक आरम्भ कब हुआ, इस विषय पर पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन काल के कथानकों से आज के उपन्यासों की शृंखला बैठाना एक दूर की कौड़ी फेंकना मात्र है और केवल पश्चिमी (विदेशी) उपन्यास साहित्य का अनुकरण कहना सत्यता पर परदा डाल कर अंग्रेजियत के गीत गाना मात्र है। यद्यपि यह सत्य है कि हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का प्रादुर्भाव अंग्रेजी शासन ? प्रारम्भ होने के पश्चात् ही हुआ, फिर भी जो सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन एवं नव चेतना का प्रसारण हो रहा था, उसने भारतीय उपन्यासकारों के विचारों को नई गति प्रदान की और 'पुरानी नींव नया निर्माण' की तरह युग साहित्यकार ने अपने युग सत्यों को नवीन रूप में प्रस्तुत कर दिया! फिर भी इस तथ्य से परांगमुख नहीं हुआ जा सकता कि पाश्चात्य उपन्यासों ने हिंदी उपन्यासों की टेकनिक से संशोधन किया और इसके लिए हमारा हिंदी उपन्यास साहित्य उनका ऋणी है।

हिंदी उपन्यासों का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है। यद्यपि भारतेन्दु काल के उपन्यास उपन्यास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, फिर भी उस समय के लेखकों का तद्विषयक प्रयत्न स्तुत्य ही समझा जायेगा। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर मूल्यांकन करने पर उनका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार का महत्व है।

हिंदी उपन्यासों में सर्वप्रथम उपन्यास कौन सा है, इस पर विद्वानों में मतभेद है। पर यह मतभेद ऐसा नहीं है जिसका निराकरण न किया जा सके।

सम्यक् विवेचना होने पर तथ्य सामने आ ही जाते हैं। इस मतभेद के मुख्य कारण पं० रामचन्द्र शुक्ल के कुछ शब्द हैं जो उन्होने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में प्रयुक्त किये हैं। इन शब्दों को शोधार्थियों ने ब्रह्म वाक्य की तरह मान लिया और उसी आधार पर अपने मंतव्य निर्धारित किये। वस्तुतः शुक्ल जी ने अपने समय में प्राप्त सभी साधनो को जो सरलता से सुलभ थे, संकलित कर इतिहास की रचना की थी—शोध कार्य का तो प्रयत्न किया नहीं था, अतः आधुनिक पक्ष—विशेष रूप से उपन्यास-कहानी पक्ष काफी दुर्बल है। उन्होंने पहले उपन्यास की चर्चा करते हुए लिखा है—"'भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी सम्वत् १९३४ मे उन्होने (श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी ने) लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई।" उसके आगे उन्होंने फिर लिखा है : "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहल लाला श्री निवास दास का 'परीक्षा गुरु' ही निकला था"। यहीं दो प्रश्न उठ खड़े होते हैं—(१) जब 'भाग्यवती' सं० १९३४ (सन् १८७७) मे प्रकाशित हुआ था तो उसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास न मान कर 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास क्यों माना गया? जो सन् १८८२ (सं० १९३९) मे प्रकाशित * हुआ था (२) 'अंग्रेजी ढंग' से शुक्ल जी का क्या आशय है? डा० सुरेश सिन्हा अंग्रेजी ढंग शब्द का आशय 'आधुनिक पश्चिमी उपन्यास शिल्प'‡ से लेते हैं। परंतु यहीं एक अन्य समस्या आ खड़ी होती है, भाग्यवती का शिल्प विधान भी तो इसी आधार पर हुआ और वह काफी प्रशंसित कृति रही थी। जहाँ तक उपन्यास शिल्प की सफलता का प्रश्न है 'भाग्यवती' 'परीक्षागुरु' की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ रचना है—और सफल रचना है। जो दोष (शिल्प सम्बंधी) 'भाग्यवती' उपन्यास मे है, वही 'परीक्षा गुरु' में भी हैं—अतः निर्दोष रचना दूसरी कृति को भी नहीं कहा जा सकता। 'परीक्षा गुरु' से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश' उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका था, किंतु उसे गुजराती से अनूदित उपन्यास कह कर नजरंदाज किया जा सकता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'भाग्यवती' उपन्यास एक सफल रचना नहीं है। कितनी ही मौलिक रचनाएँ सफल नहीं होतीं, पर क्या मात्र इसी

* देखिये डा० सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास; पृष्ठ ८

‡ वही पृष्ठ ४७

आवश्यक है, क्योंकि इससे उनके पूर्व की प्रवृत्तियों का स्वरूप एवं विस्तीर्ण-क्षेत्र का परिचय मिल जायेगा।

हिन्दी उपन्यास साहित्य का विकास—हिंदी में प्रायः ९० वर्षों से उपन्यास साहित्य का अन्य विधाओं पर प्रभुत्व सा रहा है। बीच में कुछ समय के लिए काव्य ने प्रमुखता धारण कर ली थी, किंतु इससे उपन्यास की महत्ता पर कोई प्रभाव नही पड़ा—वह सतत प्रगतिशील ही रहा। अन्य आंदोलन तो साहित्य सागर में उठने वाले उस ज्वारभाटे के समान थे जो उठते थे और शीघ्र ही तिरोहित हो जाते थे, किंतु उपन्यास की धारा उस जान्हवी के समान थी जो समय, देश और वातावरण के प्रभाव से आकार परिवर्तन भले ही कर ले, किंतु अव्याहत गति से आगे को प्रवाहित होती ही रहती है।

हिंदी उपन्यास की परम्परा का वास्तविक आरम्भ कब हुआ, इस विषय पर पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन काल के कथानकों से आज के उपन्यासों की शृंखला बैठाना एक दूर की कौड़ी फेंकना मात्र है और केवल पश्चिमी (विदेशी) उपन्यास साहित्य का अनुकरण कहना सत्यता पर परदा डाल कर अंग्रेजियत के गीत गाना मात्र है। यद्यापि यह सत्य है कि हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का प्रादुर्भाव अंग्रेजी शासन ? प्रारम्भ होने के पश्चात् ही हुआ, फिर भी जो सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन एवं नव चेतना का प्रसारण हो रहा था, उसने भारतीय उपन्यासकारों के विचारों को नई गति प्रदान की और 'पुरानी नींव नया निर्माण' की तरह युग साहित्यकार ने अपने युग सत्यों को नवीन रूप में प्रस्तुत कर दिया। फिर भी इस तथ्य से पराङ्मुख नहीं हुआ जा सकता कि पाश्चात्य उपन्यासों ने हिंदी उपन्यासों की टेक्निक से संशोधन किया और इसके लिए हमारा हिंदी उपन्यास साहित्य उनका ऋणी है।

हिंदी उपन्यासों का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है। यद्यपि भारतेन्दु काल के उपन्यास उपन्यास की कसौटी पर खरे नही उतरते, फिर भी उस समय के लेखकों का तद्विषयक प्रयत्न स्तुत्य ही समझा जायेगा। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि मे रख कर मूल्यांकन करने पर उनका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार का महत्व है।

हिंदी उपन्यासों मे सर्वप्रथम उपन्यास कौन सा है, इस पर विद्वानों में मतभेद है। पर यह मतभेद ऐसा नहीं है जिसका निराकरण न किया जा सके।

सम्यक् विवेचना होने पर तथ्य सामने आ ही जाते हैं। इस मतभेद के मुख्य कारण पं० रामचन्द्र शुक्ल के कुछ शब्द हैं जो उन्होंने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में प्रयुक्त किये हैं। इन शब्दों को शोधार्थियों ने ब्रह्म वाक्य की तरह मान लिया और उसी आधार पर अपने मंतव्य निर्धारित किये। वस्तुतः शुक्ल जी ने अपने समय में प्राप्त सभी साधनों को जो सरलता से सुलभ थे, संकलित कर इतिहास की रचना की थी—शोध कार्य का तो प्रयत्न किया नहीं था, अतः आधुनिक पक्ष—विशेष रूप से उपन्यास-कहानी पक्ष काफी दुर्बल है। उन्होंने पहले उपन्यास की चर्चा करते हुए लिखा है—"'भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी सम्वत् १९३४ में उन्होंने (श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी ने) लिखा, जिसकी बड़ी प्रसंसा हुई।" उसके आगे उन्होंने फिर लिखा है : "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहल लाला श्री निवास दास का 'परीक्षा गुरु' ही निकला था"। यहाँ दो प्रश्न उठ खड़े होते हैं—(१) जब 'भाग्यवती' सं० १९३४ (सन् १८७७) मे प्रकाशित हुआ था तो उसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास न मान कर 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास क्यों माना गया? जो सन् १८८२ (सं० १९३९) मे प्रकाशित * हुआ था (२) 'अंग्रेजी ढंग' से शुक्ल जी का क्या आशय है? डा० सुरेश सिन्हा अंग्रेजी ढंग शब्द का आशय 'आधुनिक पश्चिमी उपन्यास शिल्प'‡ से लेते हैं। परतु यही एक अन्य समस्या आ खड़ी होती है, भाग्यवती का शिल्प विधान भी तो इसी आधार पर हुआ और वह काफी प्रसंसित कृति रही थी। जहाँ तक उपन्यास शिल्प की सफलता का प्रश्न है 'भाग्यवती' 'परीक्षागुरु' की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ रचना है—और सफल रचना है। जो दोष (शिल्प सम्बंधी) 'भाग्यवती' उपन्यास में है, वही 'परीक्षा गुरु' मे भी हैं—अतः निर्दोष रचना दूसरी कृति को भी नहीं कहा जा सकता। 'परीक्षा गुरु' से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश' उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका था, किंतु उसे गुजराती से अनूदित उपन्यास कह कर नजरन्दाज किया जा सकता है। यह भी नही कहा जा सकता कि 'भाग्यवती' उपन्यास एक सफल रचना नहीं है। कितनी ही मौलिक रचनाएँ सफल नही होती, पर क्या मात्र इसी

---

* देखिये डा० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास; पृष्ठ ८

‡ वही पृष्ठ ४७

दृष्टिकोण का परिचय दिया है। जो यथार्थवादी पात्र है उन्हें भी आदर्शवादी बनाने की ओर ही प्रेमचन्द का प्रयत्न रहा।

प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों को मनोविज्ञान के धरातल पर पूर्णरूपेण खड़ा नही कर पाये। अपने पात्रो को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करने मे वे असफल रहे है। ग्रामीण समाज, शहरी समाज, सामाजिक कुरीतियां, धार्मिक पाखंड, वेश्या-समस्या, अछूत समस्या, राजनैतिक स्वतन्त्रता, मात्र उनके मुख्य विषय कहे जा सकते हैं।

प्रेमचन्द के अतिरिक्त इस युग के उपन्यासकारों मे जयशंकर प्रसाद ('तितली', 'कंकाल', और 'इरावती') उग्र, चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राहुल सांकृत्यायन, चंडी प्रसाद हृदयेश, आदि मुख्य हैं। इनको प्रवृत्ति के अनुसार ही प्रेमचन्द युगीन कहा जा सकता है।

प्रेमचन्दोत्तर युग मे नई प्रवृत्तियाँ नही मिलतीं। प्रायः प्रेमचन्द युगीन परम्पराएं ही अपने विकसित रूप मे सामने आती रही। फिर भी ऐसे उपन्यासों की परम्परा कम नही है जो प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो की प्रवृत्ति से वैभिन्य रखते हैं।

यद्यपि भारतेन्दु कालीन ऐयारी अथवा कल्पना का मनोरंजन वाली प्रवृत्ति प्रेमचन्द युग मे समाप्त हो गई थी और राजनैतिकता की प्रवृत्ति विकसित होती रही थी फिर भी उसका वह रूप दिखाई नहीं देता जो आगे के उपन्यासों में मिलता है। समाज सुधार की प्रवृत्ति हिन्दी उपन्यासो के आरभ से रही है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग में इसी की प्रधानता (प्रेम प्रसंगों में आवेष्टित हो कर) रही। इसके अपनाने का कारण संभवतः युगीन परिवर्तित मान्यताएं ही थी।

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही जन-जीवन में एक महान क्रान्ति आई। पूर्व की समस्त धारणाएं अपने स्वरूप का अमूल परिवर्तन कर बैठीं फलतः प्रेमचन्द युग ने अपनी अन्तिम साँसें भर कर एक नवीन युग को जन्म दिया, जिसमें राजनैतिक उपन्यासो की बहुलता थी। फिर भी समाजिकता की प्रवृति अनेक नये रूपों में सामने आती है। पर यह प्रवृत्ति पूर्व समस्याओं से हट कर मनोविज्ञान, सेक्स और स्वच्छन्द प्रेम की समस्याओं की ओर उन्मुख दिखाई देती है। यद्यपि यह प्रवृति, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, प्रेम-चन्द युगीन उपन्यासकारों मे भी दिखाई देती है, किन्तु उनमे कल्पना की

था और लेखकों की आदर्शवादी तथा सुधारवादी भावना से सम्बद्ध थ
युग के उपन्यास यथार्थ का आभास मात्र देते हैं, अतः वह पूर्ण विकसि
मिल पाता इस युग का यथार्थ केवल युगीन समस्याओं के बाह्य पक्ष
चित्र है, व्यक्ति से नहीं। प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों में समाजवादी
का आंशिक ही चित्रण हुआ है, इसी प्रकार 'उग्र' के 'दिल्ली का द
ऋषभ चरण जैन के कुछ उपन्यासों में प्रकृतवाद का आंशिक चित्र
अन्यथा इस युग का प्रत्येक उपन्यासकार आलोचनात्मक यथार्थ
विश्वास रखता है।

इस युग के सभी उपन्यासों को यदि एक स्थान पर रख कर र
चना की जाये तो लगता है सभी एक निश्चित धरातल पर आध
धरातल में नायक-नायिका मिलन, बाधा, सामाजिक विषमता
फिर सत्पात्रों की विजय मुख्य है। उपसंहार देने की प्रवृत्ति
उपन्यासों में प्राप्त होती है। हाँ पात्रों के चयन के समय अ
दिखायी देती है; पात्र उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक सम्ब
का चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रणालियों
और उनमें नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया गया है। कि
विकास बहुत कम मिलता है। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध
विकास हुआ है। यदि प्रेमचन्द ने उसे सरल बना कर जन-
में खेलने की आज्ञा दी है तो वृन्दावनलाल वर्मा ने आंचलि
भी पकड़ लेने में हिचक नहीं की है। इस काल की भाषा वृ
उसमें स्वाभाविक मार्दव है जो उसके प्रासाद गुण से सहज

प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल स्वर आदर्शवाद है। वे
वादी रूप चाहते थे और इसीलिए अपने आदर्शवाद को
माध्यम से व्यक्त किया है। सेवासदन में वेश्या वृत्ति
आश्रम की स्थापना करके किया है। वेश्या विवाह का
... सामाजिक विरोध में खड़े होने का साह
... अनमेल विवाह एवं

दृष्टिकोण का परिचय दिया है। जो यथार्थवादी पात्र हैं उन्हें भी आदर्शवादी बनाने की ओर ही प्रेमचन्द का प्रयत्न रहा।

प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों को मनोविज्ञान के धरातल पर पूर्णरूपेण खड़ा नही कर पाये। अपने पात्रों को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करने मे वे असफल रहे हैं। ग्रामीण समाज, शहरी समाज, सामाजिक कुरीतियां, धार्मिक पाखंड, वेश्या-समस्या, अछूत समस्या, राजनैतिक स्वतन्त्रता, मात्र उनके मुख्य विषय कहे जा सकते हैं।

प्रेमचन्द के अतिरिक्त इस युग के उपन्यासकारो मे जयशंकर प्रसाद ('तितली', 'कंकाल', और 'इरावती') उग्र, चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राहुल सांकृत्यायन, चंडी प्रसाद हृदयेश, आदि मुख्य हैं। इनको प्रवृत्ति के अनुसार ही प्रेमचन्द युगीन कहा जा सकता है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में नई प्रवृत्तियाँ नही मिलती। प्रायः प्रेमचन्द युगीन परम्पराएं ही अपने विकसित रूप में सामने आती रही। फिर भी ऐसे उपन्यासों की परम्परा कम नही है जो प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो की प्रवृत्ति से वैभिन्य रखते हैं।

यद्यपि भारतेन्दु कालीन ऐयारी अथवा कल्पना का मनोरंजन वाली प्रवृत्ति प्रेमचन्द युग मे समाप्त हो गई थी और राजनैतिकता की प्रवृत्ति विकसित होती रही थी फिर भी उसका वह रूप दिखाई नही देता जो आगे के उपन्यासों में मिलता है। समाज सुधार की प्रवृत्ति हिन्दी उपन्यासों के आरंभ से रही है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग में इसी की प्रधानता (प्रेम प्रसंगों में आवेष्ठित हो कर) रही। इसके अपनाने का कारण संभवतः युगीन परिवर्तित मान्यताएं ही थी।

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही जन-जीवन में एक महान क्रान्ति आई। पूर्व की समस्त धारणाएं अपने स्वरूप का आमूल परिवर्तन कर बैठी फलतः प्रेमचन्द युग ने अपनी अन्तिम सांसें भर कर एक नवीन युग को जन्म दिया, जिसमें राजनैतिक उपन्यासों की बहुलता थी। फिर भी समाजिकता की प्रवृति अनेक नये रूपों में सामने आती है। पर यह प्रवृत्ति पूर्व समस्याओं से हट कर मनोविज्ञान, सेक्स और स्वच्छन्द प्रेम की समस्याओं की ओर उन्मुख दिखाई देती है। यद्यपि यह प्रवृत्ति, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों मे भी दिखाई देती है, किन्तु उसमें कल्पना की

है, कहीं-कहीं तो मालूम होता है, लेखक उपन्यास न लिखकर भाषण दे रहा है; फिर भी पाठक को उपन्यास में उत्सुकता रहती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' हिन्दी उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग कहा जा सकता है। मध्य वर्गीय अतृप्त भावनाओं का सफल चित्रण इसकी प्रमुख विशेषता है।

नये उपन्यासों में प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी अनेक उपन्यास उल्लेखनीय हैं। स्थूल रूप से देखा जावे तो 'शेखर : एक जीवनी' से नये प्रयोगों का आरम्भ होता है। इस दृष्टि से नये उपन्यासों 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यद्यपि 'मैला आँचल' फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास काफी चर्चित है और शिल्प-विधान की दृष्टि से काफी सीमा तक सफल प्रयोग है, फिर भी इसमे कथानक की एकता सुरक्षित नहीं है। इसमे सुसंगठित कथातत्व का आभाव है और काफी ऊब पैदा करता है। अज्ञेय लिखित 'अपने-अपने अजनबी' वर्णनात्मक शैली मे लिखे गये उन उपन्यासों में हैं, जिनमे जीवन दृष्टि की विशिष्टता और प्रस्तुतीकरण का महत्व है। कथानक के सूत्रों का विकास भावनात्मक आधार पर विकसित हुआ है। इसी परम्परा में अमृता प्रीतम लिखित 'बन्द-दरवाजा' नामक उपन्यास का भी उल्लेख किया जा सकता है। पर जिस समस्या को लेखिका ने उठाया है उसका सम्यक् निदान देने मे उसे सफलता नहीं मिलती। कथा सूत्र मूलतः समस्यात्मक है। कम्मी की माँ और कम्मी के चरित्रों द्वारा लेखिका नारी जीवन के दुखों की गाथा मात्र कह कर रह गयी है।

वर्णनात्मक शैली में लिखे गये उपन्यासो में एक डायरी शैली भी आती है। यद्यपि इस रूप में उपन्यास कम हैं फिर भी इस शैली का समावेश अनेक उपन्यासों में मिलता है। इस शैली पर स्वतंत्र रूप से सबसे सशक्त उपन्यास डा० देवराज कृत 'अजय की डायरी' है। 'यह एक सशक्त प्रेम कथानक के चारों ओर ग्रथित लेखक के जीवन दर्शन को प्रकट करने वाला हिन्दी का पहला अन्तर्राष्ट्रीय उपन्यास है। और 'इस उपन्यास का अन्त पत्रात्मक शैली में होता है। चाहे यद्यपि यत्र तत्र दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक चिन्तन के प्रसग में अबुद्ध पाठकों को बोझिलता भले ही लगे, परन्तु इतना निश्चित है

कि उपन्यास में प्रयुक्त शिल्प को वे बाधित नहीं करते*। राजेन्द्र यादव कृत 'शह और मात' की चर्चा भी इसी परम्परा में की जाती है।

हिन्दी का नया उपन्यास साहित्य अपने ऊपर पड़े अनेक प्रभावों को साथ लेकर आगे बढ़ रहा है और नित्य नये रूपों का परिचय दे रहा है। साथ ही 'उपन्यास का हिन्दी में न केवल विषय विस्तार की दृष्टि से विकास हो रहा है, वरन चित्र रूपों की नवीनता की दृष्टि से भी उसकी उपलब्धियाँ महत्व-पूर्ण है।'‡ कथानक प्रस्तुत करने मे नित्य नवीन शैलियों के प्रयोग हो रहे हैं। साथ ही यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि जो परम्परागत शैलियाँ हैं, वे भी नवीन और परिष्कृत रूप धारण करती जा रही हैं, और जो नयी शैलियाँ हैं, वे विशिष्ट रूपात्मक संभावनाओं के विषय मे संकेत देती हैं।

यह सब होते हुए भी उपन्यास साहित्य में प्रारम्भ से अब तक (परिवर्तनों का भंडार होते हुए भी) एक ही परम्परा का प्रवर्तन रहा है, वह परम्परा अपना वेश-विन्यास भले ही कर आई हो, किन्तु उसके अन्तराल में नवीनता नही दिखती। यही कारण है कि हिन्दी उपन्यास विश्व की अन्य भाषाओं के उपन्यासों के सम्मुख ठहर नही पाते। एक ही साँचे में ढली हुई कल्पना के रंग में रंगी कड़ियों को पढ़ते-पढ़ते प्रबुद्ध पाठक उकता जाता है—मनन के लिए 'वस्तु' न पाकर उसे बचकाना (बालकों के पढ़ने के लिए) और स्त्रैण (स्त्रियों के पढ़ने के लिए) कह कर तिरस्कृत कर देता है। इसीलिए जैसा कि हम प्रारम्भ में कह चुके हैं, आलोचक इनकी समीक्षा नहीं करता; अथवा यों कहिये की समीक्षा करने में हिचकिचाता है। इस दृष्टि से डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास हिन्दी उपन्यासों के लिए, साथ ही समालोचकों की 'हिच-किचाहट' को दूर करने के लिए 'मील के पत्थर' की तरह सिद्ध हुए हैं। आगे की पंक्तियों में हम अब उनके उपन्यासों के साहित्यिक मूल्यांकन की चेष्टा

---

*. हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ४०९

‡. हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ ४१४

करेंगे। इस मूल्यांकन मे केवल, कथानक, कथोपकथन, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, भाषा, शैली एवं विचारों पर दृष्टिपात किया जायेगा।

कथानक तत्व का विश्लेषण

डा० प्रतापनारायण टण्डन के अब तक प्रकाशित समस्त उपन्यासों मे हम केवल मौलिक उपन्यासों को ही लेंगे। अनूदित उपन्यास विषय क्षेत्र से बाहर होने के कारण छोड़ दिये गये हैं। अतः उनके कुल मौलिक उपन्यास पाँच हैं:—

१. रीता की बात,
२ अन्धी दृष्टि,
३. रुपहले पानी की बून्दें,
४. अभिशप्ता, और
५. वासना के अंकुर,

'रीता' आत्मकथात्मक पद्धति में लिखी गयी एक ऐसे युवक (रमेश)—युवती (रीता) की कहानी है जो अनजाने ही एक दूसरे की ओर बढ़े चले जाते हैं—इस तरह कि एक दिन ऐसा आया जब वे अलग होने मे असमर्थ थे; और तब ट्रेजेडी होती है—ऐसी ट्रेजडी जो दोनो के अरमानों को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है, उनके भविष्य के लिए सजोये गये सपनों के महल को ढहा देती है और अन्त मे एक (रीता) अपने को मृत्यु की गोद में सौंप देता है और दूसरा (रमेश) जीवन भर पश्चात्ताप एवं प्रतारणा की दाहक ज्वाला में दग्ध होता रहता है। यह उपन्यास उस विशेष भावुकता से भरे युवक-युवती की परिष्कृत शैली मे लिखी गयी कहानी है, जो युवावस्था का पहला चिन्ह होती है। रमेश (उपन्यास का नायक) की तरह 'प्रत्येक युवक भावुकता के ऐसे आधिक्य की दशा से उस समय पार होता है, जब किसी घटना से उसमे विचार करने की

---

*. दे० अंग्रेजी उपन्यास का विकास और उसकी रचना पद्धति : श्रीनारायण मिश्र, पृष्ठ २३९

उत्पन्न होती है, और तब वह तन्त्र सोचना प्रारम्भ करता है
र लिटन के उपन्यासों 'फॉक लैण्ड' (Falkland) तथा 'ई
bel) के नायकों की तरह, रमेश समस्त घटना घटित हो
साक्षात् करता है। रमेश मध्यम वर्गीय परिवार का एक
यक है जो पड़ोस में कुछ दिनों से आकर रहने वाली सुन्दर
आकर्षण में खिंच जाता है। शनैः शनैः दोनों एक दूसरे को प्रेम
मिलन सुख-लिप्त कर होने लगता है, उसमें गति आती है औ
उपन्यास 'एन्ना केरेनिना' की नायिका एन्ना की तरह रीता एक
पूर्ण आनन्द स्वप्न की कल्पना में रमेश के आगे आत्म-समर्पण
प्रकार जैसे एन्ना ने अपने प्रेमी व्रान्स्की के सम्मुख किया था।
मर्यादाओं तथा नैतिक बन्धनों को तोड़ देते हैं........। और
तरह रीता रमेश को सूचना न देकर अपने को ही
है। एन्ना तो व्रान्स्की को अपने गर्भ की सूचना दे देती है,
चेहरा फक पड़ जाता है, किन्तु रीता अब उसके सामने
दीखती भी तो किसी अज्ञात भय की कल्पना से सहमी
को इसका जिम्मेदार समझते हुए भी, उसको अपनाने की
साहस नहीं कर पाता। किसी प्रकार रीता के माता पि
जाता है और शीघ्र ही उसका विवाह करके दूर भेज
इस विवाह को सह लेते हैं। रीता अपनी सास के, अ
पति के अत्याचारों को अपने किये का फल समझ क
फ्लोबर के उपन्यास 'मदामवा वेरी' की नायिका एन्ना
हरकतों पर खीझ उठती है, और देहाती चुम्बनों प
रीता पर्वत की तरह सब कुछ छाती पर सहती रहती
निकाल दी जाती है, और शारदा जीजी के घर आ

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

१. दे० आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारा
... प्रतापनारायण टण्डन, पृ
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

जाती है। यहीं उसे प्रसव वेदना होती है, रमेश की शादी का समाचार मिलता है और उसके मार्ग से हटने के लिए स्वय को किसी विपत्ति मे डाल कर मृत्यु का ग्रास बन जाती है। एन्ना तो ब्रास्की का प्रेम टूट जाने के कारण आत्महत्या कर लेती है और एन्ना अपने प्रेमियों से निराश होकर विष खा लेती है, किन्तु रीता अपने प्रेम की तस्वीर रमेश की खुशियों के लिए—इसलिए कि कहीं उसका प्रेम रमेश के विवाह के बीच दीवार न बन जाये—वह स्वयं को मृत्यु का ग्रास बना देती है। और रमेश, वह अन्त मे विवाह तो करता है पर एक मुर्दे की तरह, या यो कहिये कि यन्त्र की तरह—पश्चात्ताप की भट्ठी में सुलगते हुए।

इसके विपरीत 'अभिशप्ता' उपन्यास की नायिका 'निशा' रीता की तरह सुन्दर नहीं है और न ही किसी पुरुष के प्यार में मर रही है। अपितु उसका सबसे बड़ा अभिशाप उसकी कुरूपता है। इस उपन्यास मे कुरूपता को नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बताया गया है। निशा सुन्दरी नहीं है, इसी-लिए सर्व गुण सम्पन्ना होते हुए भी उसका विवाह नहीं हो पाता और विवाह की 'साध' उसके मन में ही रह जाती है। उसे किसी पुरुष ने धोखा नहीं दिया, फिर भी उसे पुरुष जाति से घृणा है। वस्तुतः निशा ऐसी विद्रोहिणी नारी है जो अपने विद्रोहात्मक विचारों की उत्तेजना में स्वयं तो जलती रहती है, पर उसके प्रदर्शन का साहस कर नहीं पाती। नारी की स्वाभाविक दुर्बलता—समर्पण की साध उसे भी है। इसीलिए यह जानते हुए भी कि अखिल उसकी दीदी से प्रेम करता है, प्रेम भरी चितवन से देखती है। उसके प्रति उसके हृदय में प्रेम है; समर्पण केवल इसलिए नहीं करती क्योंकि वह लम्पट है, धूर्त है, झूठा है।

रीता की तरह निशा भी बीमार पड़ती है, पर इस तरह कि उसकी बीमारी कभी खत्म न होने वाली है। उसे केन्सर की बीमारी हो जाती है। रीता को अपने माता-पिता, भाई-बन्धु किसी की सहायता या सहानुभूति प्राप्त नही थी, किन्तु निशा के डेडी, मम्मी और भय्या विजय तो उसके लिए जान तक देने को तैयार हैं। उसे अस्पताल मे भरती करा दिया जाता है, आपरेशन होता है, पर रोग असाध्य होकर फैलता जाता है और डाक्टर उसकी मृत्यु को अवश्यम्भावी बता कर तिथि तक निश्चित कर देता है। भारत भर के प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखाया जाता है—उनकी नीम-हकीमी रायें ली जाती हैं और एक दिन—मरने की निश्चित की गई डाक्टरों की तिथि से एक दिन पूर्व वह अपने

समस्त जीवन का—प्यासे जीवन का अवलोकन करती है; और अपनी मृत्यु का बड़ा ही मार्मिक वर्णन करती है। सम्पूर्ण उपन्यास में सर्वत्र मृत्यु सा सन्नाटा छाया हुआ है, जो मरीजा निशा के इर्द-गिर्द घूम रहा है—पाठकों को अपने सन्नाटे से साधारणीकृत करते हुए।

कुछ इसी मृत्यु के सन्नाटे के बीच का उपन्यास है 'रुपहले पानी की बूंदें'। स्मॉलेट के उपन्यास 'हम्फी क्लिंकर' में जिस प्रकार कथा भाग बहुत न्यून है,* केवल विचारों को गुम्फित किया गया है, उसी प्रकार 'रुपहले पानी की बूंदें' उपन्यास मे भी कथा-भाग बहुत कम है। यह उपन्यास अपने ढंग का अकेला उपन्यास है। जीवन के विविध पक्षों का चित्रण तो अनेक उपन्यासकारों ने किया है और कुशलतापूर्वक किया है, किन्तु मृत्यु जैसे नीरस विषय पर सफल लेखनी डा० प्रतापनारायण टण्डन ने ही इस उपन्यास को लिख कर चलायी है। इसके केन्द्र में अचला की कथा है, उस विवाहिता नारी अचला की जो मातृत्व की मधुर पुलक के साथ हिलोरें लेती हुई अस्पताल जाती है और शिशु कन्या को जन्म देती है—मृत शिशु कन्या को, जिसे वह उठा कर सीने से चिपका नही सकती, दुलार नहीं कर सकती। उसने इतनी वेदना, इतनी प्रसव पीड़ा सही, केवल इसीलिए ? कि शिशु को ले जा कर मट्टी में दबा दिया जाये ? फिर भी अपने हृदय की ममता और वात्सल्य को रोक कर, अपने पति के आते उसकी कुशल क्षेम ही पूछते हुए कहती है—"तुमने कल से कुछ खाया है या नहीं ?"—अचला ने धीमी आवाज में पूछा, "भूखे मालूम हो रहे हो कमजोर।"† पूरे उपन्यास में एक अद्भुत प्रकार की निर्मल शान्ति का वातावरण है जो मृत्यु के साये में पलने वाले मानव की जीवन के प्रति अटूट आस्था के जीवन्त संकेत देता है। लेखक इस उपन्यास में वर्तमान सामाजिक वातावरण, हिपोक्रेसी और परिवर्तित मान्यताओं का अच्छा चित्रण करता है। इसमें रिक्शा चालक की कथा है, भिखारियों की कथा है, आज की फैशनेबिल युवती की कथा है, अस्पताल के हृदयहीन डाक्टरों, नर्सों तथा विशृंखलित वातावरण की कथा है, छोटे-छोटे दूकानदारों की मानवीय लूट की कथा है,

---

*. दे० अंग्रेजी उपन्यास : श्री श्रीनारायण मिश्र, पृष्ठ १६५

†. दे० रुपहले पानी की बूंदें : डाक्टर प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४८

फिल्म-निर्माताओं की पोलों की कथा है, और सबके केन्द्र में, सबको शासित करती हुई अचला और उसके पति प्रकाश की कथा है। यहाँ प्रकाश, मात्र तटस्थ दर्शक है, जो अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है। हेनरी फील्डिंग के उपन्यास 'जोजेफ एण्ड्रूज' (Joseph Andrews) की तरह इस उपन्यास में भी सभी घटनायें अलग-अलग हैं और पात्र साधारण जीवन से लिये गये हैं। 'जोजेफ एण्ड्रूज' और 'रुपहले पानी की बून्दें' में एक अन्तर है कि 'हेनरी फील्डिंग' ने अपने उपन्यास की कथावस्तु के संगठन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है,"……और उपन्यास का अन्त अकस्मात् सुखद बातें एकत्र करके किसी तरह कर दिया है,* किन्तु 'रुपहले पानी की बून्दें' में लेखक ने घटनाओं में संगठन का परित्याग नहीं किया है, सबमें एक शृंखला है, जो अचला और प्रकाश की कथा के साथ सुदृढ़ता से जुड़ी हुई है। लेखक ने अन्त में सभी का संकेत कर अपने विषय की पुष्टि की है।

वस्तुतः 'रुपहले पानी की बून्दें' उपन्यास में कथानक बहुत कम है, मौत के अप्रत्याशित रूप और उनकी जीवन पर प्रतिक्रिया पर विचार करना ही लेखक का उद्देश्य था। मृत्यु की भयानक छाया में पलते हुए जीवन के कोमल क्षणों की सूक्ष्म अनुभूतियाँ, जीवन के आखिरी छोर और मृत्यु की सीमा रेखा के निर्धारण, फिर वर्तमान के प्रति आस्था रखने को ही जीवन कहना और सिद्ध करना लेखक का लक्ष्य है। इस उपन्यास में विचारों को, मस्तिष्क को महत्व दिया गया है और लेखक का चिन्तक रूप सामने आता है।

सामान्यतः जिस उपन्यास का कथानक जितना सुगठित और ठोस होता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण बन जाता है। 'परन्तु इसके सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अनिवार्य रूप से यह आवश्यक नहीं है कि यदि किसी उपन्यास का कथानक ठोस हो तो वह उपन्यास निश्चय ही श्रेष्ठ और सफल होगा और यदि किसी उपन्यास का कथानक ठोस नहीं है, तो वह अश्रेष्ठ और असफल, वास्तव में किसी उपन्यास की सफलता उसके रचयिता की क्षमता और प्रतिभा पर ही निर्भर करती है। यदि उसमें योग्यता है तो

*. दे० अंग्रेजी उपन्यास का विकास : श्री श्रीनारायण मिश्र, पृष्ठ ११३

के आकर्षण में बन्ध जाता है। पहल प्रतिमा की ओर से होती है और एक दिन दोनों एक दूसरे को एक दूसरे के हाथों में छोड़ देते हैं। वासना का नृत्य होता है, प्रतिमा स्वीकृति दे देती है—किन्तु वासना के सीमा लांघने से पूर्व ही माँ के जगने से प्रतिमा सचेत हो जाती है और एक 'पाप' होने से बच जाता है। प्रतिमा माँ-बाप से उसकी शादी रमेसुर से करने को कहती है, बाबू बिगड़ते हैं, उस समय बात सध जाती है, पर इसी का अंकुर एक दिन रमेसुर को नौकरी से अलग कर देता है, वह गली-गली की ठोकरें खाता फिरता है, कई वर्ष बाद मुल्लू के घर आता है, उसके कोई सन्तान नहीं है अतः लड़के की तरह पल कर गगा से ब्याह कर लेता है।

दिल्ली की मिल में भी रमेसुर बुरी सोहबत से नहीं बच सका। किसुन और सुमिरन की सोहबत उसे देसी ठर्रे और सस्ते चकलों की राह दिखा देती है, और एक दिन इसी सोहबत से उसके सारे शरीर में चकत्ते— गर्मी की बीमारी उभर आती है। डा० जवाब दे देते हैं। वह घर आता है। इसी बीच गगा के एक बालक पट्टू जन्म ले चुका होता है। गगा सब सब कुछ भूल कर उसकी सेवा करती है। उसकी लगन से वह अच्छा होने लगता है। पर वासना उसका पीछा नहीं छोड़ती। इसी छूत की बीमारी में वह गगा से सभोग भी करता है और अपनी बीमारी गगा को देकर अच्छा हो जाता है। गगा को बीमार देख कर उसका मन विरक्त हो जाता है, उससे बिना मिले ही (यद्यपि मन ही मन उसको ज्ञात है कि उसी ने उसे मृत्यु की देहरी से खींच कर जीवन दान दिया) दिल्ली चला जाता है। कुछ तो बीमारी के कारण, कुछ सबकी उपेक्षा के कारण—इलाज न होने से उसका सारा शरीर सड़ जाता है और पति की बीमारी अपने ऊपर लिये हुए गगा एक दिन मर जाती है। रमेसुर सुनता है, आंखों से आंसू निकल आते हैं, सारे विचार एक घटनाक्रम मस्तिष्क में कौंधते हैं, और वह आदर्श जीवन बिताने का संकल्प कर लेता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के अब तक के उपन्यासों में पांचवा उपन्यास 'अन्धी दृष्टि' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें बाल स्वभाव और मनोविज्ञान का विश्लेषण किया है। बच्ची शिशु कन्या रीति—रीति जन्म से ही अंधी है—के जन्म से लेकर किशोर होने तक की अवस्था का, बड़ा बाल सुलभ चित्र दिया गया है। बाल बच्चे खेलते हैं, रूठते हैं, प्रकृति का सहजो उल्लास भर

सिसकते हुए स्वरों में भर कर कहते हैं, किन्तु अंधी रीति........। उसको भगवान ने आँखें ही नहीं दी हैं, वह भगवान के सामने अपने छोटे-छोटे हाथों को फैला कर—दादी के कहने से—आर्त स्वर में पुकारती है, भगवान मुझे आँखें दो........आँखें दो।

रीति प्रत्येक कार्य में उत्साह दिखाना चाहती है दिखाती है,, पर आँखें न होने से उसका यह उत्साह दलित हो जाता है। उसे घर भर में केवल पापा की सहानुभूति और ममता प्राप्त होती है, और सब बच्चे उसे चिढ़ाते हैं, व्यंग की हँसी हँसते हैं और उसके अन्धत्व का परिहास करते हैं। मम्मी भी उससे ऊबती गयी है। रीति को बात-बात पर मरी, कलमुँही, अंधी आदि शब्दों का प्रयोग करके डाँट-फटकारती है। रीति को और शब्द इतने नहीं खटकते जितना 'अंधी' शब्द खटकता है। इसे दूर करने में वह असमर्थ है।

पापा उनकी आँखों को ठीक कराने के लिए क्या नहीं करते, कई स्थानों पर जा कर अच्छे से अच्छे डाक्टर को दिखाया जाता है, सात-सात ऑपरेशन होते हैं, किन्तु 'विधि का लेख' नहीं मिटता। वस्तुतः 'अन्धी दृष्टि' उपन्यास में 'रीति की विवशता, आकुलता, और दमित उत्साह की एक विद्रोहात्मक कथा है। रीति अपने सम्पूर्ण हृदय से पुकारना चाहती है—सहानुभूति के लिए, प्यार के लिए, सन्तोष के लिए, मगर नहीं पुकारती। कोई फल न होगा........। उसकी आँखों से आँसू छलछला आते हैं। उसकी फीकी आँखें धुंधले आँसुओं से भर कर और भी धुंधली हो जाती हैं। वह रोती नहीं, चीखती नहीं, सिर्फ गहरी सिसकियाँ लेती है। मगर उसकी पीड़ा कौन समझ सकता है।

अस्पताल में प्राप्त क्रूर यन्त्रणाओं के स्मृति चित्र रीति को कचोटते हैं—उसकी दोनों आँखों को जैसे मिर्च भर कर सी दिया गया है। वह असहाय पीड़ा से भरकर छटपटा-छटपटा कर रह जाती है। रोती है, कलपती है, चिल्लाती है........* रीति से यदि कोई बोलता है, बातचीत करता है, तो इसलिए नहीं कि उसको आनन्द आ रहा है, अथवा.......केवल दया-भाव से। रीति की बा

---

*. अन्धी दृष्टि: कवर-प्रक्षेप

बुद्धि इस अन्तर को पहचानती है, वह अनुभव करती है, उसके बोलने में वह स्वाभाविकता नहीं है जो अन्य बालकों के साथ के संसर्ग में होती है। रीति को सारा संसार एक अट्टहास मालूम पड़ता है। रीति अपने हृदय की सम्पूर्णता में मौन पुकार लगाती है—"ओ शून्य तुम क्या हो, और क्या रहस्य है तुम्हारा ?" मगर उसे लगता है कि उसका मौन स्वर भी स्वयं उसकी तरह शून्य के रहस्य में भटक कर रह जाता है।" •

डा० प्रतापनारायण टण्डन के समस्त उपन्यासों में निर्मल मौत का सा सन्नाटा है। उनके क्रियाशील पात्र हमारी आँखों के सामने नाचते दिखायी देते हैं, उनमें लेखक स्वयं नहीं होता, फिर भी उसकी आवाज सुनायी देती है। प्रत्येक उपन्यास के अन्तर में लेखक की आवाज बोल रही है। हैनरी फील्डिंग ने एक स्थान पर कहा है कि कोई भी लेखक किसी के कष्ट का सजीव चित्रण तब तक नहीं कर सकता, जबतक लेखक उस मुसीबत को स्वयं न भुगते। अपने बारे में वह एक स्थान पर लिखता है—''मैं अपने पाठकों को कभी, दिल खोल कर हँसा नहीं सकता,........, वस्तुतः यही कथन डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के लिए कहा जा सकता है। उनके सभी उपन्यास विषय-वस्तु की दृष्टि से अलग-अलग होते हुए भी उनमें सर्वत्र एक सन्नाटा है—मरघट की सी शान्ति है, उनको पढ़कर खिलखिला कर हँसना तो दूर कहीं हल्की सी मुस्कुराहट भी नहीं आती। कहीं-कहीं जीवन के उत्साह का चित्रण किया गया है, किन्तु वह भी कथानक के स्थायी वातावरण के साथ इस तरह घुलमिल गया है कि उसमें भी शून्यात्मक रहस्य—अथवा सन्नाटे का आभास होता है। किन्तु इतना होते हुए भी उपन्यासकार पाठकों की सहानुभूति नहीं खोता है। पाठक उस ऊब को अपने में साधरणीकृत करते जाते हैं। सरल स्वभाव के पाठकों को इस उपन्यासकार से अवश्य ही सहानुभूति होती होगी जो [illegible] पात्रों के सुख-दुख से इतना [illegible] के [illegible] यही दिखायी देता है, [illegible] स्कॉट के उप- [illegible] में एक डाक्टर

आत्मीयता पाते हैं। वस्तुतः मिस ऑस्टेन के उपन्यासों की तरह डा. प्रताप-नारायण टण्डन के उपन्यास उन पाठकों को पसन्द नहीं आते जो कथानको में आँधी तूफान सी हलचल चाहते हैं। अथवा ऐसी तीव्र भावनाएँ अनुभूत करना चाहते हैं जिन्हें अपने जीवन में नहीं भोग पाते।" उपन्यासों में अनोखा और अद्भुतपन खोजने वाले, काल्पनिक प्रेम गाथाओं की सतलड़ियों के रंगीन चित्र पर मोहित होने वाले पाठकों को डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में—जो साधारण जीवन की सुन्दरता का वर्णन करते हैं—कोई रुचि नहीं मिलेगी।

लेखक के उपन्यास 'वासना के अंकुर' को छोड़कर सभी कथानक के गुणों के अपवाद नहीं है। 'वासना के अंकुर' भी से परिस्थिति की रचना होने के कारण उसके अपवादों का निराकरण किया जा सकता है। इसको आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। राधेमन ठेकेदार द्वारा मन्त्री जी की अभ्यर्थना के पीछे निहित स्वार्थ और सुमिरन के अनुभव, मोहल्ले के लोगों का आपस में लड़ना और गंगा को प्राप्त तीन पत्र, ये कथानक से सम्बद्ध नहीं लगते। फिर भी इनमें सामंजस्य खोजा जा सकता है। वस्तुतः ये चित्र रमेसुर तथा गंगा के जीवन को प्राप्त वातावरण का निदर्शन कराने को प्रस्तुत किये गये लगते हैं। उससे नायक-नायिका के चरित्र विकास को समझने में काफी सहायता मिलती है। मोहल्ले के इतने गन्दे वातावरण में रह कर भी यदि गंगा अपने सास-ससुर के सामने मुँह नहीं खोलती तो यह उसका सामान्य व्यवहार नहीं है, अपितु उसके असाधारण व्यक्तित्व का द्योतक है। सुमिरन के अनुभवों जैसे अनेक अनुभवों के बीच यदि रमेसुर कोठे पर चला जाता है, तो कोई गर्हित पाप नहीं करता, अपितु यह तो वातावरण से उत्पन्न मानसिक दुर्बलता मात्र है, जो साधारणतया ऐसे अवसरों पर उत्पन्न हो ही जाती है। इस उपन्यास में गंगा का कथानक सबसे अधिक मंजा हुआ और पुष्ट है। हेनरी फील्डिंग के उपन्यास 'जोजेफ एण्ड्रूज' (Joseph Andrews) में जोजेफ एण्ड्रूज को उसकी मालकिन उसी प्रकार प्रलोभन देती तथा प्रणय निवेदित करती है जैसे 'वासना के अंकुर' में रमेसुर को उसके मालिक की युवती पुत्री 'प्रतिमा'। जोजेफ की तरह रमेसुर भी उन प्रलोभनों का प्रतिकार करता है, फिर भी इसी के बीज रूप से वह घर से निकाल दिया जाता है। जोजेफ एण्ड्रूज तो घूमता-घामता अपने मकान पर पहुँच जाता है जो देहात में बना है। किन्तु रमेसुर को जीवन

संघर्ष और देखता थे अतः मुल्लू के यहाँ चला जाता है और नये सिरे से नवीन संघर्षों में जूझता है।

अब हम डा प्रतापनारायण टण्डन के इन उपन्यासों के कथानक को, उसके लिए निर्धारित आवश्यक गुणों की तुला पर तोलने का प्रयास करेंगे।

पारस्परिक सम्बद्धता और निर्माण कौशल—कथानक का सर्वप्रथम आवश्यक गुण उसकी पारस्परिक सम्बद्धता है। * बहुधा यह कहा जाता है कि कथानक विविध घटनाओं के या कार्य कलापों के संचयन या सङ्कलन मात्र को कहते है। † किन्तु कथानक की पूर्णता उस कथाकृति में उपस्थित किये गए रूप पर होती है, जिसके निर्माण के लिए उसका सुगठित होना जरूरी है। ‡ यदि किसी उपन्यास के कथानक में सम्बद्धता नहीं होती तो उसकी प्रभावात्मकता और उसकी सफलता की संभावनाएं भी कम हो जाती हैं। लेकिन आधुनिक युग मे उपन्यास शिल्प के जो अन्य रूपो का विकास हुआ है, उसे देखते हुए ऐसे उदाहरण भी मिल जाते हैं जिनमे कथा शृंखला की सम्बद्धता का निर्वाह अनिवार्य रूप से नही मिलता। शिल्प विधान उनमे इतना प्रमुख है कि अन्य तत्व अप्रधान रह जाते हैं। फिर भी प्रभावात्मक दृष्टि से वे उपन्यास अन्यतम होते हैं। कथानक की असम्बद्धता का एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वे उपन्यासकार मानते हैं कि सारा मानव जीवन ही एक अनिश्चित और अनियोजित गति से प्रवाहमान है, अतः वे स्वयं किसी को योजनाबद्ध अथवा शृंखलबद्ध न करके उसे स्वाभाविक रूप से अपनी ही गति के अनुसार विकसित होने देते है और स्वतन्त्र रूप से उसके भावी स्वरूप का निर्माण का आधार तैयार करते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शृखला विहीन कथा भी उपन्यास की शिल्परूपी सशक्तता के कारण प्रभावपूर्ण प्रतीत होने लगती है, 'रुपहले पानी की बून्दें' (डा. प्रताप नारायण टण्डन) इसी प्रकार का उपन्यास है। इसमें अलग-अलग घटनाओ का

---

*. हिन्दी उपन्यास कला, पृष्ठ १४०
†. साहित्य का साथी: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ९०
‡. हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास, पृष्ठ ६८

शिल्प कला से कुशलता पूर्वक जोड़ा गया है, इस प्रकार कि उनको अलग नहीं किया जा सकता। राजकपूर की फिल्म 'जागते रहो' की तरह 'रुपहले पानी की बून्दें' भी प्रकाश द्वारा देखी गयी—अनुभव की गयी घटनाओं का ब्योरा मात्र है—जिसे वह तटस्थ दृष्टा की तरह अपने विचारों और संस्कारों के अनुसार वर्णन कर देता है। घटनायें सब अलग हैं किन्तु अचला-प्रकाश की पत्नी-की कथा ने अस्पताल के वातावरण में उन्हें एक कर दिया है। रह-रह कर प्रकाश के मस्तिष्क में चल-चित्र की तरह कौंधने वाली ये घटनायें दूर की कौड़ी लाना सिद्ध नहीं होतीं, उनके पीछे एक पृष्ठभूमि है जो सबको एक तारतम्य में पिरोये हुए हैं। उपन्यासकार रिचर्डसन के उपन्यास 'पामेला' की तरह यह उपन्यास उन पत्रों का संघटन नहीं है जो रिचर्डसन द्वारा जनता को पत्र लिखना सिखाने के लिए लिखे गये थे। 'रुपहले पानी की बून्दें' उपन्यास के कथानक में जीवन का जीवन्त मूल्य बोल रहा है जो उसे सशक्त बनाये हुए है।

'रीता' और 'अभिशप्ता' उपन्यास विगत की स्मृति को याद करते हुए चित्रित किये गये हैं। 'रीता' में रमेश अपने अतीत के प्रेम की याद और उसके दुष्परिणाम को चलचित्र की तरह देख रहा है और 'अभिशप्ता' में निशा अपने भूतकाल को देख रही है उसी प्रकार जैसे चलचित्र में मध्यावकाश होने पर दर्शक पुनः अपनी स्थिति में आ जाता है—सामने के दृश्यों से साधारणीकरण भूलकर वर्तमान दशा में आ जाता है, इसी प्रकार इन दोनों उपन्यासों में नायक और नायिका प्रायः प्रत्येक परिच्छेद के बाद अपनी वर्तमान स्थिति की ओर भी सचेत होता जाता है—जैसे सपना चलते-चलते टूट जाये और सोया व्यक्ति चारों ओर फैले अन्धकार को देखकर फिर आँखें बन्द कर ले और सपना पुनः चलने लगे......। इसपर भी कथानक में शृंखला मिलती है, घटनायें परस्पर सम्बद्ध हैं।

'अन्धी दृष्टि' उपन्यास वर्णनात्मक है और एक ही कथा—शिशु-रीति—को लेकर चला है, अतः मनोविज्ञान के धरातल पर चित्रित अन्धी बच्ची की बाल चेष्टाएँ परस्पर सम्बद्ध हैं; उसी तरह जैसे स्फुट कविताओं में वर्णित कथा। इस उपन्यास में प्रबन्ध काव्य सा प्रवाह न होकर 'सूर सागर' या 'गीतावली' में वर्णित शैली सा कथानक है, जो प्रत्येक पद में पूर्ण है, यदि कोई वर्णन हटा दिया जाये तो कोई अभाव नहीं खटकता। इतना होने पर भी कोई वर्णन

हटाया नहीं जा सकता, प्रत्येक वर्णन बालक की आगामी मनस्थिति का पूरक है और पूर्वा पर एक दृष्टि है।

'वासना के अंकुर' का कथानक अपने निर्माण कौशल में और भी अद्भुतता लिए हुए है। डा. प्रतापनारायण टण्डन का प्रत्येक उपन्यास निर्माण कौशल की दृष्टि से निराला है। 'अन्धी दृष्टि' में यदि कार्य व्यापार का सीधा सादा वर्णन है तो अन्य उपन्यासों के कथानकों में कलात्मकता का समावेश है। 'वासना के अंकुर' का कथानक उसकी सम्बद्धता और निर्माण कौशल अपने ढंग का है। इसमें कुछ कथा गंगा (नायिका) अपने अतीत का चिन्तन करते हुए कहती है। कुछ कथा रमेपुर (नायक) अपने अतीत की याद करते हुए कहता है, कुछ कथा वर्णनात्मक है, कुछ दोनों के पारस्परिक सहयोग से गतिशील होती है और फिर अन्त में रमेपुर पुनः अपने जीवन पर विहगम दृष्टि डालता है। कथानक सम्बद्ध है, किन्तु उपन्यास का शिल्प-विधान ऐसा है कि वह असम्बद्ध ज्ञात होता है। उपन्यास एक पात्र के मुह से पूरा होकर पुनः दूसरे पात्र के द्वारा नये ढंग से दोहराया जाता है—इस तरह कि सबमें नवीनता ही दिखायी देती है—'अज्ञेय' के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की तरह, जिसमें रेखा एक ही घटना को अपने ढंग सोचती है, चन्द्र अपने ढंग से सोचता है और भुवन अपने ढंग से, फिर भी सम्पूर्ण उपन्यास अपने में सम्बद्ध है।

(२) मौलिकता—उपन्यासकार के कथानक में मौलिकता तभी आ सकती है जब उसे जीवन का यथार्थ रूप में पूर्ण अनुभव हो। क्योंकि मौलिकता का गुण उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचायक होता है। विषय वस्तु की दृष्टि से यदि संसार के प्रमुख उपन्यासों का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण करें तो संभवतः कुछ भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उन सभी को रखा जा सकता है, किन्तु एक समर्थ उपन्यासकार विषयगत नवीनता पर बल न देते हुए भी अपने उपन्यास में मौलिकता का गुण ला सकता है। उसकी दृष्टि-सूक्ष्मता का परिचय प्रायः इस बात से लग जाता है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रीय पक्षों से कितनी गहनता के साथ परिचित है और उसकी मूलभूत समस्याओं तथा उनसे सम्बन्धित तथ्यों का इसने किस सीमा तक साक्षात्कार किया है। वस्तुतः अनुभूत्यात्मक मौलिकता ही उपन्यास की सबसे बड़ी मौलिकता है। और उसका निर्माण उपन्यासकार की अपनी प्रतिभा से होता है।

डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में मौलिकता एक खास
मौलिकता की दृष्टि से यदि उनके कथानकों की विवेचना की जाये
गत नवीनता और अनुभूत्यात्मक सूक्ष्मता दोनों ही गुण सहज प्राप्त
है। मृत्यु के प्रत्याशित और अप्रत्याशित रूपों की सहज अनुभूति
यथार्थ के धरातल पर चित्रण विषय की मौलिकता निर्विवाद सिद्ध
है। मृत्यु की भयानक विभीषिकाओं से संघर्ष करते हुए भी 'इपहले
बूंद' में अचला, 'अभिशप्ता' में निशा, 'अन्धी दृष्टि' में रीति, 'रीत
और 'वासना के अंकुर' में गंगा तथा रमेसुर सभी जीवन के प्रति
हुए हैं। प्रेम की दृढ़ता से ही कुछ पात्र मृत्यु पर विजयी होते हैं
की साध पर—अपने प्रियतम को सुखी रखने की इच्छा से मृत्यु
हैं। लेकिन उनकी इस मृत्यु के पीछे भी प्रेम छिपा हुआ है। इ
के उपन्यास 'निर्वासित' के पात्र धीराज में भी 'जीवन वृत्ति' औ
के इस रूप का सुन्दर परिचय मिलता है। उसकी आशा में
जीने में भी मरने की छाया है। वह स्वयं कहता है, 'प्रेम के
भीतर जितनी अधिक प्रबल होती जाती है, मृत्यु की छाया भी
घनी और अंधेरी होती जाती है।" * डा. प्रतापनारायण टण
के पात्र भी जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे हैं; किन्तु ए
इलाचन्द जोशी के उपन्यास निर्वासित का पात्र धीराज प्रेम
मृत्यु के दर्शन करता है, वहाँ डा. प्रतापनारायण टण्डन के
युक्त पात्र मृत्यु में भी प्रेम का दर्शन कर रहे हैं और इसी
भीत नहीं हैं—उनका विश्वास है कि मरने के बाद भी शा
वस्तुतः सृष्टि और विनाश प्रकृति की अनिवार्य आवश्यकत
ने प्रेम (रचनात्मक शक्ति) और मरण (विनाशात्मक
सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। ‡

---

*. निर्वासित : इलाचन्द जोशी पृष्ठ ८५

†. अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन

[illegible] का अध्ययन : डा

'रीता' उपन्यास विषय वस्तु की दृष्टि से चाहे नवीन न हो, किन्तु अनुभूति, शिल्प विधान और उसकी मूलभूत समस्याओं पर सूक्ष्म अनुसंधित्सु की दृष्टि से यह उपन्यास युवावस्था के आवेगों का सहज सफल चित्रण है। इसमें अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है और जीवन को पास से देखने की चेष्टा की गयी है।

'अंधी दृष्टि' उपन्यास तो (जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं) अपने ढग का अकेला उपन्यास है। 'इस उपन्यास ने हिन्दी साहित्य मे एक नवीन विधा को जन्म दिया है' यदि यह कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। इसे उपन्यास न कहकर बाल स्वभाव का स्वाभाविक विकासात्मक अध्ययन कहा जाए तो असंगत न होगा। केवल एक छोटी शिशुकन्या को उपन्यास की नायिका बना कर उसके केन्द्र से कथानक मे रोचक गतिशीलता उत्पन्न करना साधारण काम नहीं है। इसमें छोटे-छोटे अनुच्छेदों में बालक के चित्र खींचे गये हैं, ऐसे चित्र जो अपने में पूरे हैं।

सूरदास को बाल स्वभाव के चित्रण मे बेजोड़ कहा जाता है। वे बाल मनोविज्ञान के पंडित थे, उन्होने कृष्ण की लीलाओ के माध्यम से बालकों की क्रीड़ाओं का, उनकी चपलताओं का रोचक चित्रण अपने अमर ग्रंथ सूरसागर में किया है। सूर की वाणी का संस्पर्श पाकर कृष्ण लीला की मन्दाकिनी कल-कल निनाद के साथ बहती जाती है। इस तरह कि पाठक उसमें भाव विभोर हो जाता है। उसे आश्चर्य होता है, कि अन्धे कवि ने बाल चेष्टाओ का इतना स्वाभाविक वर्णन कैसे कर दिया—यह तो अपने घर के बच्चे का जीता जागता रूप है—ऐसा रूप जिसमें वह स्वयं किलक रहा है।

सूर से प्रेरणा लेकर ही अनेक कवियों ने इस ओर अपनी गति को उन्मुख किया, तुलसी आये, केशव आये, रत्नाकर आये, पर सभी गौना सा गये, उनके कदम बहक गये। उन्होने जो कुछ कहा सूर की जूठन मालूम हुई। सूर अपने फन के अकेले 'सूर' रह गये।

डा० प्रतापनारायण टण्डन का 'अन्धी दृष्टि' उपन्यास लज्जा से अवनत साहित्य कारों के लिए गर्व से सीना तानने का कार्य है। सूर ने बाल्य लिखा; वे अन्धे होकर भी बहरे नहीं थे, सूक्ष्मदर्शी थे, बालस्क वातावरण के प्रति सजग थे अतः बाह्य जगत में दिन-प्रतिदिन होने वाल सुगम चेष्टाओं को, बच्चों की मोहक चितवन को, बाह्य चक्षुओं से न देखते हुए भी अन्तरानुभूति

'वासना के अंकुर' में भी पदे-पदे मौलिकता के दर्शन होते हैं। चौधराइन और महात्मा जी का किस्सा प्रत्येक ढोंगी साधु महात्मा का किस्सा है, जिन्हें हम प्रायः सदा सुनते ही रहते हैं, किन्तु लेखक के प्रस्तुतीकरण का ढंग ऐसा है कि नवीन कहानी सा दिखायी देता है। रमेमुर की कहानी साधारण जीवन से ली गयी होती हुई भी अनुभूतियों की तरलता के कारण मौलिक है।

३- घटनात्मक सत्यता तथा रोचकता— उपन्यास का लेखक जो कथानक प्रस्तुत करता है, वह प्रायः कल्पना की सहायता से ही निर्मित होता है। चाहे सत्य घटना पर ही आधारित क्यों न हो, कल्पना का योग अनिवार्य है। किन्तु उपन्यास की सत्यता इसी में है कि चाहे वह सत्य घटना पर आधारित न हो, फिर भी यथार्थता की संभावनाओं को प्रस्तुत करे। यदि वह विश्वसनीय रूप से इस प्रकार उपस्थित कर सकता हो तो उसकी सफलता असन्दिग्ध है। * वस्तुतः उपन्यास को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कल्पना की सहायता लेनी ही पड़ती है, अतः वह काल्पनिकता भी वास्तविकता की छाया और संभावनाओं का प्रतिरूप बनाती और उभारती जान पड़ती है। † दूसरे शब्दों में, कल्पना-सृष्टि के पीछे उपन्यासकार का यही उद्देश्य रहता है कि वह पाठक के सामने कैसे संभाव्य सत्य को अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करे और यथार्थ जीवन के ऐसे स्वरूप को चित्रित कर सके, जिसमें उसे उस जीवन के रूप की झाँकी दिखाई दे, जो यथार्थ रूप में समाज में विद्यमान है। वस्तुतः कथानक को रोचक बनाने के लिए उपन्यास में सत्यता का ताना-बाना आवश्यक है और उसके साथ ही सत्य घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने का अधिकार भी उपन्यासकार को है।

नई पीढ़ी के उपन्यासकार डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों ने सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक, दोनों ही तरह के कथानकों को सत्यता के मार्ग पर आगे बढ़ाया है। 'रीता' की कथा पढ़ते समय लगता है, यह अपने घर की कथा हो—हम पर गुजरी व्यथा हो। और 'अभिशप्ता' की निशा हमारे सामने कैंसर से जूझती युवती जो अस्पताल में पड़ी अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिन रही है, का साफ चित्र आँखों के सामने ला देती है। इसमें हम घर बैठे

* दे. हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४२

† वही, पृष्ठ १४२

से उन्होंने प्रश्रय देना और अपनी कल्पनाके सतरंगी धागे में उन्हें पिरो दिया। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने दोनों आँखों से सारे संसार को देखते हुए पद में अन्धे बालक की चेष्टाओं, बाल सुलभ उत्सुकताओं, उत्साह पूर्व हो पर दमित भावोद्वेग आदि का ऐसा स्वाभाविक वर्णन किया, मानो वे स्वयं भुक्त भोगी हैं। उनके उपन्यास की पात्रा 'रीति' पाठकों के हृदय से इस प्रकार साधारणीकरण कर लेती है, कि पाठक पढ़ते समय यही देखता है कि उसने अन्धा बालक इस प्रकार कार्य कर रहा है—चेष्टाएं कर रहा है; अथवा उस प्रकार की परिस्थितियों में यदि कोई अन्धा शिशु पड़ जाता तो उसकी भी यही चेष्टाएं होतीं ! सूर का पाठक तो उन परिस्थितियों में से गुजरने के कारण उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है और डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'अंधी दृष्टि' का पाठक इन परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव न करने पर भी उनके तद्रूप अपने को समझने लगता है। उसे सहज ही रीति से सहानुभूति हो जाती है। उसे कल्पना की थिरकन मालूम नहीं पड़ती, वरन् आभासित होती है। यहाँ एक उद्धरण देना असंगत न होगा—

काफी अन्धेरे से चहल-पहल हो रही है। रीति को नहलाया जाता है और एक सूखे कपड़े में लपेट दिया जाता है।

'ले अपनी भतीजी को' उसे किसी की गोद में डाल दिया जाता है। बुआ धीरे-धीरे हिलाती है, उचकारती है, चूमकाती है, उसकी ठोढ़ी पर उं[illegible] रख कर उसे हँसाने की कोशिश करती है।

सचमुच यह उसे सब कुछ भाता है। वह हँसती हुई मुँह फाड़ती है, कभी किलकारी मारती है, और जितनी तेज चला पाती है, उतनी तेज पैर चलाती है……।*

यहाँ रीति को केन्द्रित करके लिखा गया है। लेखक 'उसे [illegible] गोद में डाल दिया जाता है' न लिख कर 'किसी' के स्थान पर कोई नाम रख सकता था, किन्तु नहीं; रीति अन्धी है, अभी उसको स्पर्श बोध नहीं है। इसलिए उसकी हँसी तो बराबर है, वह तो बुआ को पहचानती है, इसीलिए उसकी अनुभव करके हँसती है, किलकारती है, मुँह फाड़ती है…।

* अंधी दृष्टि : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ[illegible]

'वासना के अंकुर' में भी पदे-पदे मौलिकता के दर्शन होते हैं। चौधराइन और महात्मा जी का किस्सा प्रत्येक ढोंगी साधु महात्मा का किस्सा है, जिन्हें हम प्रायः सदा सुनते ही रहते हैं, किन्तु लेखक के प्रस्तुतीकरण का ढंग ऐसा है कि नवीन कहानी सा दिखायी देता है। रमेसुर की कहानी साधारण जीवन से ली गयी होती हुई भी अनुभूतियों की तरलता के कारण मौलिक है।

३- घटनात्मक सत्यता तथा रोचकता— उपन्यास का लेखक जो कथानक प्रस्तुत करता है, वह प्रायः कल्पना की सहायता से ही निर्मित होता है। चाहे सत्य घटना पर ही आधारित क्यों न हो, कल्पना का योग अनिवार्य है। किन्तु उपन्यास की सफलता इसी में है कि चाहे वह सत्य घटना पर आधारित न हो, फिर भी यथार्थता की संभावनाओं को प्रस्तुत करे। यदि वह विश्वसनीय रूप से इस प्रकार उपस्थित कर सकता हो तो उसकी सफलता असंदिग्ध है।* वस्तुतः उपन्यास को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कल्पना की सहायता लेनी ही पड़ती है, अतः वह काल्पनिकता भी वास्तविकता की छाया और संभावनाओं का प्रतिरूप बनाती और उभारती जान पड़ती है।† दूसरे शब्दों में, कल्पना-सृष्टि के पीछे उपन्यासकार का यही उद्देश्य रहता है कि वह पाठक के सामने कैसे संभाव्य सत्य को अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करे और यथार्थ जीवन के ऐसे स्वरूप को चित्रित कर सके, जिसमे उसे उस जीवन के रूप की झाँकी दिखाई दे, जो यथार्थ रूप में समाज में विद्यमान है। वस्तुतः कथानक को रोचक बनाने के लिए उपन्यास में सत्यता का ताना-बाना आवश्यक है और उसके साथ ही सत्य घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने का अधिकार भी उपन्यासकार को है।

नई पीढ़ी के उपन्यासकार डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों ने सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक, दोनों ही तरह के कथानकों को सत्यता के मार्ग पर आगे बढ़ाया है। 'रीता' की कथा पढ़ते समय लगता है, यह अपने घर की कथा हो—हम पर गुजरी व्यथा हो। और 'अभिशप्ता' की निशा हमारे सामने कैंसर से जूझती युवती जो अस्पताल में पड़ी अपने जीवन की अन्तिम साँसे गिन रही है, का साफ चित्र आँखों के सामने ला देती है। इसमे हम घर बैठे

* दे. हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४२
† वही, पृष्ठ १४२

से उन्होंने प्रत्यक्ष देना और अपनी कल्पना के सतरंगी धागे में उन्हें पिरो दिया। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने दोनों आँखों से सारे संसार को देखते हुए गद में अन्धे बालक की चेष्टाओं, बाल सुलभ उत्सुकताओं, उत्साह पूरा न होने पर दमित आक्रोश आदि का ऐसा स्वाभाविक वर्णन किया, मानो वे स्वयं भुक्त भोगी हैं। उनके उपन्यास की पात्रा 'रीति' पाठकों के हृदय से इस प्रकार साधारणीकरण कर लेती है, कि पाठक पढ़ते समय यही देखता है कि सामने अन्धा बालक इस प्रकार कार्य कर रहा है—चेष्टाएं कर रहा है; अथवा इस प्रकार की परिस्थितियों में यदि कोई अन्धा शिशु पड़ जाता तो उसकी मं यही चेष्टाएं होती ! सूर का पाठक तो उन परिस्थितियों में से गुजरने ; कारण उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है और डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'अंधी दृष्टि' का पाठक इन परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव न करने पर भी उनके तद्रूप अपने को समझने लगता है। उसे सहज ही रीति से सहानुभूति हो जाती है। उसे कल्पना की थिरकन मालूम नहीं पड़ती, सत्यता आभासित होती है। यहाँ एक उद्धरण देना असंगत न होगा —

काफी अन्धेरे से चहल-पहल हो रही है। रीति को नहलाया जाता है और एक सूखे कपड़े में लपेट दिया जाता है।

'ले अपनी भतीजी को' उसे किसी की गोद में डाल दिया जाता है। उसे बुआ धीरे-धीरे हिलाती हैं, उचकारती हैं, चुमकाती हैं, उसकी ठोढ़ी पर उंगली रख कर उसे हँसाने की कोशिश करती हैं।

सचमुच यह उसे सब कुछ भाता है। वह हँसती हुई मुँह फाड़ती है, कभी-कभी किलकारी मारती है और जितनी तेज चला पाती है, उतनी तेज हाथ पैर चलाती है........?*

यहाँ रीति को केन्द्रित करके लिखा गया है। लेखक 'उसे किसी की गोद में डाल दिया जाता है' न लिख कर 'किसी' के स्थान पर कोई नाम लिख सकता था, किन्तु नहीं; रीति अन्धी है, अभी उसको स्पर्श बोध कहाँ है, उसका स्पर्श तो पराया है, वह तो बुआ को पहचानती है, इसीलिए उसकी गोद का अनुभव करके हँसती है, किलकारती है, मुँह फाड़ती है...!

* अन्धी दृष्टि : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११

'वासना के अंकुर' में भी पदे-पदे मौलिकता के दर्शन होते हैं। चौधराइन और महात्मा जी का किस्सा प्रत्येक ढोंगी साधु महात्मा का किस्सा है, जिन्हें हम प्रायः सदा सुनते ही रहते हैं, किन्तु लेखक के प्रस्तुतीकरण का ढंग ऐसा है कि नवीन कहानी सा दिखायी देता है। रमेसुर की कहानी साधारण जीवन से ली गयी होती हुई भी अनुभूतियों की तरलता के कारण मौलिक है।

३- घटनात्मक सत्यता तथा रोचकता— उपन्यास का लेखक जो कथानक प्रस्तुत करता है, वह प्रायः कल्पना की सहायता से ही निर्मित होता है। चाहे सत्य घटना पर ही आधारित क्यों न हो, कल्पना का योग अनिवार्य है। किन्तु उपन्यास की सत्यता इसी में है कि चाहे वह सत्य घटना पर आधारित न हो, फिर भी यथार्थता की सम्भावनाओं को प्रस्तुत करे। यदि वह विश्वसनीय रूप से इस प्रकार उपस्थित कर सकता हो तो उसकी सफलता असन्दिग्ध है। * वस्तुतः उपन्यास को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कल्पना की सहायता लेनी ही पड़ती है, अतः वह काल्पनिकता भी वास्तविकता की छाया और संभावनाओं का प्रतिरूप बनाती और उभारती जान पड़ती है। † दूसरे शब्दों में, कल्पना-सृष्टि के पीछे उपन्यासकार का यही उद्देश्य रहता है कि वह पाठक के सामने कैसे संभाव्य सत्य को अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करे और यथार्थ जीवन के ऐसे स्वरूप को चित्रित कर सके, जिससे उसे उस जीवन के रूप की झाँकी दिखाई दे, जो यथार्थ रूप में समाज में विद्यमान है। वस्तुतः कथानक को रोचक बनाने के लिए उपन्यास में सत्यता का ताना-बाना आवश्यक है और उसके साथ ही सत्य घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने का अधिकार भी उपन्यासकार को है।

नई पीढ़ी के उपन्यासकार डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों ने सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक, दोनों ही तरह के कथानकों को सत्यता के मार्ग पर आगे बढ़ाया है। 'रीता' की कथा पढ़ते समय लगता है, यह अपने पर की कथा हो—हम पर गुजरी व्यथा हो। और 'अभिमन्त्रा' की निशा हमारे सामने कैंसर से जूझती युवती जो अस्पताल में पड़ी अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिन रही है, का साफ चित्र आँखों के सामने ला देती है। इसमें हम घर बैठे

* ई. हिन्दी   . १४२
† वही, पृष्ठ

ही अस्पताल में पहुँच जाते हैं और ऑपरेशन थियेटर के तटस्थ दर्शक बन जाते हैं। इन दोनों उपन्यासों को लिखने की शैली ऐसी है, जिससे ज्ञात होता है, यह उपन्यास न होकर लेखक की आत्मकहानी हों। कथानक साधारण सामान्य जन जीवन से लिये गये हैं, जिसमें हमारी अपनी कथा है—आप सबकी अपनी आपबीती है। 'हरहने पानी की बूंदें' पढ़ते समय आँखों के सामने प्रसूता स्त्री का चित्र नाचने लगता है और आँखें उसी के पास लग जाती हैं, कल्पना के मंचपर हम अपनी किसी परिचिता प्रसूता का चित्र बनाने लगते हैं, जो अनायास ही प्राप्त हो जाता है। 'अपनी दृष्टि' तो पदे-पदे बाल स्वभाव और मनोविज्ञान की ही सूक्ष्म विवेचना मात्र है। इससे पाठक का मन अनायास ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उसका अपने घर का बच्चा उस किनकन में बिलखने लगता है।

बाह्य यथार्थ और घटनात्मक सत्यता पर जोर देने वाले उपन्यासों में 'आंचलिक उपन्यासों' का प्रमुख स्थान है। आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय रंग या किसी प्रदेश विशेष का यथातथ्य वर्णन इस तरह किया जाता है कि वह उपन्यास का विशिष्ट गुण दिखायी देता है। स्थानीय वर्णन, पहनावा, रीति-रिवाज, बोलचाल आदि को ज्यों का त्यों उतारने का प्रयत्न किया जाता है, स्थानीय रंग कथानक का अंग तभी बन पाते हैं, जब वे पात्रों के व्यवहार और मनोवृत्तियों को प्रभावित करते हों, केवल पृष्ठभूमि बनाकर ही न रह जाते हों। अन्यथा यह वास्तविकता एक सजावट मात्र दिखायी देती है* 'बाम्ना के अङ्कुर' उपन्यास को, इस दृष्टि से, आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें ग्रामीण समाज के निम्न वर्ग का चित्रण है। और उन ग्रामवासियों की बोली, खान, व्यवहार, विचार सभी उसी रंग में रंगे हुए हैं। बोली में भी वही ग्रामीणता और अशिक्षा है। इसके लिए एक दो उदाहरण देना असंगत न होगा। एक अतिशय मधुरवर्णीय बनते अर्जी महोदय के स्वागत में अपने ग्रामवासियों का चित्र देखिये—

सार्जेमेन झुकना-झुकना कर रह जाते हैं, 'ये बड़ार लोग भी रहे बाटिहार

---

* डा० प्रताप नारायण टण्डन कृत हिन्दी उपन्यास कला, पृष्ठ १४६

ही। चाहे लखनऊ मे रहते हों चाहे कहीं और, रहेंगे वैसे के वैसे ही। बताओ, आखिर सबै भी अब क्या रहा है....'

× × ×

सरसुती झुझला रही है। 'अब मैं कोई दस रूप थोड़ी धारन कर लूंगी रावन की तरह, जो सबको एक साथ जवाब दे दूं।'

बाहर राधेमन भी कम परेशान नहीं हैं। परेसानी की बात ही है; मनिस्टर साँब आ रहे हैं कि मजाक है।

"राधेमन बाबू" सिऊचरन कहता है "आज तुम्हारा इम्तहान है, इम्तहान।"

"इम्तहान तो है ई, बलकन उससे भी बढ़कर," लाल बाबू कहते हैं।

"बड़े-बड़े लखपती करोड़पती मन्तरी जी के दरवाजे पर नाक छीला करते हैं, तब भी उनके दरसन नहीं होते। किसी का निमन्तरन सवीकारना तो दूर की बात है।" जैनाथ जी कह रहे थे—मंडल कांग्रेस के मिम्बर।

'देखिये, भगमान आज लाज रख ले तो है," राधेमन बाबू गरब से फूले नहीं समा रहे थे। मन्तरी जी आज उनके दरवाजे पर आ रहे हैं; जनता के सेवक ठैरे आखिरकार।

अशिक्षित शराबियों का, जो मिलमें मजदूरी करते हैं, एक यथार्थ चित्र भी देखिये—

"आओ भाई सुमिरन कहाँ रहे इतने दिन ?"

"अरे रहन कहाँ? इहाँ आये खातिर हमेसा तरसत रहेन"

× × ×

"मैं कैता हूँ साले," एक पउवे के बाद किसन भट्ठी की तरह सुलगने लगा था, "इत्ता बढ़िया बाइस्कोप तेरे बाप ने भी कबी नईं देखा होगा।"

"बाप" सुमिरन ने आँखें नचायीं, "तोहका सार इहै ग्यान नाईं ऐ कि मोर बप्पा बाइस्कोप चले के पैले ई राम नाम सत्य हुइगें रहै।"

---

१. दे. वासना के अंकुर : डा. प्रतापनारायण टण्डन परि. ४

एक ओर का ठहाका लगा।

"क्यों बे रमेसुरा" उसने चौंक कर कुछ लाग्रह से कहा "तोहरा कुल्ला अबहू भरा धरा है ?"

"हूँ" गिलास पीते गिरते-गिरते कहा, "तब साले तू क्यों आया था हमारे साथ। मेरा दूसरा कुल्ला खतम और तेरा पैला ई रखा है। पी साले पी जल्दी पा……।"*

× × ×

इन प्रसंगों में बोली, बात, व्यवहार सभी स्थानीय रंग से रँगे हुए हैं। इनको पढ़ते समय लगता है कि इन्हीं के बीच बैठे हों या देशी ठर्रे की दूकान पर मैले धुंधले कपड़ों में कीड़ों की तरह रेंगते शराबी पी रहे हों। निम्न वर्ग का रूप सत्यता का आवरण होने के कारण हमारे सामने आ जाता है।

साथ ही यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह रोचकता लाने के लिए अविश्वसनीय तथा अव्यावहारिक तत्वों का समा-वेश इनके उपन्यासों में नहीं मिलता। उनमें रोचकता मनोविज्ञान की दृष्टि से उत्पन्न की गयी है। पात्रों का चित्रण इस प्रकार है कि कथानक स्वाभाविक उत्सुकता को साथ लिये चलता है। यद्यपि कहीं-कहीं किसी उपन्यास में विचारों का धाराप्रवाह उल्लेख कथानक को बोझिल करके रोचकता के मार्ग में बाधक दिखायी देता है, किन्तु यह बोझिलता किसी बड़ी बात को कहने के लिए निर्माण किये जाने वाले वातावरण की होती है, जो हृदय के अतिरिक्त मस्तिष्क को भी कुछ सोचने की—मनन करने की सामग्री देती है। कथानक में रोचकता लाने के उद्देश्य से ही 'रीता' तथा 'अभिशप्ता' आत्मकथात्मक शैली में लिखी हुई हैं और बीच-बीच में पत्र तथा डायरी शैली‡ का भी प्रयोग किया गया है। 'वासना के अंकुर' में कथा को अनेक पात्रों द्वारा वर्णित करके उनको लक्ष्य करके कही गयी हैं, कहीं-कहीं वर्णन भी दिये गये हैं, और क

* वासना के अंकुर : डा. प्र. न. टण्डन परि. ४

† रुपहले पानी की बूँदें : डा. प्र. न. टण्डन

डा प्र न टण्डन

को विशृंखलित कर दिया गया है। फ्रेंच उपन्यासकार पियेर लुई के उपन्यासों में रोचकता वृद्धि में वातावरण काफी सहायक होता है, इसी प्रकार अभिशप्ता तथा रीता में वातावरण रोचकता की वृद्धि करता है और कथा को आगे बढ़ाता है।

वस्तुत: डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के कथानक, समीक्षा के लिए निर्धारित मानदण्डों की तुला पर सही उतरते हैं; यद्यपि कहीं कुछ दोष दिखाई देते हैं, किन्तु 'एको हि दोषो गुण सन्निपाते निम्मजतीन्दो किरणेष्ववांकाः' के अनुसार कोई दोष गुण-सागर की महान लहरों में पड़ी कीचड़ की तरह छिप जाता है और ऊपर साफ स्वच्छ जल ही दिखायी देता है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र अपनी नवीन विशिष्टताएँ रखता है। पात्र अथवा चरित्रचित्रण के माध्यम से उपन्यासकार इस जीवन के विविध रूपों को उपस्थित करता है।* इनके पात्रों में मानव जीवन का समग्र रूप देखने की चेष्टा की गयी है। पात्र व्यक्तित्व प्रधान भी हैं और समाजवादी भी, उनका प्रत्येक पात्र अपने में पूर्ण है और किसी न किसी समस्या को लेकर खड़ा है। अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में लेखक ने दोनों ही प्रणालियाँ—विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक—अपनाई हैं। (अन्य सब विधियाँ तो इन्हीं दोनो के अन्तर्गत आ जाती हैं)। उनके पात्र साधारणत: मध्यवर्गीय हैं, यद्यपि एक-दो अपवाद हैं,† किन्तु कहीं-कहीं उनका भी परिष्कार हो जाता है।

कहीं-कहीं तो लेखक आत्मकथात्मक शैली के अनुसार पात्रों का चरित्र चित्रण करने लगता है। दूसरे व्यक्ति द्वारा किसी पात्र को चारित्रिक विशेष-

---

* हिन्दी उपन्यासकला, पृष्ठ १६३

† वासना के अंकुर

ताओं का वर्णन तो साधारणतया पाया ही जाता है। किन्तु अपनेआप अपनी विशेषतायें बताना, वह भी किसी पात्र को नहीं स्वयं पाठक को, लेखक की अपनी शैली की निजी विशेषता है। 'रीता' में रमेश के व्यक्तित्व का परिचय देखिए—

"मैं एक भावुक, सहृदय और सुकुमार भावनाओं वाला नवयुवक हूँ। मैंने रीता को सदैव अपने हृदय मे बिठा कर रखा है। यदि कभी वह मुझसे प्राण देने को भी कहती तो मैं बिना किसी हिचक के तैयार हो जाता। मैं साधारण युवक हूँ; बड़ी बड़ी बातों और बौद्धिकता के प्रश्नों का विवाद मुझे ऐसी चीज मालूम नहीं पड़ती कि उसमें पड़ूं।..." *

यहाँ रमेश ने अपने गुणों का वर्णन स्वयं किया है। इसी प्रकार का एक विवरण 'अभिशप्ता' की नायिका निशा में मिलता है। नख शिख वर्णन की प्रणाली सदा से रही है, उसे या तो उपन्यासकार स्वयं अपने मुंह से अथवा किसी पात्र के द्वारा वर्णित कर देता है। किन्तु स्वयं पात्र अपनी सुन्दरता का बखान स्वयं करे, यह अजीबोगरीब सा लगता है। यही अजीबोगरीबी अभिशप्ता उपन्यास में मिलती है। निशा कहती है—

"मेरा चेहरा काली-काली फैली हुई अपार केश राशि से ढंका हुआ था। मेरे माथे की चौड़ाई बिल्कुल मेरे हिसाब से थी। लड़कियों में न मैं बहुत चौड़ा माथा पसन्द करती थी और न बहुत पतला। माथे पर लगी हुई लम्बी बिन्दी मेरे गोरे रंग पर अच्छी लगती थी। मेरी भौंहें बहुत नुकीली थीं, पलकें चौड़ी थीं और आँखें कुछ छोटी थी। मैंने देखा कि मेरी आँखें कोई खास अच्छी नहीं लगती थीं। हालांकि उनके भीतर एक अजीब सी गहराई मालूम देती थी, प्रत्येक बार पलक झपकाने पर एक अजीब सा रोमांच होता था। †

व्यक्तित्वपूर्ण पात्र—व्यक्तित्व का विनाश करके जब पात्र को किसी तथ्य का प्रतिपादन करने को विवश किया जाता है, तब वह स्वच्छन्द विकास का अवसर न पाकर एकांगी हो जाता है। जिन उपन्यासों में जीवन के यथार्थ

* रीता : डा. प्र. ना. टण्डन, पृष्ठ १०
† अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन

चित्रण से अधिक उसके सुधार का प्रश्न है, उनमें जिन पात्रों की सृष्टि हुई है वे समनतीय पात्र हैं और सिद्धान्तों की सृष्टि हैं—वे टाइप मात्र मालूम होते हैं। प्रीस्टली डिकेंस के पात्रों में मानवता का अभाव देखते हैं।* तो स्काट नायकों को सीधा डन्डा और नायिकाओं को चलती-फिरती 'गाउनों' से अधिक कुछ नहीं मानते। † किन्तु डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के पात्र व्यक्तित्व प्रधान हैं। उनका व्यक्तित्व स्वतः विकसित होता गया है, लेखक ने एक साँचा बना कर उसमें ढालने की कोशिश नहीं की है। उनपर परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है, समाज को देखने-समझने का प्रयत्न करते हैं और उसी के अनुरूप अपने को बनाने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु इसका यह आशय भी नहीं है कि वे पूर्ण रूपेण परिस्थितियों के दास हों—या उनके इशारों पर नाच रहे हों। अपितु उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है, सोचने का ढंग है और समाज की व्यवस्था के प्रति निर्णय लेने की सोच-समझ है। 'अभिशप्ता' 'रीता' और 'वासना के अंकुर' के पात्र अपना पृथक व्यक्तित्व रखते हैं। वे किसी वर्ग के विशिष्ट गुणों को दिखाने के लिए ही ('वासना के अंकुर' के रमेशुर को छोड़ कर—यद्यपि इसमें भी व्यक्तित्व की प्रधानता है) निर्मित नहीं किये गये, मानवमात्र से भी उनका सम्बन्ध है। उनमें दोष भी हैं, कमजोरियाँ भी हैं, कुछ उनके प्रति उदासीन हैं, कुछ इन कमजोरियों द्वारा प्राप्त हानि से उत्पन्न पश्चात्ताप से उन्हें पहचानते हैं और कुछ पहले से ही उनके प्रति जागरूक हैं, किन्तु लेखक ने सभी के साथ सहानुभूति पूर्वक न्याय किया है। परदे में छिपे सी०आई०डी० की तरह प्रत्येक पात्र की गतिविधि पर नजर तो रखी है, किन्तु उनको टोका नहीं है—उनके किसी कार्य में व्याघात नहीं डाला। यदि किसी को संभलना है तो सम्भले, हाथ से सहारा नहीं दिया। ठोकर खाकर बहुत से पात्र संभलते हैं और बहुत से अपनी पीड़ा को अंतर में संजोये ही समाप्त हो जाते हैं। किसी को अपनी गलती पर जिन्दगी भर पछताना पड़ता है—और उस गलती को गलती न मान कर अपनी हठ को अपने साथ लिये मर जाते हैं। किन्तु यह उपन्यासकार की कुशल अभिव्यंजना शैली है कि उन पात्रों के प्रति हमें आक्रोश

---

* Preistly : The English Novel, P. 33

† Preistly : The English Novel, P, 23-24

में कौन सी ऐसी बात नहीं है, जो एक अति सुन्दर युवती में होनी चाहिये ।*

यहाँ उपन्यासकार रीतिकालीन नखशिख वर्णन की परिपाटी का अनुकरण करके प्रारम्भिक काल में उपन्यासों की तरह नायिका की सौन्दर्य-शास्त्र निष्णात सुन्दरता का† पाठकों को पान करा रहा है ।

रीता के यौवन में ताजगी है, मुस्कुराहट है, कौमार्य और अछूते यौवन के परिचय देने वाले भाव हैं,‡ जो रमेश को देख कर और भी खिल उठते हैं। उसके माता-पिता उसका विवाह करना चाहते हैं, वह मन से न चाहते हुए भी प्रतिवाद नहीं कर पाती हाँ रमेश से यह सब कह अवश्य देती है। रमेश पाशविक अवस्था की विवशता में बह जाता है। दोनों एक दूसरे के आलिंगन में आबद्ध हो जाते हैं। यहाँ रीता में एक स्वाभाविक कमजोरी है—यौवन का उद्दाम प्रवाह है और इसमें वह बिना आगा-पीछा सोचे—परिणाम की चिन्ता किये बिना बही जा रही है, टॉलस्टाय के प्रसिद्ध उपन्यास 'एन्ना-केरेनिना' की पात्रा एन्ना की तरह, जो व्रास्की के प्रेम में अनायास ही खिंची जा रही है। 'एन्ना केरेनिना' में एन्ना कभी-कभी व्रास्की को समझाती है कि वह जो कुछ कर रहा है, अनुचित कर रहा है।* और इधर रमेश रीता को भूलने का पत्र भी लिखता है और वार्तालाप भी करता है कि यह पथ कष्टकर है,* पर दोनों

"आपको अब कैसे भूल सकती हूँ ?" रीता ने सुबकते हुए कहा, "कभी नहीं।"

लेकिन मैं यह सब सुनना नहीं चाहता था। उसकी वह दशा देखना मेरे लिए कठिन हो रहा था, जिसमें वह उस समय थी।

मैंने धीरे से उसका हाथ पकड़ कर दबाते हुए कहा, "नहीं रीता, यही ठीक होगा। अच्छा विदा हमेशा के लिए।"

* रीता डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ २१-२२

† हिन्दी उपन्यासों में चरित्र चित्रण का विकास: डा० ... रांगा।

‡ रीता: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २७

* आधुनिक साहित्य: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २२

* रीता: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १५

उपन्यास के आरम्भ से अंत तक रमेश और रीता के मनोजगत् के भावों का विकास ही बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया गया है। मनुष्य दुर्बल है, नारी के प्रति आकर्षण स्वाभाविक ही है। अनायास, अनचाहे रूप प्राप्त रीता के यौवन का भोग आदि उन उत्पन्न परिस्थितियों में रमेश ने किया तो कोई अनुचित नही किया। समग्र रूप में रमेश एक स्वार्थी, छिछोरा और कायर युवक है, ऊहापोह में पड़ा हुआ, अपने प्रेम पात्र का सर्वस्व नष्ट करके भी, उस पर अहर्निश सोचते हुए भी सक्रिय कदम नही उठा पाता। उसमे समाज से लड़ने का साहस नहीं है, फिर भी ऐसा काम कर बैठता है जिससे समाज का सामना करना पड़े, किन्तु इसका साहस न होने से वह जीवन संघर्ष से पलायन कर जाता है। 'टॉलस्टाय' के उपन्यास 'एन्ना केरेनिना' का व्रास्की, गुस्ताव फ्लोबर कृत 'मदाम बावेरी' का रोडोल्फ और सामरसेट माम द्वारा लिखित 'पेंटेड वेल' का पात्र चार्ल्स की तरह रमेश भी धूर्त है, और एन्ना, एम्मा और किटी की तरह रीता को अपनी भोग्या बना कर उसी के भाग्य पर मरने-जीने को छोड़ देता है फिर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'रीता' के पात्र रमेश मे एक विशेषता है—जो उपन्यासकार का अपना शिल्प विधान है। व्रास्की रोडोल्फ और चार्ल्स तो अपने कुकृत्यों से पाठकों की सहानुभूति खो बैठते हैं, और प्रत्येक उनके ऊपर घृणापूर्वक थूक देता है, किन्तु रमेश वही काम करते हुए भी पाठको की सहानुभूति नही खोता है। पाठक उसको परिस्थितियों से समझौता करने वाला विवश युवक समझ कर छोड़ देता है और इसका कारण है उपन्यासकार द्वारा चित्रित मानसिक द्वन्द्व। अश्क जी के उपन्यास 'गिरती दीवारें' के पात्र चेतन की तरह ही रमेश है। अश्क जी की तरह डा० टण्डन जी ने रमेश के मानसिक संघर्षों के चित्रण का अवसर नहीं खोया है, किन्तु इस मनोविश्लेषण में वह उबकाहट नही है जो अश्क जी में है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अति तक पहुँचा हुआ नहीं है। उसमे स्वाभाविकता है। यही कारण है कि उसके दुर्गुण भी पाठकों की दृष्टि में आते हैं, पर इस तरह कि दुर्गुण मालूम नही पड़ते। रीता का रमेश की ओर आकृष्ट होने, पाठक सोचे कि यह रमेश की लम्पटता है तो इससे पूर्व ही वह कह देता है

'मैं मानता हूँ कि प्रत्येक युवक के जीवन मे, विशेषरूप से युवावस्था मे कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जब कुछ युवतियाँ उससे बातचीत का

को दोनों जगह असफलता ही मिलती है। एम्मा की तरह रीता भी अब प्रेम में पागल है और वासकी तरह की रमेश को अपना सर्वस्व समर्पित करने को आतुर है। और एक दिन जब घर पर के सब व्यक्ति बाजार में कुछ खरीदने के लिए चले जाते हैं, रीता रमेश को अपने घर लाकर आलिंगन पाश में आबद्ध कर लेती है। और रमेश भी······दोनों सभी सांसारिक, सामाजिक और नैतिक मर्यादायें तोड़ देते हैं। * ऐसी परिस्थिति में अब वह उसमें पहले-सी चचलता और शोखी नहीं रह गई, अब वह मुँह पर मुस्कुराहट लाने की कोशिश करके भी मुस्कुरा नहीं पाती है, आँखोंमें करुणा है,† उसे कुछ अजनबीपन मालूम सा होता है, पर वह अजनबीपन क्या है, इसे वह स्वयं नहीं जानती। एम्मा तो वास्की को सूचना दे देती है कि उसके गर्भ रह गया है, किन्तु रीता तो इससे बिल्कुल अनभिज्ञ है। फिर भी उसके घर पर रीता के प्रेमालाप का आख्यान मालूम हो जाता है और उसकी शादी कर दी जाती है।

यहाँ रीता में साहस की कमी है, वह अपने माता-पिता से नहीं कह पाती कि मैंने मन को एक को समर्पित कर दिया है। और रमेश भी संवेदनशील होकर भी छिछोरा है, माता-पिता से बात का मार्ग खोजता है, किन्तु उनके घुड़कते ही सब साहस कपूर की तरह खो बैठता है। दोनों के चरित्रों में इन नैतिक दुर्बलताओं का चित्रण कर एक ओर लेखक ने इनको मानवीय कम-जोरियों का पुतला बना कर यथार्थ का चित्र खींचने का प्रयास किया है, तो दूसरी ओर कुछ खटकता सा मालूम पड़ता है········ऐसा लगता है कहीं कुछ कमी है। कहीं कुछ अस्वाभाविक भी है यदि यहीं तक होता तो ठीक भी था, किन्तु बाद में उसी की स्मृति में घुलते रहना········यहाँ तक कि उसकी सुख शान्ति के लिए स्वयं का बलिदान, पति गृह का परित्याग, और रमेश की स्वार्थ परायणता कि पत्र का उत्तर तक नहीं देता,‡ आदर्श के लिए भले ही ठीक न हो, पर वास्तविक धरातल पर सही ही उतरते हैं।

* रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५८-६०

† रीता : डा० प्रतापनाराण टण्डन, पृष्ठ ६५

‡ रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८८

उपन्यास के आरम्भ से अंत तक रमेश और रीता के मनोजगत् के भावों का विकास ही बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया गया है। मनुष्य दुर्बल है, नारी के प्रति आकर्षण स्वाभाविक ही है। अनायास, अनचाहे रूप प्राप्त रीता के यौवन का भोग आदि उन उत्पन्न परिस्थितियों में रमेश ने किया तो कोई अनुचित नहीं किया। समग्र रूप में रमेश एक स्वार्थी, छिछोरा और कायर युवक है, ऊहापोह में पड़ा हुआ, अपने प्रेम पात्र का सर्वस्व नष्ट करके भी, उस पर अहर्निश सोचते हुए भी सक्रिय कदम नहीं उठा पाता। उसमें समाज से लड़ने का साहस नहीं है, फिर भी ऐसा काम कर बैठता है जिससे समाज का सामना करना पड़े, किन्तु इसका साहस न होने से वह जीवन संघर्ष से पलायन कर जाता है। 'टॉलस्टाय' के उपन्यास 'एन्ना केरेनिना' का व्रांस्की, गुस्ताव फ्लोवर कृत 'मदाम बावेरी' का रोडोल्फ और सामरसेट माम द्वारा लिखित 'पेंटेड वेल' का पात्र चार्ल्स की तरह रमेश भी धूर्त है, और एन्ना, एम्मा और किटी की तरह रीता को अपनी भोग्या बना कर उसी के भाग्य पर मरने-जीने को छोड़ देता है फिर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'रीता' के पात्र रमेश में एक विशेषता है—जो उपन्यासकार का अपना शिल्प विधान है। व्रांस्की, रोडोल्फ और चार्ल्स तो अपने कुकृत्यों से पाठकों की सहानुभूति खो बैठते हैं, और प्रत्येक उनके ऊपर घृणापूर्वक थूक देता है, किन्तु रमेश वही काम करते हुए भी पाठकों की सहानुभूति नहीं खोता है। पाठक उसको परिस्थितियों से समझौता करने वाला विवश युवक समझ कर छोड़ देता है और इसका कारण है उपन्यासकार द्वारा चित्रित मानसिक द्वन्द्व। अश्क जी के उपन्यास 'गिरती दीवारें' के पात्र चेतन की तरह ही रमेश है। अश्क जी की तरह डा० टण्डन जी ने रमेश के मानसिक संघर्षों के चित्रण का अवसर नहीं खोया है, किन्तु इस मनोविश्लेषण में वह उबकाहट नहीं है जो अश्क जी में है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अति तक पहुँचा हुआ नहीं है। उसमें स्वाभाविकता है। यही कारण है कि उसके दुर्गुण भी पाठकों की दृष्टि में आते हैं, पर इस तरह कि दुर्गुण मालूम नहीं पड़ते। रीता का रमेश की ओर आकृष्ट होने पर पाठक सोचे कि यह रमेश की लम्पटता है तो इससे पूर्व ही वह कह देता है—

'मैं मानता हूँ कि प्रत्येक युवक के जीवन में, विशेषरूप से युवावस्था में कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जब कुछ युवतियों उसमें बातचीत का अवसर

खोजती हैं। और ऐसा अवसर पाने पर उसका उपयोग भी करती हैं।'*

रीता के सम्बन्ध में रमेश कहता है कि इसी तरह जब मैंने उसे अपनी ओर ताकते पाया, तो हँसी ही आई कोई कौतूहल या आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ।† इससे पाठकों की सहानुभूति पुनः उसकी ओर ही हो जाती है।

इसी प्रकार रीता से संभोग के समय रमेश के प्रति पाठकों की सहानुभूति समाप्त होने को ही होती है, किन्तु वहाँ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न कर दी गयी हैं, कि कुछ अस्वाभाविक अथवा छिछोरापन मालूम नहीं पड़ता। रीता के घर पर किसी का न होना, उसके द्वारा घर पर रमेश को बुलाने का मौन निमन्त्रण, मुस्कुरा कर द्वार खोलना आदि प्रेम की तीव्रता में वासना की आग धधका देती है,‡ रमेश का अन्तर्द्वन्द्व तीव्र हो जाता है, वह जिस काम को करना नहीं चाहता, वातावरण उसी को विवश कर देता है।

---

* रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १७

† रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १८

‡ मेरा हृदय अभी तक प्रेम की पवित्रता से जगमगा रहा था, लेकिन अब वासना जाग उठी। मैं भयानक उथल-पुथल का अनुभव करने लगा।

रीता मेरे सिरहाने निश्चल भाव से खड़ी थी। उसका ठण्डा कर-स्पर्श मुझे शीतलता प्रदान करने के साथ ही साथ बुरी तरह उत्तेजित भी कर रहा था। मैं तीव्रता के साथ यह अनुभव कर रहा था कि मेरे हृदय की वासनामय वृत्तियाँ जाग उठी हैं, और अपनी तृप्ति के लिए मुझे इस बात पर मजबूर कर रही हैं कि मैं पूरी हैवानियत के साथ पागलपन पर उतारू हो जाऊँ। मेरा विश्वास स्वयं अपने आप पर से उठता जा रहा था। उसके कोमल, कान्तिपूर्ण अंग, जिन्हें मैं अर्चन कर अभी अपने हृदय में रख लेना चाहता था, अब मुझे इस बात पर मजबूर कर रहे थे कि मैं उन्हें अपनी कामवासना का शिकार बनाऊँ, उन्हें मसल डालूँ।'

—रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २९

स्वयं रीता भी इस बात को महसूस करती है कि जो 'पाप' उन दोनों ने किया है, उसमें केवल उसे ही जलना नहीं पड़ता है, रमेश भी जल रहा है।* यहाँ तक कि रीता के मरने के बाद, अपना विवाह हो जाने के बाद भी उसको चैन नहीं है। पहाड़ पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती, रीता की याद उसे कचोटती रहती है। उसे रीता की याद आती है, उसकी दृष्टि उसे बेधती है, उसको व्यथित करती है और उसका पीछा करती है........। रात-रात भर वह स्वप्न देखा करता है, कभी-कभी आत्म-हत्या के विषय में भी सोचता है, उसका जीवन ही उसके लिए अभिशाप बन गया है।†

कल्पना कीजिये एक भरा पूरा घर है, ईश्वर की कृपा से वहाँ कोई कमी नहीं है, उसका मुखिया समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता है, उसका सर्वत्र प्रभाव है, ऊँची-ऊँची सभा संस्थायें उसका नाम अपने पदाधिकारियों की सूची में दे देने की स्वीकृति पाकर अपने को धन्य समझती हैं, सुन्दरी पत्नी जिसकी राह में अपनी प्रेम भरी आँखें बिछाये रहती हो, यदि वह दुखी है, अपने मुँह से स्वयं को कठोर स्वार्थी और तुच्छ हृदय समझ रहा हो, उसकी आत्मा उसे धिक्कारती हो, सदा पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हो और आत्म ग्लानि से पीड़ित हो, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति क्या आपकी सहानुभूति नहीं होगी ? रमेश भी इन्हीं मानसिक ऊहापोहों के बीच डूबता-उतराता पात्र है।‡ इसके प्रति अनायास ही सहानुभूति हो जाती है और दुर्गुण अवचेतन मन में लुप्त पड़ जाते हैं।

'रुपहले पानी की बूंदें' के पात्र प्रकाश और अचला भी अन्तर्द्वन्द्वों के बीच लटकते दिखायी देते हैं। इनमें प्रकाश की अपेक्षा अचला का व्यक्तित्व अधिक उभरा है। प्रकाश में तो सर्वत्र उत्सुकता ही दिखायी देती है। और उस उत्सुकता के बाद उस पर विचार। उसमें वह एक दार्शनिक का रूप धारण कर लेता है जो तटस्थ दृष्टा की तरह सब देखकर अपने मन में उसके विषय में सोचा करता है।

* रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०७

† रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११६-११७

‡ रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११५-११८

प्रकाश कालेज का एक अध्यापक है, जिसकी पत्नी अचला गर्भवती है, और प्रसव वेदना से छटपटा रही है। उसके हृदय में अपनी पत्नी के प्रति अपार स्नेह है, उसकी कराहट सुनकर दौड़ा हुआ जाकर रिक्शा लाकर उसमें अचला के साथ अस्पताल जाता है और प्रसव के लिए प्राइवेट वार्ड में भरती करा देता है। उसका हृदय काफी कोमल है, जिस पर प्रत्येक घटना का संवेदनशील प्रभाव पड़ता है। रात भर में ही उसे काफी तजुरबे हासिल होते हैं। और फिर मृत शिशु को लेकर मिट्टी की पावन गोद में समर्पित कर आता है। इस उपन्यास में उसका विचारक रूप ही अधिक उभरता है, दो-एक गुणों पर प्रकाश पड़ता है, किन्तु इन विचारों के अथाह समुद्र में वे तिनके की तरह डूबते-उतराते रहते हैं।

दूसरी ओर अचला के चरित्र, मातृत्व की जन्म-जन्मान्तर की भूख पहरा दे रही है, फिर भी वह अपने पति की खुशी में हंसती है, और उसी का कुशल-क्षेम पूछती है। पति के आने पर वह वेदना से छटपटाती हुई भी, उसे छिपा कर धीरे-धीरे कदमों से पति की ओर आती है और मुस्कुराती है।* उसे चाय बना कर पिलाती है।† और उसे थका हुआ देख कर बाहर घूम कर मन बहला आने को भी कहती है।‡ यहाँ तक कि मातृत्व छिन जाने पर—असह्य यन्त्रणाओं से संघर्ष करते रहने पर भी पति के आने पर अपनी फीकी पर स्निग्ध और कोमल मुस्कान बिखेरते हुए यही पूछती है—"तुमने कल से कुछ खाया है, या नहीं? भूखे मालूम हो रहे हो कमजोर।"• यहाँ अचला में माँ का वात्सल्य उभर आया है—'उलझी लकीरें' की पात्रा ज्योति की तरह जो अपने बेटे से घटना जानने की उत्सुकता जाहिर नहीं करती। उसे फिक्र है कि उसका बेटा भूखा होगा, उसे खाना लाया जाये।□ यह है पत्नी के रूप में छिपी माँ की ममता—

---

* रुपहले पानी की बूंदें : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २३

† वही, पृष्ठ २४

‡ वही, पृष्ठ २५

• वही, पृष्ठ १४८

□ उलझी लकीरें : राजेन्द्रमोहन अग्रवाल, पृष्ठ ११०

उसका निष्कपट प्यार भरा वात्सल्य और कुशल क्षेम की चाहना। वस्तुतः इस उपन्यास में यही प्रसंग सबसे अधिक मार्मिक है, भावुक है और कोमल है—उपन्यास का प्राण है।

उपन्यासों के पात्रों का चरित्र चित्रण का विश्लेषण करते समय अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी उपन्यासों मे चरित्र चित्रण और उसका विकास' मे डा० रणवीर रांग्रा ने लिखा है कि उपन्यासों मे पात्र पैदा होते ही नही आ जाते, बड़े होकर आते हैं, किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'अन्धी दृष्टि' की नायिका 'रीति' माँ के गर्भ से निकलते ही इसमे आ जाती है —या यों कहना चाहिए कि उसके जन्मते ही उपन्यास का प्रारम्भ होता है। उसके मुंह से 'केंओं, केंओं'* से ही उपन्यास की प्रथम पंक्ति प्रारम्भ होती है। और यही से उसके चरित्र चित्रण का उपन्यास कार विश्लेषण करने लगता है। उसके चरित्र का चित्रण करते समय वह विश्लेषणात्मक और अभिनयात्मक दोनों विधियों† का अनुगमन करता है। साथ ही लेखकों द्वारा उपन्यासों के द्वारा पात्रों के चरित्र विकास में निर्धारित सीमा का वह‡ अतिक्रमण नही करता। उसकी पात्रा रीति का चरित्र विकास स्वाभाविक गति से होता है। उपन्यासकार की रीति के चरित्र का विश्लेषण करते हुए विवरणात्मक (विश्लेषणात्मक) पद्धति मे रूप देखिये—"रीति को अभी दो ही बातें पसन्द हैं, या तो मां के स्तनों मे मुँह लगाये रहना, और या दूध में भीगी हुई कपड़े की बत्ती चूसना।*

* अन्धी दृष्टि : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५

† हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ ७६

‡ "लेखक को केवल तटस्थ निरीक्षक के रूप से पात्रों की प्रवृत्तियों से निरपेक्ष सम्बन्ध ही रखना चाहिये। * * * अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों के जीवन को अस्वाभाविक रूप नहीं देना चाहिये........"
—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा० गणेशन, पृष्ठ २१६-२१७

* अन्धी दृष्टि : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५

स्तन दे देती है, लेकिन वह दूध नहीं पीती—उसकी बिलख से कमरा भर जाता है...*

रीति का चरित्र चित्रण पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। किन्तु फिर भी उसमे मनोविज्ञान सी नीरसता नहीं है, न ही उसके व्याख्यान पर पृष्ठ के पृष्ठ झाड़े गये हैं। फिर भी इसमें एक स्वाभाविक रोचकता है, कोमलता है और उष्णता है। नारी के जन्मजात गुणों का उसमे जन्म से ही बाहुल्य है† उसमें उत्सुकता है‡ उसमें ममता की भावना है, साथ ही भय भी है। अपने छोटे भाई के प्रति ममता, उत्सुकता और भय का मिश्रित उद्धरण देखिये—

.........अकेले में भैया डरे न, इसलिए रीति उसके पास बैठी है। उसकी ममत्व भावना करवट लेती है। वह सरक कर उसके पास हो जाती है और भैये का चेहरा देखने की कोशिश करती है। उसकी साँस लेने की आवाज सुनती है। धीरे से अपनी हथेली उसके पेट पर रख देती है और उसका उठना-गिरना अनुभव करती है।

.........अन्त में उसका भैया जाग उठता है। पहले रोता है और धीरे-धीरे किलकारियाँ मारने लगता है, अपने हाथ हिलाने और पेट पटकने लगता है। रीति कौतूहल से उसका चेहरा ताकती है, उसकी चमकीली आँखों को देखने की कोशिश करती है। फिर उसकी आँखों में उंगली डालकर देखती है—वह जोर से चीख कर रो पड़ता है।

मम्मी के बिगड़ने की आवाज सुनाई देती है। अपराधी की तरह रीति सहम कर भैये को चुपाने लगती है—"लें-ले रो नहीं, आ आ....!"*

रीति मे बाल सुलभ अनुकरण का माद्दा है। वह बच्चों को बैठाकर स्वयं दादी का पार्ट करती है, और सबको खाना खिलाती है—झूठ-मूठ।□ इसमें
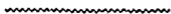
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

* मन्नी बुद्धि : डा० प्रताप नारायण टण्डन, पृष्ठ २५

† वही पृष्ठ, ५५

‡ वही पृष्ठ ५५

* वही, पृष्ठ ५५

□ वही, पृष्ठ ६८
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

ज्योति रहित आँखों ने उसे दूसरे माध्यमों से संसार का परिचय पाने को बाध्य कर दिया है, जिसमें सब कुछ अदृश्य है—भ्रम है।*

यहाँ उपन्यासकार ने कुछ कल्पना का साथ लिया है, पर वह अयथार्थ नहीं लगता—प्रभावोत्पादक है।

वस्तुतः रीति का चरित्र निराला है, अनोखा है। इसकी वर्णन शैली लेखक की अपनी है, गति नवीन है और यह पद्धति इस पर फबती है। अपने ढंग का निराला पात्र है 'रीति', जिसकी विश्व साहित्य में कहीं कोई सानी नहीं है।

विश्लेषणात्मक पद्धति में लिखा गया उपन्यास 'वासना के अंकुर' की पात्रा एवं नायिका गंगा का चरित्र लेखक की टेकनिक का अनोखा नमूना है और उससे भी अनोखा तथा निराला व्यक्तित्व है 'अभिशप्ता' उपन्यास की सशक्त पात्रा—निशा-का। मनोवेगों द्वारा गंगा और निशा के व्यक्तित्व का विकास पठनीय ही है। 'अभिशप्ता' में निशा का साहसी नारी का रूप क्रम से उज्ज्वल होता हुआ आता है। और उस समय उसका तेज बिजली सा हो जाता है जब वह प्रेमान्ध अखिल को फटकारती हुई कहती है—"खबरदार जो तुमने एक कदम भी आगे बढ़ाया""मैं तुम्हारी शक्ल तक नहीं देखना चाहती हूँ। तुम जलील आदमी हो, सड़क के' ' 'चले जाओ।'†

निशा समाज से विद्रोह करना चाहती है, सजधज कर बाजार में बैठी"" की तरह वर को रिझाने का प्रस्ताव न मानकर साधारण वेशभूषा में वहाँ जाती है।‡ फिर भी इतना विद्रोह करने वाली, सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष करते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करने वाली यह नारी परम्परागत संस्कारों के बन्धनों से अंचल जी के उपन्यास 'उल्का' की पात्रा मंजु की तरह पूर्णतया मुक्त नहीं है। उसकी हृद्गत हूक कहीं-कहीं उसके समस्त साहस को शिथिल करती जान पड़ती है। उसके अन्दर 'उलझी लकीरों' की पात्रा रश्मि के समान साहस नहीं है, उसमें संघर्ष झेलने की शक्ति नहीं-जो पुरुषों को स्पष्ट

* अन्धी दृष्टि : डा॰ प्रताप नारायण टण्डन, पृष्ठ १०६
† अभिशप्ता : डा॰ प्रताप नारायण टण्डन पृष्ठ ४१
‡ वही, पृष्ठ २८

चुनौती देती प्रतीत होती है। निशा पुरुषों के अत्याचार को मन ही मन सोचती है, उनके प्रति विद्रोह की भावना को संबल देती है, किन्तु रश्मि की तरह उनके विरुद्ध विद्रोह की घोषणा नहीं कर पाती। अनुमान लगाया जा सकता है कि शायद इसका कारण यह हो कि 'उलझी लकीरें' की पात्रा रश्मि की तरह निशा सुन्दर नहीं है। ईश्वर प्रदत्त बदसूरती से वह अभिशप्ता है, अतः बेबसी.... पर यह कथन तो निशा के साहस को और भी हीन कर देता है। मानों इसका साहस आत्मा की आवाज नहीं है, परिस्थितियों से विवश होकर इसका प्रदर्शन कर रही है कि लोमड़ी को अंगूर नहीं मिले, बोली खट्टे हैं।

निशा के हृदय में पुरुष की मदान्धता के प्रति आक्रोश है, वह उसका सामना करना चाहती है। शीला—अपनी सहेली से वर द्वारा वधू को देखे जाने का नाटक सुनकर उसका हृदय घृणा से भरा हुआ है। वह सोचती है— खरे कान और गुदे हुए चेहरे वाले लड़के जब सारी शालीनता ताक पर रख कर ऊट-पटाँग सवाल पूछना शुरू कर देते हैं, तो कैसा अजीब लगता है। आपने कहाँ तक पढा है? आपके खानदान में किसी को कोई बीमारी तो नहीं हुई थी, आपको नाचना या गाना आता है कि नहीं? इसका कोई सार्टिफिकेट आपके पास है? सिलाई, कढ़ाई और घर का काम कितना और क्या-क्या आता है?

'क्या अधिकार है एक काले कुरूप युवक को, कि वह लड़की के चेहरे के एक-एक कटाव, उसके वक्ष के एक-एक उभार और उसके वस्त्र की एक-एक गिरान को परखे। क्या हक है एक अशिक्षित या अर्धशिक्षित युवक को कि वह किसी शिक्षिता लड़की से उसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में दुनिया भर के सवाल करे। क्या अधिकार है, एक दुबले-पतले रोगी युवक को, जो सुन्दर और कान्तिवती युवती से उसके वंश के रोग आदि के बारे में प्रश्न करे? और क्या अधिकार है एक असंस्कृत युवक को कि वह एक शालीन लड़की से नाचने गाने या सिलाई-कढ़ाई आदि के बारे मे तहकीकात करे?

......सचमुच यह बड़ा अन्याय है। कन्सरेशन में हम जिन लड़कों को देख-कर अपनी हँसी पर काबू नहीं रख पातीं या जिन्हें एक बार देख कर इतनी घृणा होती है, कि दूसरी बार उनका मुंह तक देखने की इच्छा तक नहीं होती। उन्हीं के साथ हमें जीवन भर के लिए बाँध दिया जाता है—केवल इसलिए

कि वे पसन्द कर लेते हैं। हमारे मन में उनके लिए चाहे जैसी भावनायें हों।*

निशा के हृदय का यह आक्रोश—यह भाव उसे महान क्रान्तिकारिणी का रूप दे सकता था, किन्तु वह यह सोच कर ही रह जाती है, उस पर अमल नही कर पाती। जबकि 'उलझी लकीरें' की पात्रा रश्मि साहस की जाज्वल्यमान प्रतिमा है। निशा तो वरों द्वारा अस्वीकृत होकर निराश हो जाती है † जैसे उनके निर्णयों पर ही स्वयं का भाग्य छोड़े बैठी हो किन्तु रश्मि वर महोदय द्वारा पसन्द कर लिये जाने पर भी स्पष्ट कह देती है—मुझसे विवाह करने से पूर्व अपनी सूरत शीशे में देखो। चाहे मैं आपको पसंद होऊं किन्तु आप मुझे कतई पसन्द नही अतः जा सकते हैं। ‡ यहाँ रश्मि का चरित्र विशेष आभा और ज्योति लिये हुए है। निशा जो सोचती है उसे कर नही पाती। रश्मि जो सोचती है उसे करके दिखाती है और उस घुटन से ऊपर उठ जाती है। दोनो की परिस्थितियाँ एक हैं—वरन् यों कहना चाहिए कि रश्मि की परिस्थितियाँ अधिक बिगड़ी हुई हैं, फिर भी वह उनपर हँसती है, संघर्ष करती है, और विजयी होकर जीना सीखती है—* उसका यह जीना शरीर सुख के लिए नहीं है, न ही उसमे मानसिक शान्ति अथवा सामान्य जीवन यापन की भावना है, अपितु यह जीवन सामाजिक चुनौती को स्वीकारने के लिए है—जबकि निशा उनमें स्वयं को नष्ट कर लेती है, और मानसिक व्यथाओं को जन्म देती है। विवाह न होने से—लड़कों द्वारा पसन्द न किये जाने से उसमें दीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है, उसे लगता है कि अब जीवन कुछ नही है—सब कुछ ठण्डा है। जीने की इच्छा श्मशान में जीने

---

* अभिशप्ता : डा. प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ १०-१५

† 'जब एक दो स्थानों से मेरे विवाह की चर्चा चली और लड़कों ने मुझे देखकर अस्वीकृत करदिया, तो मैं निराश हो गई'।

—अभिशप्ता : डा. प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ २२

‡ उलझी लकीरें : राजेन्द्र मोहन अग्रवाल पृष्ठ ८९

* वही, पृष्ठ ९६-१२०

की इच्छा के समान है । * और इसी अन्तर्द्वन्द्व से संघर्ष करते हुए वह
दह जाती है—कैंसर का रोग हो जाता है—जन्म भर के लिए, आजीवन
के लिए और उसी में वह अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिनने लगती

निशा के चरित्र में एक निरीहता की भावना है, असहायता
है, । रश्मि की तरह वह पुरुष वर्ग को चुनौती नहीं दे पाती, न
प्रत्यक्ष साहस ही कर पाती है । मन में लानी सोचने रहना और
उसे क्रियात्मक रूप देना और बात है । निशा और रश्मि इन्हीं दो
अटकी हुई है । निशा का बिन्दु प्रथम है जो मानसिक उत्ताप को
और रश्मि का बिन्दु दूसरा है जो उसको शान्ति देने के साथ ही
सीख डालने वाली का रूप दिला देता है । निशा के सम्मुख र
महान है, शक्ति पुञ्ज है और आधुनिक नारी की पथप्रदर्शिका है ।

फिर भी अन्य नारियों की तुलना में निशा का साहस अद्वि

'अन्धी दृष्टि' की पात्रा 'दीप्ति' को यदि ईश्वर ने आँखें
'अभिशप्ता' की पात्रा 'निशा' को ईश्वर ने रूप नहीं दिया है
प्रदत्त इन अवगुणों को— अवशताओं को मूक होकर झेल रही
है—ईश्वर द्वारा उसे सबकुछ प्राप्त है, अतः मानव कृत अ
प्रतिरोध कर लेती है, किन्तु निशा क्या करे, किस मुह से पुरु
करे । जैसे 'उलझी लकीरें' की रश्मि पुरुष से कह देती है कि
में देखिये', उसी तरह यदि कोई उससे भी ऐसा ही कह दे
इस अभिशाप को मेटने में वह असमर्थ है, विवश है, अत
और सकेत करता है अथवा उपहास उड़ाता है तो उस
बीध जाता है । वह इस तरह कराहती है, कि ऊपर बो
सिसक नही पाती ।

इसी की वेदना सालते-सालते निशा कैंसर को निमंत्रण
से ऊब गयी है । ईश्वर द्वारा दिये गये अभिशाप से ऊब
... आनन्द नहीं मिलता, वह उसके मन को गुदगुद
... है । समाज में यदि

अपना भी लिया—उससे विवाह भी कर लिया, फिर भी,...फिर भी, आगे की सभावनाएँ उसे कचोटती हैं। वह विवाहित रूप की कल्पना अपनी चाची के जीवन को देखकर करती है। वह भी उसी की तरह कुरूपा थी। उनके लगभग एक दर्जन सन्तानें हैं और वे सब अपने [माता-पिता पर पड़ी थीं। सब बच्चे काले, कुरूप और बड़े दाँतो वाले थे। यदि उसका विवाह हो गया होता तो निशा के भी ऐसी ही बच्चे होते—काले-कुरूप बेढंगे—और इस रूप की निशा कल्पना भी नहीं कर सकती थी, जो विवाह के बाद का अनिवार्य परिणाम था।*

अतः निशा की बेचैनी एक ओर यदि पुरुष-समाज द्वारा दी गयी है तो दूसरी ओर जो मुख्य है, ईश्वर प्रदत्त है। एक ओर निशा जीना चाहती है, तो दूसरी ओर जीना नहीं चाहती। कैंसर से प्राप्त पीडा का अनुभव करके वह चाहती है या तो शीघ्र अच्छी हो जाये, या इस पीडा से सदा को छुटकारा पा ले। सैंकड़ो डाक्टरों को दिखाया जाता है, उसके पिता पैसा पानी की तरह बहाते हैं, पर उसके अन्तर की भावना 'जीकर क्या करूँगी' उसे अच्छी नहीं होने देती, और वह मृत्यु की गोद में बढ़ती रहती है।†

यह है डा० प्रतापनारायण टण्डन के चरित्र विकास की कला का प्रौढतम रूप, जिसमें पात्रों के बाह्य रूप और आचरण के प्रत्यक्ष यथार्थ से परे मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों को यथार्थ रूप से चित्रित किया गया है। फ्लावेयर, दादे, और मोपासा की तरह लेखक ने मनकी विभिन्न प्रवृतियों से अपने उपन्यास के पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया है। डा० गणेशन ने एक स्थान पर लिखा है—"प्रायः व्यक्तिवादी उपन्यासों में व्यक्तियों के सर्वांगीण रूप का परिचय नहीं मिलता, किसी एक विशेष मनोवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। विशेषकर हिन्दी के व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्र प्रायः यौन मनोवृत्तियों की किसी विकृति से असाधारण तक पहुँच जाने वाले हैं। सैक्स की कुण्ठा के अतिरिक्त और भी कितनी ही मनोवृत्तियाँ हैं, इस बात की ओर लेखकों ने ध्यान नहीं

* अमिताभा : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ४४

† वही

दिया है।* एक दूसरे स्थान पर पुनः कहा गया है 'हिन्दी के उपन्यासों में मूल प्रवृत्तियों के विकास पर बहुत कम संकेत किया है; जिन उपन्यासों में मूल वृत्तियों की चर्चा हुई भी है, उनमें भी केवल सेक्स सम्बन्धी वृत्तियों का विवेचन किया गया है। हिन्दी में 'शेखर' ही एक ऐसा उपन्यास है कि जिसमें मूल वृत्तियों के क्रमिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।† इस क्रमिक विकास में डा० गणेशन ने तीन प्रवृत्तियाँ बतायी हैं, अहम्, भय और सेक्स,‡ किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन के इस उपन्यास में यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और भी सूक्ष्मता को लेकर है। 'शेखर' में यौन आकर्षण की चरम सीमा तक दिखायी गई है, किन्तु 'अभिशप्ता' में भी यौन आकर्षण है, लेकिन इस तरह कि अधिक उथल-पुथल न मचाये। निशा के चरित्र में जो अहं भावना है, वह शेखर के व्यक्तित्व को उससे काफी ऊँचा उठा देती है। निशा जानती है, वह कुरूपा है; उसका यौवन विवाह के लिए पुकार कर रहा है, विवाह होने पर माता-पिता एक बहुत बड़े उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेंगे, फिर भी यह उसका अहं है कि [वर के सामने खद्दर की सफेद धोती पहन कर—बिना मेकअप के सादे लिबास में जाती है और किसी ऐसे कार्य को करने को, अथवा ऐसे प्रश्न का उत्तर देने को तत्पर नहीं है जो उसकी दृष्टि से हेय हो। उसका अहं ही अखिल को इतनी बुरी लताड़ दिलाता है।

इसके साथ ही उसमें भय है—मरने से भय। माता-पिता के दुख से वह दुखी है और कैंसर से भयभीत। उसके त्राण का कोई मार्ग नहीं सूझता और इसी भय में वह दुबली होती जा रही है, और कृश होती जा रही है—चिन्ता जो लगी हुई है।

युवावस्था की यौन वृत्ति तो उसमें स्वाभाविक ही है। नारी का पुरुष के प्रति जो अज्ञात आकर्षण होता है—उसके सान्निध्य से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं के कई रूप इसमें मिल जाते हैं। निशा भी इस वृत्ति में बह जाती है। वह जानती है कि अखिल का प्रेम उसकी दीदी अपना भोग्य समझती है,

---

* हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. गणेशन, पृ. २४४

† वही, पृष्ठ २६६-२७०

‡ वही, पृष्ठ २७०-२७२

और जब वह प्रेम प्रदर्शन करता है, तो उसे अच्छा नहीं लगता, फिर भी उसके आकर्षण को मन से निकाल नहीं पाती, जितना सोचती है अखिल के विषय में न सोचे, उतना ही उसके और निकट पहुँचती जाती है, और एक दिन अन्धेरे बाग में फूल तोड़ते""समय। शार्लटब्रांटी के उपन्यास 'जेन आयर' की तरह 'अभिशप्ता' में नायिका एक कुरूपा स्त्री है। 'जेन आयर' में भी न तो कोई सुन्दर स्त्री है और न कोई छैल-छबीला युवक। उसमें कुरूप जोड़े के रोमांस को आधार बनाया गया है। इसकी नायिका रोम-रोम से स्त्री है—कठपुतली नहीं है। किन्तु एक बात में डा० प्रतापनारायण टण्डन का उपन्यास 'अभिशप्ता' उससे काफी आगे है। शार्लट ब्रांटी का उपन्यास नायक विहीन नहीं हो पाया—नायक चाहे कुरूप ही सही, है अवश्य। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'अभिशप्ता' में नायक तो है ही नहीं, केवल नायिका का ही चित्रण है। इस दृष्टि से 'अभिशप्ता' उपन्यास 'जेन आयर' से काफी आगे बढ़ गया है।

'वासना के अंकुर' के प्रधान पात्र गंगा और रमेसुर भी सैक्स की वृत्ति से अप्रभावित नहीं हैं। इस उपन्यास में निम्न वर्ग के लोगों का उन्हीं की भाषा शैली में चित्र खींचा गया है। रमेसुर परिस्थितियों के प्रवाह में बहता जाता एक साधारण श्रमिक है, जो अनुभवों की पिटारी साथ में लिये इधर-उधर चक्कर खा रहा है। जार्ज इलियट की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन भी केवल प्रेक्षक ही नहीं, मनोवैज्ञानिक तथा नीतिज्ञ भी है। जैसे जार्ज इलियट अपने पात्रों का सूक्ष्म निरीक्षण करती है, उसी तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन भी अपने पात्रों के पीछे नेपथ्य में से उनका विश्लेषण करते हैं, पर इस खूबी से कि पात्र अकेला ही दिखायी देता है—नचाने वाला कहीं नहीं दीखता। इसी प्रकार जार्ज इलियट के उपन्यास 'दि मिल ऑन दि फ्लॉस (The Mill on the Floss) की तरह 'रुपहले पानी की बूंदें' में स्वभावों की असमता का चित्रण किया गया है। The Mill on the Floss के पात्र मैगी को कौन समझता है, कौन नहीं समझता, यह बताने में उपन्यासकार ने कई गहरे मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार 'रुपहले पानी की बूंदें' में प्रकाश के चरित्र पर भी कई मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है, दुःख और संवेदना की दशा में भी, उसके मानसिक ऊहापोह में हँसाने का प्रयास

किया गया है—विषय परिवर्तन किया गया है। इसी प्रकार 'वासना के
मे भी रमेसुर की मानसिक ग्रंथियों की ऊहापोह दर्शनीय है।

रमेसुर माता-पिता हीन होकर कलकत्ते नौकरी की तलाश में जा
और एक मध्यम श्रेणी के दुकानदार की दुकान पर सेल्समैन बन जाता
यहीं उसका दुकानदार की लड़की प्रतिमा के प्रति झुकाव होता है। यहाँ
रमेसुर का चरित्र रिचर्डसन के उपन्यास 'पैमिला' से सादृश्य रखता है
अन्तर यही है कि रमेसुर पुरुष है और पैमिला—नायिका—स्त्री। जैसे रमेसु
दुकानदार के यहाँ नौकरी कर रहा है, उसी प्रकार रमेसुर भी। उधर पैमिल
को मालिक प्रलोभन देता है, इधर रमेसुर को मालकिन की पैमिला। पैमिला
को भी नौकरी छोड़नी पड़ती है और रमेसुर को भी? मालिक की नौकरी
छोड़कर जाना पड़ता है। हाँ रमेसुर के चरित्र का यह अंग फील्डिंग के उप-
न्यास रायजोन्स से काफी-मिलता जुलता है। जैसे मिस्टर ओलवर्दी रायजोन्स
से रुष्ट होकर उसे घर से निकाल देते हैं क्योंकि वह पड़ोसी की पुत्री सोफिया
से प्रेम करने लगा था, उसी प्रकार 'बाबू जी' (दुकानदार) रमेसुर को घर से
निकाल देते हैं, क्योंकि वह उनकी पुत्री प्रतिमा से प्रेम करने लगा था। घर से
निकल कर दोनों ही काफी अनुभव करते हैं; रायजोन्स का बाद में विवाह
सोफिया से ही हो है, पर और रमेसुर का विवाह गंगा से हो जाता है।

रमेसुर में मानसिक दुर्बलताएँ काफी हैं, उसका निश्चय दृढ़ नहीं रह पाता।
यही कारण है, वह बार-बार गन्दे लोगों के समाज में जाकर अपनी सैक्स की
भूख को शान्त करता है।

इधर गंगा भी सैक्स की कुंठा से ग्रस्त है। फिर भी रमेसुर के बाहर होने पर
कभी उसके दमन का उपाय नहीं करती। हां जब गर्मी की बीमारी से उत्पन्न
छूत के घावों को लेकर रमेसुर लौटता है और उससे संभोग की इच्छा करता
है तो वह मना नहीं कर पाती, और उसकी इच्छा पूर्ति करती है।

रमेसुर और गंगा, दोनों ही परिस्थितियों के प्रवाह में बहते जा रहे हैं।
उनका मानसिक धरातल अपने ढंग का है। उनके चरित्र को संभालने का
प्रयास नहीं किया गया है। यदि रमेसुर संभलता है तो स्वयं ठोकर खाकर—
देवी सी गंगा को हमेशा के लिए खोकर।

वस्तुतः हर लेखक का अपना एक दर्शन होता है। अपने कुछ विचार होते

हैं, जिनको प्रकट करना उपन्यास में यदि अनिवार्य नहीं है तो निषिद्ध भी नहीं है। दर्शन और मनोविज्ञान उपन्यास में निषिद्ध नहीं है, बहुत कुछ आवश्यक है; व्यक्तिवादी उपन्यासों में भी अनिवार्य है। पर वह जब परोक्ष रूप में न होकर प्रत्यक्ष रूप में पात्रों पर लाद दिया जाता है तो पात्र लेखक का पिट्ठू बन जाता है। दास्तायवस्की के प्रायः सभी मुख्य पात्र इस दोष के कारण ही अस्वाभाविक लगते हैं। डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'रुपहले पानी की बून्दें' का पात्र प्रकाश लेखक के विचारों के बोझ से इतना अधिक दब गया है कि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रहता। मात्र लेखक का पिट्ठू अथवा विचारों को सोचने वाला दिखायी देता है। उसमें यह दोष बहुत खटकता है।

फिर भी उनमें ऐसे दोष कम हैं, अन्य उपन्यासों में यही विचार कथा को गतिशीलता देते हैं तथा चरित्रों को समझने में सहायता करते हैं। कहीं-कहीं अपार दार्शनिकता और मनोविज्ञान के पृष्ठ के पृष्ठ बोझिल करने को होते हैं कि लेखक कुशलतापूर्वक उनका निराकरण कर देता है। स्माटलेट के उपन्यास 'हम्फी लिंकर' की तरह 'रुपहले पानी की बून्दें' में भी पात्रों का चरित्र विकास कथानक से नहीं, भावनाओं से होता है—क्योंकि दोनों ही उपन्यासों में कथानक बहुत कम है।

लेखक के पात्र नपे तुले नियमों पर आधारित नहीं है, सभी का विकास अलग-अलग है, और रूप की दिशायें भिन्न-भिन्न है। इनको समझने के लिए अनुभव ही उपयोगी है, वातावरण तो केवल पूर्व-पीठिका मात्र है।

कथोपकथन

स्थूल रूप से, किसी वर्णनात्मक कृति में पात्रों की बातचीत के लिए कथोपकथन शब्द प्रयुक्त होता है। प्रारम्भिक उपन्यासों में ऐसा कोई प्रयत्न नहीं दीखता कि पात्रों का वार्तालाप या सवाद वैसा ही चित्रित हो, जैसा सामान्य जीवन में पाया जाता है। सामान्यतया उसमें स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता ही मिलती है। बाद में, मुख्यतः यथार्थवादी उपन्यासों में गम्भीर पात्रों की बोल-चाल की भाषा वास्तविक जीवन के निकटतम मानी जाने लगी। किन्तु

एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कथोपकथनों का रूप ऐसा सामान्य भी न हो कि उनमें स्वाभाविकता या प्रभावोत्पादकता ही न रहे। इसलिए संवाद-योजना में कलाकार अपने ढंग से भी उसका रूप निर्धारित करता है।

कथोपकथनों की सफलता यही है, कि वे आवश्यक गुणों से युक्त हों। उपयुक्तता तथा अनुकूलता उनके लिए सर्वप्रथम आवश्यक गुण है। यदि और उपयुक्त कथन किसी विशेष स्थल पर उपयुक्त होने से चमत्कार उत्पन्न कर देता है तो अनुपयुक्त स्थान पर आने से कथानक की गत्यात्मकता को भी शिथिल कर देता है। साथ ही यह आवश्यक है कि उनमें एकता, संक्षिप्त उपयुक्तता तथा व्यापक दृष्टि हों। और यह भी आवश्यक है कि वह विविध पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हों, एक और पुरुष के मुंह से ही ओजात्मक कथन प्रभावशाली सिद्ध होंगे; अन्यथा चरित्र विकास की दृष्टि से उनका महत्व नहीं होगा।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के कथोपकथन इसके अपवाद नहीं हैं। 'रीति' में रीता और रमेश पर प्रेम का नशा चढ़ता जा रहा है, दोनों एक दूसरे से वार्तालाप करना चाहते हैं, पर बातचीत करते हृदय और पैर काँपते हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में एक दिन वार्तालाप आरम्भ होता है।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मैंने धीरे से पूछा।

"रीता।" उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

मैं चुप हो गया और एक विचित्र सी अनुभूति अपने में जगती पाने लगा।

"और आपका ?" सहसा उसने आधी आँख मेरी ओर उठाकर पूछा। उसकी बात का जवाब देने से पहले ही मैं वहाँ से हट गया।

यह हमारे प्यार का पहला दिन था।*

कथोपकथन की उपयुक्तता का सबसे अच्छा उदाहरण रीता की मृत्यु होते समय के कथोपकथनों में दिखायी देता है। यहाँ रीता और रमेश का वार्तालाप कथानक में चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। रीता मृत्यु की घाटी की ओर बढ़ रही है, रमेश का हृदय उसकी मर्मान्तिक वेदना को देख कर कसक रहा है।

---

* दे. रीता : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २७

"रीता........" मैंने भर्राई हुई आवाज में उसके कान में कहा, "तुम घबराओ नहीं........अब मैं आ गया हूँ....मैं, रीता....अब तुम बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी..."

मैं कुछ नहीं कहना चाह रहा था। रीता की दयनीय स्थिति मेरी छाती फाड़ रही थी और मेरे मुह से अचानक ही यह सब निकला था।

लेकिन इस बार उसकी निगाह से निगाह मिलाते ही मैं काँप उठा। वह कैसी दृष्टि थी—एक दम अपरिचित सी !

"रीता ! रीता !" मैंने घबड़ाकर कहा—"इधर देखो........मुझे पहचानती हो ? बोलो....इधर देखो...."

अब तक रीता एक शब्द भी नहीं बोली थी। अब उसने बड़े कष्ट से अपना हाथ उठाया; मानो मुझे सान्त्वना दे रही हो और धैर्य न खोने को कह रही हो, और फिर बड़ी तकलीफ के साथ मुझसे बड़ी धीमी आवाज में कहने लगी—"यह मेरा आखिरी वक्त है। आप मेरे लिए जिन्दगी बरबाद न कीजियेगा। आप....आप....अपनी...."

वह बड़ी पीड़ा से बोल रही थी। मैं उसके अन्तिम समय में बोले आखिरी शब्द सुनना चाहता था, परन्तु वह चेष्टा करने पर भी और कुछ न कह सकी।

"कहो,कहो....रीता....बोलो....!" मैंने उसके मुँह के और भी निकट होकर बहुत ही बेचैनी और अधैर्य के साथ पूछा, "रीता कहो, तुम क्या कहना चाहती हो ?"

उसका कण्ठ सूख रहा था * * * उसने बड़ी कठिनाई से दो घूट पानी अपने गले से नीचे उतारा। मैंने उसका सिर धीरे से अपनी गोद में रख लिया, वह कराहती हुई टूटे-फूटे शब्दों में कहने लगी, "....आप....आप....अपनी.... शादी कर लीजियेगा...."*

यहाँ अन्तिम वाक्य चामत्कारिक दृष्टि से बहुत उपयुक्त है और इस कथोपकथन में वातावरण की अनुकूलता है। 'आप अपनी शादी कर लीजियेगा' वाक्य

* रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ, ८६-८८

रमेश को ही नही पाठकों को भी जैसे आसमान से गिरा देता है। यह नारी के त्याग और बलिदान की सीमा है कि जिसके लिए वह स्वयं अपने प्राण दे रही है, मरते समय तक चाहती है कि उसका प्रेमाराध्य सुखी रहे। भाषा में कसावट है और तथा एक दूसरे से एकत्व है।

संक्षिप्तता तथा मनोवैज्ञानिकता—कथोपकथन का संक्षिप्त होना उसकी प्रभावात्मकता में वृद्धि करता है तथा वे परिस्थितियों का परिचय देने में भी सफल सिद्ध होते हैं। अतः कथोपकथन में स्वाभाविकता के साथ ही संक्षिप्तता होना भी आवश्यक है। कलात्मक रूप के परिवर्धन के लिए यह भी जरूरी है कि कथोपकथन मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता को लिए हुए हों। इससे कथानक का .लात्मक रूप गठन होता है, और कलाकार की प्रतिभा का पता चलता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास मनोविज्ञान की दृष्टि से हेय नही हैं। उनके उपन्यासों में वर्णित कथोपकथन संक्षिप्तता और मनोवैज्ञानिकता की सीमा का परिलंघन नहीं करते। 'रुपहले पानी की बूंदें' में अचला और प्रकाश के वार्तालाप में ये गुण मिल जाते हैं। अचला मृत शिशु को जन्म दे चुकी है और प्रकाश उसे मिट्टी की गोदी में सदा के लिए सुला आया है। अचला का मातृत्व उससे छिन गया था। गालो पर वेदना मिश्रित चिकनाई, कराह की पीड़ा से सिकुड़े पतले ओंठ, और उनपर लहराती पीड़ा के रूप में कृत्रिम, जर्जर मुस्कुराहट देख कर प्रकाश कुछ समझ ही न पाया क्या कहे। अन्त में अचला ही कहती है—

"तुमने कल से कुछ खाया है या नहीं ?" अचला ने धीमी आवाज में पूछा—"भूखे मालूम हो रहे हो, कमजोर।"

मैं जैसे ऊपर से गिर पड़ा। अचला के भोले प्यार पर मुझे दया आई। इस हालत में भी वह मेरी खाने पीने की चिंता में व्याकुल थी।

"मेरे खाने की फिक्र न करो," मैंने कहा— "तुम अपना ख्याल रखो।"

अचला ने यह सुन कर एक लम्बी साँस खींची और फिर एक फीकी मुस्कान हँस दी।

इस संक्षिप्त कथोपकथन ने ही अचला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निखार दिया है। अचला के शिशु के मर जाने पर भी नारी की स्वाभाविक ही परिस्थितियों

की कुशलक्षेम की चिन्ता इसमे अच्छी चित्रित हुई है। उसके वाक्य ने ही इतना सब कह दिया जो बिना कथोपकथन के कई पृष्ठों में नहीं समाता। प्रकाश के कथन को सुनकर अचला एक लम्बी साँस खींचती है, इसलिये नहीं कि उसका पति कितना ध्यान रखता है, अपितु इसलिए कि प्रकाश का कथन उसके सहज मातृत्व के गुण के विपरीत था, उसकी भावनाओं के प्रतिकूल था; फिर भी वह उसका पति था, अतः वह अपनी सहनशक्ति का परिचय देते हुये एक फीकी मुस्कान हँस देती है, पति के संतोष के लिए।

बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता उस समय और बढ़ जाती है जब कोई अनजाना मेहमान घर पर आने वाला होता है। उस दिन बालक अपनी क्रीडाएँ छोड़ कर उसी के प्रति जिज्ञासा रखने लगते हैं। 'अभिशप्ता' में निशा को देखने के लिए आने वाले मेहमानों के बारे में जानने की स्वाभाविक उत्सुकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण देखिये।

"..............मेरी छोटी बहन बेबी दौड़ती-दौड़ती स्कूल से वापस आ रही थी, अपने जीजा जी को देखने की जल्दी में।

"अभी तक नहीं आये ?" उसने कुछ हाँफते हुए पूछा।

"आते ही होंगे।" भाभी ने कहा—"तू जल्दी से फ्राक बदल ले।"

"कौन-कौन आ रहा है ?" उसने फिर अपनी उत्सुकता प्रकट की।

"लड़का आ रहा है, उसकी माँ आ रही है, बहन आ रही है, और लड़के का छोटा भाई आ रहा है।" भाभी ने विस्तार से समझाते हुए कहा—"तू फ्राक बदल कर मीनू पप्पू को भी ठीक से तैयार करा दे।"*

बेबी की समझ में कुछ आया या नहीं, यह तो कहा नहीं जा सकता, किन्तु इतने विस्तार से सुनने के बाद उसकी उत्सुकता अवश्य शान्त हो गयी थी, इसीलिए उछलती-कूदती अन्दर चली गयी। यह है बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता और चांचल्य।

एक दूसरा उदाहरण 'अन्धी दृष्टि' में लिया जा सकता है। बच्चों का

---

* दे० अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११

[illegible] में कथोपकथन द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने का स्वाभाविक ढंग देखिये—

आजकल घर के सब बच्चों को दीदी के साथ खिलवाड़ करने का अच्छा बहाना मिला है।

अमोल पूछता है—'दीदी ! तुम्हारी मामी का मुँह कैसा ?"
और दीदी अपना मुंह बिचका कर कहती है 'ऐसा"।
विमल पूछता है—'तुम्हारे मामा का मुंह कैसा ?"
ऊषा पूछती है—"तुम्हारी मामी का मुंह कैसा ?"
उमा पूछती है—"तुम्हारे मामा का मुंह कैसा ?"

और बार-बार वह उसी प्रकार मुंह बना-बना कर जवाब देती है। उसका मुंह दर्द करने लगता है। और फिर जब कोई उससे पूछता है 'तुम्हारी अम्मा का मुंह कैसा ?' तो झुंझलाकर जवाब देती है—'मर जाओ !"*

यहाँ 'मर जाओ' कथन शिशु की स्वाभाविक मनोवृत्ति का परिचय देता है। बार-बार मुंह बिचकाने से छुटकारा पाने के लिए उसे यही अस्त्र अमोघ सिद्ध हुआ। शायद कभी किसी को इसका प्रयोग करते हुये सुन लिया होगा।

अब हम कथोपकथन के उद्देश्यों की ओर आते हैं। जैसा कि अब तक के पृष्ठों में हम देख चुके हैं, कथोपकथनों द्वारा कुछ विचारों को सजीवता देने में सहायता मिलती है। यहाँ तक कि किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन भी कथोपकथन द्वारा सरल हो जाता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में यह कमी खटकती है। सिद्धान्तों का प्रेक्षण विचारात्मक रूप से प्रस्तुत करने के कारण कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि उपन्यास न पढ़ कर हम कोई निबंध या लेख पढ़ रहे हों†। लम्बे-लम्बे विचारों के वर्णन पाठक के मन में ऊब पैदा कर देते हैं। हाँ 'दि उनवार कोव' में सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण कथोपकथनात्मक प्रणाली से हुआ है जो अत्यन्त प्रवाहमय एवं रोचक है। यही दिशा गुरुदत्त के उपन्यासों में भी है।

---

*अन्धी दृष्टि : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३६।
† रूपहले पानी की बूंदें : डा. प्रतापनारायण टण्डन।

फिर भी जहाँ तक कथोपकथनों के प्रयोग का प्रश्न है, उसमें डा० प्रताप-नारायण टण्डन के उपन्यासो के कथोपकथन सफल सिद्ध होते हैं।

१. कथानक का विकास करना—कथोपकन द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति मे वर्णित घटनाओं या दृश्यो में सजीवता लाता है और उनके सगठन से कथानक का विस्तार करता है।* उपन्यास में सामान्य रूप से लेखक वर्णनात्मक या साकेतिक आधार पर कलावस्तु का विकास करता है, परन्तु भिन्न-भिन्न पात्रो का पारस्परिक वार्तालाप कहीं-कहीं कथावस्तु के भावी विकास की दिशा का उद्घाटन करता है। इसके अतिरिक्त क्योंकि कथावस्तु में उपन्यास की प्रत्येक घटना किसी न किसी रूप मे विवरणबद्ध की जाती है, अतः उपन्यासकार के लिये यह कठिन हो जाता है कि वह प्रत्येक बडी या छोटी घटना को इस प्रकार का विस्तार युक्त रूप अनिवार्यतः प्रदान करता रहे।† कथोपकथन इस समस्या का निदान उपस्थित करता है। इसके द्वारा विस्तृत वर्णनों को सक्षेप मे वक्ताओं द्वारा कहला दिया जाता है, कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि दो वक्ताओं का पारस्परिक वार्तालाप कथावस्तु का अनेक घटनाओं का सांकेतिक परिचय भी प्रस्तुत कर देता है। 'रीता' में रमेश द्वारा मुन्नू से रीता के विषय मे पूछना, भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक घटनाओं तथा स्वभावों का चित्रण कर देता है। यथा—

मैं उस दिन बराबर उसी लड़की के बारे मे सोचता रहा और बुलाकर शाम को जब घर वापस आया तो मुन्नू को अपने पास बुलाकर उससे पूछा, "मुन्नू तुम्हारे घर कोई आया है ?"

"हाँ !" उसने जवाब दिया।

"कौन ;"

"ताऊ जी।"

"और ?"

"ताई जी।"

---

* हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २०९।

† वही।

तरीके से निकलना चाहिये कि उसमें कृत्रिमता मालूम भी न हो। एक तो तरीका यह हो सकता था कि कोई व्यक्ति उसका परिचय देते हुये कहता 'इनका नाम रमेश है..........' किन्तु इसमे ऐसा लगता है जैसे यह नाम बताने के लिये ही गढ़ा हुआ कथोपकथन है। किन्तु यहाँ मुन्नू के मुँह से नाम सुनकर ऐसा नहीं लगता। जब आस पास कई चाचा-मामा होते हैं तो बच्चे प्रायः भेद से उनके नाम के आगे चाचा-मामा आदिशब्द लगाकर उन्हें अभिहित करते हैं। एक ओर यह कथोपकथन जहाँ नामों का परिज्ञान कराते हैं, वहाँ कथानक के विकास में भी सहायक होते हैं। जब मुन्नू ताऊ जी द्वारा उसके विवाह के उपक्रम की सूचना देता है तो नायक रमेश को आगे कार्य विस्तार का अवसर मिल जाता है। उसकी प्रेम भरी आशा जड़ पकड़ती है, आगे के प्रश्न इसी बिन्दु को लक्ष्य करके किये गये हैं। 'रीता बोलती है या नहीं' पूछने का तात्पर्य अपने विषय में होने वाली चर्चा को जानना है। जिससे वह रीता के विषय में अपने मन्तव्य को जान कर आगामी कदम उठाये। साथ ही यह कथोपकथन चारित्रिक विकास की दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त है। इससे यदि रमेश और मुन्नू के स्वभाव का वर्णन मिलता है तो रीता के स्वभाव और विचार का भी परिचय मिल जाता है। यह कथोपकथन बताता है कि रमेश और मुन्नू में काफी घनिष्टता है, और रमेश को पतंगबाजी का भी शौक है। मुन्नू भी इसका अपवाद नहीं है। रमेश के विषय में मुन्नू से प्रश्न पूछने में रीता का रमेश के प्रति झुकाव स्पष्ट दिखायी देता है और जब मिठाई तथा टॉफी की बात रीता पूछती है, तो उसमें वह रमेश का अपने प्रति आकर्षण है या नहीं इसको जानना चाहती है। और जब मुन्नू मना कर देता है कि 'मिठाई टॉफी तो नहीं देते' तो इसका मन मुरझा जाता है लेकिन पतंग देने की बात से आशा का सूत्र मिल जाता है, कि अब न सही, देर से ही सही आकर्षण की संभावना है, क्योंकि परिचय तो बना हुआ ही है, किसी दिन मुन्नू मेरी बात कह ही देगा ; जो बाद में आने वाली घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः लेखक ने इस कथोपकथन द्वारा इतना अधिक कह दिया है, जिसको यदि कथोपकथन के अतिरिक्त दूसरी शैली से प्रस्तुत किया जाता तो काफी पृष्ठों का भार बढ़ जाता और जो नैकट्य, जो प्रभावोत्पादकता, जो रोचकता और जो प्रभावमयता उसमें आ पाई है, वह तब आ पाती अथवा नहीं, इसमें भी सन्देह है।

उसमें प्रवाहमयता या प्रभावोत्पादकता ही न रहे। इसलिए संवाद-
कलाकार अपने मन से भी उनका रूप निर्धारण करता है।

पकथनों की सफलता तभी है, जब वे आवश्यक गुणों से युक्त हों।
। तथा अनुकूलता उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक गुण हैं। यदि एक
कन कथन किसी विशेष स्थल पर उपयुक्त होने से चमत्कार उत्पन्न
है तो अनुपयुक्त स्थान पर आने से कथानक की संगठनात्मकता को
न कर देता है। साथ ही यह आवश्यक है कि उसमें एकता, शैलीगत
तथा रूपात्मक गठन हो। और यह भी आवश्यक है कि वह विविध
स्वभाव के अनुकूल हो, एक वीर पुरुष के मुंह से ही ओजात्मक
ावशाली सिद्ध होंगे; अन्यथा चरित्र विकास की दृष्टि से उसका महत्व
।।

प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के कथोपकथन इसके अपवाद नहीं
' में रीता और रमेश पर प्रेम का नशा चढ़ता जा रहा है, दोनों एक
ार्तालाप करना चाहते हैं, पर बातचीत करते हृदय और पैर कांपते हैं।
रिस्थितियों में एक दिन वार्तालाप आरम्भ होता है।
हारा नाम क्या है ?" मैंने धीरे से पूछा।
ता।" उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया।
त हो गया और एक विचित्र सी अनुभूति अपने में जगती पाने लगा।
र आपका ?" सहसा उसने आधी आँख मेरी ओर उठाकर पूछा।
न का जवाब देने से पहले ही मैं वहाँ से हट गया।

हमारे प्यार का पहला दिन था।[1]

पकथन की उपयुक्तता का सबसे अच्छा उदाहरण रीता की मृत्यु के
कथोपकथनों में दिखाई देता है। यहाँ रीता और रमेश का वार्तालाप
में चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। रीता मृत्यु की घाटी की ओर बढ़
मेश का हृदय उसकी मर्मान्तक वेदना को देख कर कसक रहा है।

---

1. रीता - डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २१

की कुशलक्षेम की चिन्ता इसमें अच्छी चित्रित हुई है। उसके वाक्य ने ही इतना सब कह दिया जो बिना कथोपकथन के कई पृष्ठों में नही समाता। प्रकाश के कथन को सुनकर अचला एक लम्बी साँस खींचती है, इसलिये नही कि उसका पति कितना ध्यान रखता है, अपितु इसलिए कि प्रकाश का कथन उसके सहज मातृत्व के गुण के विपरीत था, उसकी भावनाओं के प्रतिकूल था; फिर भी वह उसका पति था, अतः वह अपनी सहनशक्ति का परिचय देते हुये एक फीकी मुस्कान हँस देती है, पति के संतोष के लिए।

बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता उस समय और बढ़ जाती है जब कोई अनजाना मेहमान घर पर आने वाला होता है। उस दिन बालक अपनी क्रीडाएँ छोड़ कर उसी के प्रति जिज्ञासा रखने लगते हैं। 'अभिशप्ता' में निशा को देखने के लिए आने वाले मेहमानो के बारे में जानने की स्वाभाविक उत्सुकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण देखिये।

..................मेरी छोटी बहन बेबी दौडती-दौड़ती स्कूल से वापस आ रही थी, अपने जीजा जी को देखने की जल्दी में।

"अभी तक नही आये ?" उसने कुछ हाँफते हुए पूछा।

"आते ही होंगे।" भाभी ने कहा—"तू जल्दी से फ्राक बदल ले।"

"कौन-कौन आ रहा है ?" उसने फिर अपनी उत्सुकता प्रकट की।

"लड़का आ रहा है, उसकी माँ आ रही है, बहन आ रही है, और लड़के का छोटा भाई आ रहा है।" भाभी ने विस्तार से समझाते हुए कहा—"तू फ्राक बदल कर मीनू पप्पू को भी ठीक से तैयार करा दे।"*

बेबी की समझ मे कुछ आया या नही, यह तो कहा नहीं जा सकता, किन्तु इतने विस्तार से सुनने के बाद उसकी उत्सुकता अवश्य शान्त हो गयी थी, इसीलिए उछलती-फाँदती अन्दर चली गयी। यह है बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता और चांचल्य।

एक दूसरा उदाहरण 'अन्धी दृष्टि' से लिया जा सकता है। बच्चों का

---

* दे० अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १३

रमेश को ही नहीं पाठकों को भी जैसे आसमान से गिरा देता है। यह नारी
के त्याग और बलिदान की सीमा है कि जिसके लिए वह स्वयं अपने प्राण दे
रही है, मरते समय तक चाहती है कि उसका प्रेमाराध्य सुखी रहे। भाषा में
कसावट है और तथा एक दूसरे से एकत्व है।

संक्षिप्तता तथा मनोवैज्ञानिकता—कथोपकथन का संक्षिप्त होना उसकी
प्रभावात्मकता में वृद्धि करता है तथा ये परिस्थितियों का परिचय देने में भी
सफल सिद्ध होते हैं। अतः कथोपकथन में स्वाभाविकता के साथ ही संक्षिप्तता
होना भी आवश्यक है। कलात्मक रूप के परिवर्धन के लिए यह भी जरूरी है
कि कथोपकथन मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता को लिए हुए हों। इससे कथानक
कलात्मक रूप गठन होता है, और कलाकार की प्रतिभा का पता चलता है
डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास मनोविज्ञान की दृष्टि से हेय नहीं हैं
उनके उपन्यासों में वर्णित कथोपकथन संक्षिप्तता और मनोवैज्ञानिकता की सीमा
का परिलंघन नहीं करते। 'रुपहले पानी की बून्दें' में अचला और प्रकाश के
वार्तालाप में ये गुण मिल जाते हैं। अचला मृत शिशु को जन्म दे चुकी है और
प्रकाश उसे मिट्टी की गोदी में सदा के लिए सुला आया है। अचला का मातृत्व
उससे छिन गया था। गालों पर वेदना मिश्रित चिकनाई, कराह की पीड़ा से
सिकुड़े पतले ओंठ, और उनपर लहराती पीड़ा के रूप में कृत्रिम, अजर्र मुस्कु-
राहट देख कर प्रकाश कुछ समझ ही न पाया क्या कहे। अन्त में अचला ही
कहती है—

"तुमने कल से कुछ खाया है या नहीं?" अचला ने धीमी आवाज में
पूछा—"मुझे मालूम हो रहे हो, कमजोर।"

मैं जैसे ऊपर से गिर पड़ा। अचला के भोले प्यार पर मुझे दया आई।
इस हालत में भी वह मेरी खाने पीने की चिंता में व्याकुल थी।

"मेरे खाने की फिक्र न करो," मैंने कहा— "तुम अपना ख्याल रखो।"

अचला ने यह सुन कर एक लम्बी सांस खींची और फिर एक फीकी
मुस्कान हँस दी।

इस संक्षिप्त कथोपकथन ने ही अचला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निखार दिया
है। अचला के शिशु के मर जाने पर भी नारी की स्वाभाविक ही

की कुशलक्षेम की चिन्ता इसमे अच्छी चित्रित हुई है। उसके वाक्य ने ही इतना सब कह दिया जो बिना कथोपकथन के कई पृष्ठों मे नही समाता। प्रकाश के कथन को सुनकर अचला एक लम्बी साँस खींचती है, इसलिये नही कि उसका पति कितना ध्यान रखता है, अपितु इसलिए कि प्रकाश का कथन उसके सहज मातृत्व के गुण के विपरीत था, उसकी भावनाओं के प्रतिकूल था; फिर भी वह उसका पति था, अतः वह अपनी सहनशक्ति का परिचय देते हुये एक फीकी मुस्कान हँस देती है, पति के संतोष के लिए।

बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता उस समय और बढ़ जाती है जब कोई अनजाना मेहमान घर पर आने वाला होता है। उस दिन बालक अपनी क्रीडाएँ छोड़ कर उसी के प्रति जिज्ञासा रखने लगते हैं। 'अभिशप्ता' मे निशा को देखने के लिए आने वाले मेहमानों के बारे में जानने की स्वाभाविक उत्सुकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण देखिये।

..............मेरी छोटी बहन बेबी दौड़ती-दौड़ती स्कूल से वापस आ रही थी, अपने जीजा जी को देखने की जल्दी में।

"अभी तक नहीं आये ?" उसने कुछ हाँफते हुए पूछा।

"आते ही होंगे।" भाभी ने कहा—"तू जल्दी से फ्राक बदल ले।"

"कौन-कौन आ रहा है ?" उसने फिर अपनी उत्सुकता प्रकट की।

"लड़का आ रहा है, उसकी माँ आ रही है, बहन आ रही है, और लड़के का छोटा भाई आ रहा है।" भाभी ने विस्तार से समझाते हुए कहा—"तू फ्राक बदल कर मीनू पप्पू को भी ठीक से तैयार करा दे।"*

बेबी की समझ मे कुछ आया या नहीं, यह तो कहा नहीं जा सकता, किन्तु इतने विस्तार से सुनने के बाद उसकी उत्सुकता अवश्य शान्त हो गयी थी, इसीलिए उछलती-फाँदती अन्दर चली गयी। यह है बच्चों की स्वाभाविक उत्सुकता और चापल्य।

एक दूसरा उदाहरण 'अन्धी दृष्टि' से लिया जा सकता है। बच्चों का

---

* दे० अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११

"और ?"

"रीता जीजी।"

"रीता जीजी ?"

"हाँ रीता जीजी !" उसने जवाब दिया। "वही जो कल मुझे पकड़ने को दौड़ रही थीं।"

• मैं चुप हो कुछ सोचने लगा। मुझको खामोश देखकर वह कुछ समझाता हुआ-सा बोला—'अरे आप नहीं जानते ? वाह रमेश चाचा ! रीता जीजी लखनऊ से आई हैं। ताऊ जी कहते हैं, यहाँ उनका विवाह करेंगे।"

"रीता जीजी तुमसे भी बोलती हैं ?"

"हाँ बोलती क्यों नहीं हैं ?"

"क्या बात करती हैं तुमसे ?"

"मुझसे पूछती है, कि तुम्हारे यह रमेश चाचा कौन हैं, क्या करते हैं, कहाँ पढ़ते हैं, तुम्हें प्यार करते हैं या नहीं, कभी मिठाई या टॉफी देते हैं या नहीं।"

"तो तुम क्या जवाब देते हो ?"

"मैं कह देता हूँ कि मिठाई या टॉफी तो नहीं पर हाँ, जब कभी पतंग उड़ाते हैं तो मुझे पतंग की डोर जरूर दे देते हैं।" *

इस कथोपकथन मेंउपन्यासकार ने अनेक तथ्यों का समावेश कर दिया है। वाक्य छोटे-छोटे हैं, पर महान् गहराई को लिए हुए। अब तक रमेश उस युवती का नाम नहीं जानता था, जो उससे प्रेम करती है, किन्तु मुन्नू से एक दम यह भी कैसे पूछ ले कि वह लड़की कौन है जो तुम्हें पकड़ने आई थी, अतः रमेश उससे घुमा फिरा कर इस प्रकार पूछता है कि मुन्नू स्वयं उसी बात को कह देता है जिसे रमेश जानना चाहता है। मुन्नू को यह अस्वाभाविक भी नहीं लगता। रीता नाम जानकर रमेश की एक उलझन दूर हो जाती है जो कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक है। साथ ही अब तक पाठक 'मैं' नामधारी व्यक्ति के नाम से अनभिज्ञ था; जबकि उपन्यासकार आत्मकथात्मक प्रणाली में कथा लिख रहा है तो नायक का नाम दूसरे के मुँह से इस स्वाभाविक

* रीता : डा० प्रतापनारायण

तरीके से निकलना चाहिये कि उसमें कृत्रिमता मालूम भी न हो। एक तो तरीका यह हो सकता था कि कोई व्यक्ति उसका परिचय देते हुये कहता 'इनका नाम रमेश है..........' किन्तु इसमें ऐसा लगता है जैसे यह नाम बताने के लिये ही गढ़ा हुआ कथोपकथन है। किन्तु यहाँ मुन्नू के मुँह से नाम सुनकर ऐसा नहीं लगता। जब आस पास कई चाचा-मामा होते हैं तो बच्चे आयु भेद से उनके नाम के आगे चाचा-मामा आदिशब्द लगाकर उन्हें अभिहित करते हैं। एक ओर यह कथोपकथन जहाँ नामों का परिज्ञान कराते हैं, वहीं कथानक के विकास मे भी सहायक होते हैं। जब मुन्नू ताऊ जी द्वारा उसके विवाह के उपक्रम की सूचना देता है तो नायक रमेश को आगे कार्य विस्तार का अवसर मिल जाता है। उसकी प्रेम भरी आशा जड़ पकड़ती है, आगे के प्रश्न इसी बिन्दु को लक्ष्य करके किये गये हैं। 'रीता बोलती है या नहीं' पूछने का तात्पर्य अपने विषय में होने वाली चर्चा को जानना है। जिससे वह रीता के विषय में अपने मन्तव्य को जान कर आगामी कदम उठाये। साथ ही यह कथोपकथन चारित्रिक विकास की दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त है। इससे यदि रमेश और मुन्नू के स्वभाव का वर्णन मिलता है तो रीता के स्वभाव और विचार का भी परिचय मिल जाता है। यह कथोपकथन बताता है कि रमेश और मुन्नू में काफी घनिष्टता है, और रमेश को पतंगबाजी का भी शौक है। मुन्नू भी इसका अपवाद नहीं है। रमेश के विषय में मुन्नू से प्रश्न पूछने मे रीता का रमेश के प्रति झुकाव स्पष्ट दिखायी देता है और जब मिठाई तथा टॉफी की बात रीता पूछती है, तो उसमें वह रमेश का अपने प्रति आकर्षण है या नहीं इसको जानना चाहती है। और जब मुन्नू मना कर देता है कि 'मिठाई टॉफी तो नही देते' तो इसका मन मुरझा जाता है लेकिन पतंग देने की बात से आशा का सूत्र मिल जाता है, कि अब न सही, देर से ही सही आकर्षण की संभावना है, क्योंकि परिचय तो बना हुआ ही है, किसी दिन मुन्नू मेरी बात कह ही देगा ;जो बाद में आने वाली घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः लेखक ने इस कथोपकथन द्वारा इतना अधिक कह दिया है, जिसको यदि कथोपकथन के अतिरिक्त दूसरी शैली से प्रस्तुत किया जाता तो काफी पृष्ठों का भार बढ़ जाता और जो नैकट्य, जो प्रभावोत्पादकता, जो रोचकता और जो प्रभावमयता उसमें आ पाई है, वह तब आ पाती अथवा नहीं, इसमें भी संदेह है।

जग्गो का कलेजा मुह को आने लगता है। "आखिर कुछ तो पता चले, बात है, क्या बीमारी है। इस तरह से पहेलियाँ क्या बुझाना?"

'अम्मा...अम्मा जी," गंगा बताती है—"उन्हें बीमारी है गरमी की.... रह बीमारी है, खराब बीमारी जो गन्दी औरतों का साथ करने से हो है।....*

इस कथोपकथन में पूर्व वर्णित सभी सम्भावनाएँ स्पष्ट हो गयी हैं। रमे- (आने से गंगा और सहम गयी है, डरी-डरी सी रहती है, अपने को अपने समेटे हुए। उसकी सास जग्गो को सन्देह होता है कहीं बहू के कदम डग- तो नहीं रहे हैं, जो असमय पति के आने से सहम गई हो उसे सन्देह की उसके आचरण से लगती है। इस वार्तालाप में बहू के प्रति सास का जो सास बनने वाली प्रत्येक नारी का स्वाभाविक गुण है, अच्छी तरह त किया गया है। जग्गो बहू को बहला कर फुसला कर उसके पेट की उगलवाना चाहती है। सन्देहात्मक दृष्टि से पूछती है—'तुझे आजकल क्या ा है' और जब उसका उत्तर 'कुछ तो, नहीं है, सुनती तो सहानुभूति भर कर है, क्योंकि जग्गो के पास कोई प्रमाण नहीं है। शायद कुछ बता दे— भूति पाकर अपने हृदय का गुबार बता दे। अनुभवशीला सास होने के वह इस मनोवैज्ञानिक सत्य को अच्छी तरह जानती है कि विपन्नावस्था ानुभूति की दो शब्दावलियाँ भी मन के अन्दर का बाहर उगलवा लेने की ं रखती हैं। जग्गो का यह मनोवैज्ञानिक अध्ययन सफल होता है, जब भूति का स्वर पाकर गंगा का हृदय अपने मन की कह देने को आकुल हो है। चाहें उसका धारणा रूपी शीशा गंगा के 'अम्मा' शब्द रूपी पत्थर से ्र ही क्यों न हो जा रहा हो। जग्गो के आगामी कथोपकथनों में माँ के और वात्सल्य का चित्रण है, जो अपने बच्चे की कभी अनिष्ट-कल्पना ों कर सकता। उसकी बड़ी बीमारी को भी छोटी ही समझ कर मन को अप्रिय आशंकाओं से बचाता रहता है। मनोविज्ञान के साथ ही जग्गो और गंगा का चरित्र भी खूब उभरा है।

* दे. वासना के अंकुर : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५४-५५

गंगा के हृदय में पति के प्रति प्रेम है, उस प्रेम के ऊपर वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती है, किन्तु उस बीमारी के लिए वह क्या करे जो रमेसुर अपने साथ लाया है। अपने पति के 'कुटेवों' को दूसरे से कहे भी तो कैसे। उसके पति की इज्जत ही तो उसकी इज्जत है। इस कहने न कहने के बीच होने वाले उसके मानसिक संघर्ष–अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इन कथोपकथनों में सफल रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

दूसरी ओर रमेसुर के चरित्र पर भी यह प्रकाश डालता है। एक ओर यह कथोपकथन रमेसुर की बीमारी की घटना, दिल्ली से लौटकर आने पर सभी की चिन्ता का विषय बन जाने की घटना पर प्रकाश डालता है, तो दूसरी ओर रमेसुर का व्यक्तित्व भी खूब उभरा है। उसकी कई चारित्रिक विशेषताओं का अंकन है। इससे साफ पता चलता है कि रमेसुर अपने घर में सभी के प्यार का भोक्ता है, गंगा का अनन्य प्यार उसे प्राप्त है, फिर भी वह लम्पट है, कुसंगत में पड़ गया है, गन्दी औरतों का संग करता है....

सबसे बड़ी बात जो कोई भी उपन्यासकार बिना कथोपकथन के अपने उपन्यासों में समाविष्ट नहीं कर सकता, वह है, पात्रों का स्वभाव, उनका स्तर और वातावरण। ये तीनों बातें कथोपकथन द्वारा ही चित्रित की जा सकती हैं। पात्र कैसी भाषा बोलते हैं, इससे पता चलता है कि वे किस वातावरण में रहते हैं, उनका स्तर क्या है और कैसा स्वभाव है। कथोपकथन ही वह माध्यम है जिससे पात्रों का स्तर जाना जा सकता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में उनके रहन-सहन और वातावरण का अन्दाजा पात्रों के कथनों और भाषा-शैली से ही लगता है। यदि उपन्यासकार स्वयं अपने मुँह से कहे कि यहाँ नीचे तबके के लोग रहते हैं, जिनमें एक मध्यवर्गीय गंगा आ गयी है तो कुछ हास्यास्पद मालूम पड़ता है। फिर एक बार को मान भी लिया जाये तो उसके बाद अपने कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण भी तो चाहिये। कथोपकथन इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। अभी दिया गया कथोपकथन भारी गुरच भाषा का अच्छा नमूना है; इससे ज्ञात होता है कि गंगा में कुछ स्वाभाविक लिप्सता है। लेखक आस-पास के वातावरण का वर्णन वर्णनात्मक शैली में नहीं करता, अपितु पात्रों के वार्तालाप से ही आभास करा देता है कि उनके उपन्यास का अभिजात्य पात्र किस प्रकार के वातावरण में रह रहा है, और

ाले तू बाप है ? थू है तेरी औकात पर।" जग्गी ने कूंडे को दरवाजे ारा।

° ° ° °

जो ने अपने साथ मे कपड़ों का गट्ठर लिया और जाकर ज्यों ही नल ' को हाथ लगाया कि 'उई उई' कह कर रह गयी। धड़धड़ाती-धड़- वह ऊपर आयी और चिल्ला कर एक साँस में बोली—"देखो भाबी, रा हाथ जल के रै गया।"

से जल गया ?"

ारा बम्बा जला के रख दिया है चाची ने। अंगारे की तरह जल रहा : छाले पड़ गये मेरे हाथ में।"

ी को गुस्सा आ गया। बेलन को चकले पर से हटा कर आटे वाली रखने के बाद वह हाथ नचाती हुई उठी और चाची के घर के सामने : चीखना शुरू किया:—

र तो ये अटल्लू की माँ कैसी पवित्तर बनी है। बम्बे को ले आरे जलती लकड़ी से, जैसे हम लोगों को कोई छून परेज है ई नईं। '; दिन मैंरी कै ई रई थी कि बम्बा गरम था तो मैंने अकीन नई उसने अपनी आँख से बम्बा तपाते देखा था। मैंने ई टाल दिया। मैंने :ट वो लकड़ी बुझाने गई होगी, ऐसी कोई पागल थोड़े ई है जो ा के रख देगी, मगर............"

भाबी! मैंने बम्बा जलाया थोड़े ई था,' अटल्लू की माँ अपने दालान ो हुयी बोली—'वो तो मैंने देखा कि किसनू ने उसी हाथ से हग के धोया : से बम्बा छू लिया। तो मैंने क्या कि जरा आग से तपा दूँ।"*

° ° ° °

ा लम्बा कथोपकथन देने का तात्पर्य यही है कि इससे गंगा की मन- : सच्चा परिचय मिल जाए। इस निपट अशिक्षित वातावरण में यह दि गंगा पति की ओर इतना सोचती है, तो यह साधारण बात न

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

[illegible] के अंकुर : डा. प्र. म. [illegible]
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

होकर उसके असाधारण सतीत्व का द्योतक है। जिस घर के आस-पास सदा लड़ाई-झगड़े, आलोचना-प्रत्यालोचना तथा अन्धविश्वासो के मूर्खतापूर्ण फाँसों का चक्र चलता रहता हो—ऐसे निम्नवर्गीय लोगों के बीच रहने वालों का वातावरण किस प्रकार का है, तथा उसके पति रमेसुर का सम्पर्क किन लोगों से होगा यह इस लम्बे उद्धरण से सुस्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन के लिए यह कहना नितांत सत्य है कि इन कथोपकथनों की सहायता से वह अपने इच्छित वातावरण की सृष्टि कर सकता है, इसके लिए वह अन्य किसी माध्यम का आश्रय लेना नही चाहता।*

भाषा तथा शैली

डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों की भाषा और शैली पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भाषा का सैद्धान्तिक-व्याकरणिक पक्ष क्या है। भाषा के सैद्धान्तिक पक्ष के सम्बन्ध में यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा, कि सफल भाषा वही होती है जो उपन्यास की कथा, काल और पात्रों के अनुरूप हो। भाषा में अन्य गुणों के आविर्भाव के लिए सजग शब्दावली का प्रयोग और भावानुकूलता होनी चाहिए।† क्योंकि उपन्यास का भौतिक आधार भाषा ही है, अतः उसका सक्षम प्रयोग ही उपन्यासकार की कृति की सफलता है।

वस्तुतः एक उपन्यासकार अपनी कृति मे जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह दोहरे अर्थ में महत्व रखती है प्रथम तो वह उपन्यासकार के मन में कथा के वैचारिक स्वरूप को व्यक्त करती है, जिसके लिए उसके पास यही एक माध्यम होता है, और इसके द्वारा वह उसे पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ होता है और द्वितीयतः वह अपने उपन्यास मे जिन पात्रों की रचना करता है, अपने-अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व में वे भी पृथक् सत्ता से युक्त होकर अपने हृदय की विविध अनुभूतियों और भावनाओं की प्रतीति दूसरों को करा देते हैं।

* हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० टण्डन, पृष्ठ ८५।

† हिन्दी उपन्यास कला: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २३५

इस दृष्टि से डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों की भाषा पर विचार करते हुए यह तथ्य स्वतः सामने आ जाता है कि उनकी भाषा देश, काल और स्तर के अनुरूप है। उनके तीन उपन्यास 'रुपहले पानी की बूँदें' 'अभिशप्ता' और 'रीता' के पात्र मध्यमवर्गीय सामाजिकता की भूमि पर, शिक्षित समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं अतः इनकी भाषा सभ्य एवं सुसंस्कृत लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। उनमें भाषा का परिमार्जित रूप दिखायी देता है। 'रूपहले पानी की बूँदें' में जब लेखक सिद्धान्त विवेचन करने लगता है तो स्वतः भाषा का गम्भीर रूप सामने आ जाता है। उसका एक-एक शब्द चुना हुआ है। मृत्यु दर्शन के बाद मन पर छायी हुई गम्भीरता में उत्पन्न विचारों की भाषा का एक प्रौढ़ नमूना देखिये—

'जीवन में जो वस्तु सर्वप्रधान है, वह उसकी अनेकरूपता है। जीवन में जो पक्ष सुखकारी हैं, उनमें एक प्रबल आकर्षण शक्ति है। समय या गति के प्रभाव से वह शक्ति कम न हो जाये, इसलिए मनुष्य उसकी साज-सज्जा की ओर अधिक ध्यान देता है। वास्तव में उसका यही पक्ष सृजनात्मक अमूण्णता का प्रतीक है।' *

और जब वे प्राचीन परम्पराओं पर चोट करने लगते हैं, सौ सदी पुरानी सड़ी गली अन्धविश्वासों की लकीर पीटने वालों पर विद्रूप की हँसी हँसते हैं तो उनकी भाषा की यही गम्भीरता चुटीलापन धारण कर लेती है और वह ओज प्रधान हो जाती है। यथा—

'..................जनाब, इसीलिए मैं कहता हूँ कि अगर आप इस तरह से खुले आम इन परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर देंगे, तो आपकी मुसीबत हो जायगी। मैं इनमें विरोध रखता हूँ, मगर मैं इनके खिलाफ दूसरी तरह से काम करना चाहता हूँ। मैं उनकी लकीर जरूर पीटूँगा, मगर कुछ इस तरह से कि उनकी धज्जियाँ उड़ जायें। उनके चीथड़े उड़ें, ताकि उनके पागल समर्थक और हिमायती यह अंजाम देखकर रोयें, अपना सिर पीटें और हैवानों की तरह से चिल्ला कर खुद ही यह घोषित कर दें कि ये अंधपरम्परायें कुछ

---

१ रुपहले पानी की बूँदें : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४६।

की नहीं है, इनका जड़ से नाश होना चाहिये और अगर तुम उनको अहसास होने से पहले ही यह बात खुद कहने लगोगे, तो वे तुम्हारे खिलाफ बकेंगे, चीखेंगे और लताड़ेंगे, कि तुम्हारा पतन हो चुका है, तुम्हारी पीढ़ी निकम्मी है ...... और हमने अपने पुरखों से क्या सीखा है—किसी तरह जिन्दगी को ढोना; उन्होंने हमारे लिये क्या छोड़ा है—चरित्रहीनता की कहानियाँ ...... ।*

यहाँ लेखक की भाषा स्वाभाविक ओज से भर उठी है, और प्रवाहयुक्त हो गयी है। यहाँ पर लेखक भाषा के परिष्कार की ओर नहीं जाता। वह स्वाभाविक रूप से जो भी शब्द आते हैं—चाहें किसी भाषा के हों, प्रयोग करता जाता है।

काल्पनिक प्रसंगों का चित्रण करते समय लेखक की भाषा बड़ी प्रवाहपूर्ण एवं रोचक हो गयी है। उसने कथानक में प्राण डाल दिये हैं। शब्दों में ऐसी गति है—ऐसी व्यञ्जना है कि दृष्टि स्वतः आगे को फिसलती जाती है। किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़ती।

इस पर भी इन तीनों उपन्यासों की भाषा पर कथानक द्वारा निर्मित वातावरण की तरलता है। भाषा में अपार शक्ति है—मौत का सा सन्नाटा है, लेखक ने कोमल शब्दों का प्रयोग किया है, यदि कहीं ओजस्वी शब्द आ भी जाते हैं तो वे भी उसमें अपना स्वाभाविक गुण खोकर उसी में रंगे हुए मालूम पड़ते हैं। सारा वातावरण जिस प्रकार मौत के सन्नाटे से छाया हुआ है, उसी प्रकार भाषा भी शरद्काल की शान्त सरिता सी सन्नाटे में बही जाती है। उसमें उछल-कूद नहीं है।

'अन्धी दृष्टि' में बच्चों की प्यारी किलकन को शब्द देने का प्रयास किया गया है; उसमें एक मोहक सरस स्नेह व्याप्त हुआ है, प्रारम्भ में कोमल बाल्य शब्दावली का प्रयोग हुआ है। किन्तु जैसे-जैसे लेखक कथानक के साथ अस्पताल के रक्तपोर वातावरण में उतरता जाता है, वैसे वैसे भाषा में भी वैसी ही कठोरता आती जाती है। प्रारम्भ में बच्चों के मुख से निस्सृत कोमल-विकृत शब्दों का ही बालकों के अनुरूप लेखक ने प्रयोग किया है—जैसे मम (मर

---

* [illegible], डा० प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ १४३-१४४

आओ आदि। किन्तु भाग के अनुच्छेदों में रीति द्वारा पूर्ण तत्सम प्रयोग कराना, यह ठीक जंचता नहीं। स्वाभाविकता की तुला पर उतरता और लेखक की भाषा में दोष दिखायी देता है। •

'वासना के अंकुर' में निम्न वर्ग के व्यक्तियों का—अशिक्षितों का किया गया है। अतः यहाँ पर देहात के अनुरूप भाषा बनाऊ पन को लिये हुए है। अधिकतर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया अशिक्षितों का वातावरण है, अतः भाषा में भी स्थानीयता का रमेगुर तत्सम शब्दावली का प्रयोग करता है. किन्तु मुन्नू यही चली। यथा—

"अरे सनत सों हो ! रमेगुर आया है।"

अथवा—

"सिरीमान मन्तिरी जी महोदै" राधेमन बाबू, पंडो जी और आँख के इसारे से खड़े होकर कहना शुरू करते हैं—"मैं अपने जनता की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ, जो आपने किरपा पधार्ने की दया दिखायी।........"

यहाँ भाषा में ग्रामीणता की स्पष्ट छाप है। कृपा को कि पधार्ने, इशारे को इसारे आदि विकृत शब्द तद्भव शब्दावली क

संक्षेपतः डा० प्रतापनारायण टण्डन के सभी उपन्यासों सहज अर्थ को छिपाये हुए हैं, उनमें शब्दों की बोझिलता या मार नहीं है। वाक्य अनायास ही आगे को गतिमान होते भाषा पात्रों के व्यक्तित्व और स्तर के अनुरूप है। भाषा व्यास प्रधान है। समासों से जहाँ तक हो सका है, बचने है। वातावरण के अनुसार भाषा पर मनहूसियत-सी छायी भाषा में व्यंगों का रूप भी निखर आया है और यहाँ वह प्रभावकारी है। एक कुरूप वर का चित्रण देखिये—

"खुतरे कान और गुदे हुए चेहरे वाले लड़के जब स

पर रख कर ऊट-पटांग सवाल पूछना शुरू कर देते हैं, तो कैसा अजीब लगता है।" *

यहाँ भाषा की सजावट दर्शनीय है। वाक्य सीधा-सादा है, किन्तु कितना चुभता हुआ; एक-एक शब्द से लगता है, व्यंग बोल रहा है।

शैली—उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में अपनी कला का अद्भुत परिचय दिया है और शिल्पविधान तथा टेक्नीक की निराली छटा दिखायी है। उपन्यासों में कलात्मकता लाने के लिए लेखक ने नई-नई शैलियों का प्रयोग किया है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से शैली के अन्तर्गत वे सभी तत्व आ जाते हैं जिन्हें स्थूलतः भाषा तत्वों के अन्तर्गत रखा जाता है। परन्तु उपन्यास में शैली के विशेष अर्थ के अन्तर्गत कथावस्तु का नियोजन रखा जाता है और पात्र रचना आदि भी आ जाता है। इसलिए शैली का सम्बन्ध उपन्यास के भिन्न-भिन्न उपकरणों से होता है यद्यपि प्रथमतः वह कथातत्व और द्वितीयतः पात्र से सम्बन्धित है। †

अपनी कलम के जादू से लेखक ने 'उपन्यासों' में जिन भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग किया है, उनमें विवरणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्र और डायरी शैली, विश्लेषणात्मक शैली और कथोपकथनात्मक शैली का प्रयोग मुख्य है।

'रीता' 'रुपहले पानी की बून्दें' और 'अभिशप्ता' में आत्मकथात्मक शैली उत्तम पुरुष—'मैं' के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस शैली का अधिक प्रचलन इसलिए नहीं हुआ था, क्योंकि इसमें लिखने की स्वतन्त्रता नहीं रहती, सीमा का संकोच हो जाता है। आस-पास की घटनाओं को छोड़ कर आत्मकथा के माध्यम से ही वर्णन करना पड़ता है, किन्तु डा. प्रतापनारायण टण्डन ने अपने उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग करके इसका अपवाद प्रस्तुत कर दिया है। जैनेन्द्र कुमार का 'कल्याणी' नामक उपन्यास भी इसी शैली में लिखा गया है, परन्तु इस उपन्यास की विशेषता यह है कि आत्मकथात्मक शैली में कथा प्रस्तुत किये जाने पर भी कथा कहने वाला प्रमुख पात्र नहीं है। इसी प्रकार 'रुपहले

* अभिशप्ता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ६

† हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २१८

पानी की बून्दें' में आत्मकथा कहने वाला प्रकाश भी प्रमुख पात्र नहीं है। लेखक के उपन्यासों की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसका प्रत्येक उपन्यास नायक प्रधान न होकर नायिका प्रधान है। और 'अभिशप्ता' तथा 'अन्धी दृष्टि' में तो नायक का आदि से अंत तक कहीं जिक्र ही नहीं है। केवल नायिका के ही सशक्त धरातल पर खड़ा उपन्यास अत्यन्त प्रभावशाली है। हाँ 'वासना के अंकुर' में अवश्य नायक रमेसुर का चरित्र सशक्त बन पाया है। किन्तु 'पहले पानी की बून्दें' के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका पात्र प्रकाश एक अनुभूति करने वाला तटस्थ दर्शक मात्र है, जो प्रत्येक के इशारे पर कार्य करने के लिए यन्त्रवत दौड़ जाता है।

आत्मकथात्मक शैली का दूसरा रूप प्रथम पुरुष का होता है। इसमें एक पात्र को केन्द्रित करके कथानक का विकास किया जाता है। 'अन्धी दृष्टि' में रीति को केन्द्र मान कर कथाशिल्प का विकास 'वह' की शैली में किया गया है। किन्तु 'वासना के अंकुर' में शैली फिर परिवर्तित हो गयी है। यहाँ जैनेन्द्र की तरह उनके उपन्यासों की कथा का विकास भी त्रिकोणात्मक सूत्र पर होता है। इसमें एक प्रधान पात्र रमेसुर है और एक प्रधान पात्री गंगा है, फिर भी एक और अव्यक्त पात्र है जो इन दोनों को नचा रहा है और उसका भी इतना ही योग है जितना गंगा और रमेसुर का। अपितु कहना चाहिए कि उसके इशारे पर ही दोनों नाच रहे हैं और वह है नैपथ्य से झाँकता हुआ लेखक।

विवरणात्मक शैली का ही एक अन्य रूप आत्मकथात्मक शैली है। किन्तु सामान्यतः इनके उपन्यासों में विवरणात्मक शैली ही अधिक पायी जाती है, क्यों कि इसमें कथाकार निर्लिप्त भाव से कथा कहता चलता है। डा. प्रतापनारायण टण्डन ने इस शैली का समावेश आत्मकथात्मक शैली के अन्तर्गत किया है और वातावरण का निर्माण किया है तथा इससे कथा को गति दी है—

'रीता' उपन्यास से उद्धृत एक उदाहरण देखिये—

"अब वह ठीक मेरे सामने खड़ी थी—मेरी राह में आंखें बिछाये। हैं आंखें बिछाये और मेरी राह में। मैं फिर उपेक्षा की हँसी-हँसकर रह गया और आगे बढ़ गया। गली के मोड़ पर पहुँच कर मैंने एकाएक पीछे घूम कर देखा। वह अब भी हसरत भरी निगाह से मेरी तरफ देख रही थी। मैं आगे

पड़ गया, लेकिन उसकी निगाह मुझपर पड़ गयी...."*

यहाँ उपन्यासकार ने कुशलता पूर्वक प्रेम के प्रारम्भिक बीज वपन का सुन्दर विवरण उपस्थित किया है।

क्योंकि 'अभिशप्ता' और 'रीता' फ्लैश बैंक पद्धति की शैली पर आधारित आत्मकथायें हैं अतः इनमें पत्र और डायरी शैली का भी प्रयोग किया गया है। फ्लैशबैंक पद्धति में सिनेमा की तरह घटनाओं को तत्काल न दिखा कर किसी पात्र की स्मृति में लाकर दिखाया जाता है। उस शैली द्वारा एक ही घटना पर पात्र के दोहरे मनोभावों का प्रभाव सरलता से दिखाया जा सकता है। 'रीता' में रमेश पर पूर्व घटना का जो प्रभाव पड़ा है, उससे उसे पश्चाताप है, और आत्मप्रतारणा है, किन्तु घटना घटित होते समय ऐसा नहीं था। उसकी अब सब खुशियाँ नष्ट हो गयी हैं। वह प्रारम्भ में ही कहता है—

"मैं बहुधा आधी-आधी रात के सूनेपन में चौंक पड़ता हूँ। मैं जब अपने विगत जीवन के बारे में सोचता हूँ, तो वे सारे चित्र अपनी आँखों के सामने साकार होते दिखाई देते हैं जो मैंने कभी अतीत में देखे थे। मैं अपने हृदय को हरसंभव शान्ति देने का प्रयत्न करता हूँ, किन्तु वह नहीं मिलती...." †

इसी प्रकार 'अभिशप्ता' उपन्यास में भी इसी फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग किया गया है और 'वासना के अंकुर' में प्रथम पुरुष द्वारा कही गयी आत्मकथात्मक शैली और इस फ्लैशबैक पद्धति का और भी स्पष्टीकरण करती है। 'रीता तथा 'अभिशप्ता' में तो स्मृतियों में कथा एकसाथ चलती है और क्रमानुसार चलती ही रहती है, उसमें किसी प्रकार का क्रम भंग नहीं है। कभी-कभी कथा कहने वाला पात्र अपनी वर्तमान स्थिति की याद अवश्य कर लेता है और अतीत चिन्तन से वर्तमान पर भी आ जाता है। किन्तु 'वासना के अंकुर' में कथा कहने वाला पात्र एक नहीं है, दो-दो—गंगा तथा रमेशुर—हैं, दोनों ही अपने अतीत का चिन्तन कर रहे हैं। यह अतीत का चिन्तन ऐसा भी नहीं है कि समस्त घटना घटित हो जाने के बाद मानस पटल पर होता हो, अपितु

* रीता : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १६

† वही पृष्ठ ५।

घटना के बीच से ही उपन्यासकार ने लिया है। यह शैली उपन्यासका
निराली शैली है—अपने ढंग की अनोखी शैली है। मध्य घटना पर अ
लाकर गंगा उसके विषय में सोचती है, जो-जो घटनायें गंगा के ज्ञान मे
रहें रमेशुर सोचता है ; फिर वर्तमान के क्रिया-कलाप विवरणात्मक
होते हैं, लेखक वहाँ निलिप्त होता है, पुनः एक व्यक्ति—रमेशुर—
जाता है और दूसरे—गंगा—की मृत्यु पर अपना अतीत सोचने लगता है
एक का वर्तमान दिखा कर दूसरे का अतीत दिखाया गया है। यही
बार की सूझी है। इसीलिए कथा धाराप्रवाहवत नहीं चलती, उ
छोटे स्रोत फूटते हैं जो पथरीली चट्टानों के बीच से बहते हैं—
मिल जाते हैं, और कहीं फिर अलग-अलग हो जाते हैं, अपनी गति
कुछ स्रोत बन्द भी हो जाते हैं—कथारूपी कन्दराओं में छिप जाते
बिना प्रभावित हुए आगे बढ़ते रहते हैं। इस उपन्यास में एक
एक ही पात्र के दोहरे मनोगत भावों पर प्रकाश नहीं पड़ता—उ
घटना पर भिन्न-भिन्न पात्रों के दृष्टिकोणों का प्रश्न पड़ता है।

इस फ्लैश बैक शैली में (क्योंकि यह संस्मरणात्मक शैली
पत्र तथा डायरी शैली का प्रयोग किया जाता है। फैनी बर्नी लि
न्यास 'इवेलीना' भी पत्रात्मक शैली में लिखा गया है और
'अजय की डायरी'—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है डायरी शैली
सन का 'पैमिला' उपन्यास भी पत्रात्मक शैली में है। किन्तु
टण्डन के उपन्यासों तथा इन उपन्यासों में एक मूलभूत अ
उपन्यास समग्र रूप से पत्रात्मक शैली अथवा डायरी शैली
जबकि डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास 'रीता' की
अंकुर' में पत्रात्मक शैली तथा 'रीता' की डायरी शैली केवल
में ही हैं। रीता के मर जाने पर उपन्यासकार उसपर बीती
शैली के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से दे ही नहीं सकता
स्थान पर स्वयं सुनाता है तो कुछ अजीब सा लगता है और
ऊँट छोड़ने वाली कहावत याद आ जाती है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों में खोज-बीन
के भी दर्शन हो जाते हैं। बहुधा यह शैल

उस स्थान पर प्रयुक्त की गयी है जहाँ आत्मकथा कहने वाला पात्र स्वयं अपना विश्लेषण करने लगता है और उस आत्मनिरीक्षण में अपने गुणों को स्वयं बताने लगता है। बहुधा यह शैली अपनी सीमा का भी अतिक्रमण कर जाती है और जब वह पात्र 'मैं भावुक, सहृदय और सुकुमार भावनाओं वाला नवयुवक हूं' अथवा 'मैं बहुत संकोची स्वभाव का हूँ' * कह कर खुद अपने मुह मियाँ मिट्ठू बनने लगता है तो बड़ा हास्यास्पद लगता है।

लेखक ने कथोपकथनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। यद्यपि कथोपकथन यो तो नाटक का मुख्य तत्व है, किन्तु अब तो अभिनयात्मकता लाने के लिए प्रायः सभी उपन्यासकार अपने उपन्यासों में इसका प्रयोग करते हैं। हाँ प्रयोग करने की दिशा मे अवश्य अन्तर आ जाता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन ने अपने उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग कथानक मे गति लाने के लिए, पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए और वातावरण निर्माण के लिए किया है। जैसा कि हम पूर्व लिख चुके हैं कि कथोपकथनों में वातावरण को सजीवता दी है और घटना को गति दी है, इस शैली से लेखक ने विस्तार को रोका है। और साथ ही कथानक मे अभिव्यंजता की वृद्धि हुई है।

उपसंहार—वस्तुत : प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास-शिल्प पर विचार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई भी लेखक—विशेषकर डा० प्रतापनारायण टण्डन प्रत्यक्ष सूक्ष्मदर्शी के साथ ही साथ अनुभवशील भी हैं। आसपास के वातावरण ने उनके संवेदनशील हृदय को प्रभावित किया और वे कल्पना-कुसुम या दूर की कौड़ी न लाकर धरती की साँसों का ही चित्रण करते हैं। जीवन की कृत्रिमता, फैले हुए संघर्षों के बीच दलित मानव, मृत्यु के कराल पाशों से आबद्ध जीवन और उससे मोर्चा लेती हुई जीवन की आस्था युवाकालीन यौन-आकर्षण, बाल स्वभाव की मस्ती की सूक्ष्म परख, इन सबने लेखक को लिखने का मैटर दिया। उनके कथानक कल्पना के सतरंगी रंग से भरे नहीं हैं, उनमें जीवन की विविधता है—मृत्यु के कराल पजों की दीखती छाया का चित्रण है, अतः वातावरण में मुर्दों सी खामोशी है।

* रीता: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८

डा० प्रतापनारायण टण्डन धरती के गायक हैं, कहीं-कहीं रहस्यात्मक बातों की याद करके—दुःखों से उदास होकर—व्यथित होकर शून्य की ओर ताकते हैं और 'ओ शून्य ! तुम क्या हो और क्या रहस्य है तुम्हारा ?" कह कर अपने हृदय की सम्पूर्णता से मौन पुकार लगाते हैं—अपनी दृष्टि को उसकी सीमाओं में भटकाते हैं, किन्तु पैर जमीन को ही छूते रहते हैं—और तब वह शून्य का रहस्य, धरती का रहस्य—जीवन का रहस्य बन जाता है।

गंगा के अनेक मुहानों की तरह उनके पात्रों और कथानकों की शैली में अनेकरूपता है। शार्लट-ब्रान्टी और जेन आस्टिन की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन ने भी अपने जीवन तथा परिवार से लेखन-सामग्री के मोती लिये और कल्पना के सतरंगी धागे में पिरो कर अपनी शैली के जादू से उन्हें अर्थपूर्ण बनाया।

अध्याय : ३

कहानी-कला का नवीन सोपान

कहानी-कला का क्रमिक विकास

पिछले अध्याय मे उपन्यास साहित्य का विवेचन करते समय हम कह चुके हैं कि कथा-साहित्य से लेखक की विशेष रुचि होने के कारण उपन्यासों मे उनका काफी योगदान है। इस दृष्टि से कहानी साहित्य भी उनकी रुचि से अछूता नहीं है। अपितु यह भी कहा जा सकता है कि कहानी साहित्य में उनकी प्रतिभा विशेष रूप से स्फुटित हुई है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उपन्यास तो एक विशिष्ट समय में, विशिष्ट भावभूमि पर और विशिष्ट वातावरण में रचित रचना का नाम है, अतः उसमें लेखक की समग्र मनःस्थिति एवं विचार-धारा का धरातल नहीं खोजा जा सकता; जबकि कहानी समय-समय पर विभिन्न मनःस्थितियों की संगत का परिणाम होती है, अतः इसमे लेखक का व्यक्तित्व और मनःस्थिति तथा वैचारिक प्रौढ़ता का विकास स्पष्ट परि-लक्षित होता है। उपन्यास लेखन से भी पूर्व लेखक ने कहानियो का श्रीगणेश कर दिया था। उनकी कहानियाँ सन् १९५५ से तो अबाध गति से मिलती हैं, किन्तु जैसा कि हम पूर्व तालिका मे बता चुके हैं कि लेखक की एक कहानी 'गाधी-ग्राम पत्रिका मे, सन् १९५१ मे भी प्रकाशित हो चुकी थी। इससे लेखक की क्रमशः विकसित चिन्तनधारा का रूप—विभिन्न परिस्थितियों के दौरान स्पष्ट हो जाता है।

इससे पूर्व कि हम इन कहानियों का विवेचन करें यह आवश्यक हो जाता है कि अब तक के कहानी साहित्य के इतिहास में प्रचलित प्रवृत्तियो पर एक

दृष्टिपात कर लिया जाये। इसमें हम आधुनिक कहानीकारों की प्र
ही विहंगम दृष्टि डालेंगे, क्योंकि पहली कहानी का रूप तो अब
परिवर्तित हो गया है।

हिन्दी कहानी का इतिहास—हिन्दी कहानी का इतिहास बहु
का है। यद्यपि प्रारम्भिक रूप बृहत्कथा आदि में भी मिलता है औ
लों की 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी की पहली कहानी* म
लेकिन महत्वपूर्ण बात तो यह है कि वास्तविक अर्थों में कहानी क
शताब्दी के प्रारम्भ से ही माना जाता है—जब कि अंग्रेजी तथा बंग
आधुनिक ढंग की कहानी का लिखा जाना प्रारम्भ हुआ। बीस
इन आरम्भिक वर्षों में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग
अवधि को हिन्दी की आधुनिक कहानी का प्रयोगकाल भी कह

आधुनिक हिन्दी कहानी का स्थान और उसका मूल्य
आभ्यन्तर में जितनी शक्तियाँ काम करती हैं, उन सबका
समय और पृष्ठों की माँग करता है, अतः इसके विस्तार में
ही हम उस कहानी की जय-यात्रा का वर्णन करेंगे जो प्रे
आज तक नई कहानी के रूप में अबाध गति से प्रवाहमान है

आधुनिक कहानी का श्रीगणेश अपनी समर्थ तथा म
से प्रेमचन्द ने किया था। इनकी सर्वप्रथम कहानी १९१५
इनकी कहानियों के विषय ग्राम्य जीवन, मध्यवर्गीय शह
तीय नारी समाज हैं। सामाजिक कहानियों के अतिरिक्त
ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। अपने कहानी संग्रह
में प्रेमचन्द ने लिखा है—"हम ऐसी कहानी चाहते हैं कि

---

* दे० आधुनिक साहित्य—हिन्दी कहानी का वि
पिछला दशक—हिन्दी कहानी : डा० प्रताप
पृष्ठ ८५ और ९५
... ८१ और ९२

में कही जाये, उसमें एक वाक्य एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाये; उसमें चटपटापन हो, कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो और इसके साथ ही साथ कुछ तत्व भी हो।" प्रेमचन्द की कहानी-कला अन्तिम चरण में सहसा जैसे नये आलोक से और अपनी नयी दृष्टि में उद्दीप्त हो गयी थी। वे नारी को समानता के धरातल पर देखना चाहते थे; यथार्थवादी कहानी-परम्परा का उन्होंने प्रक्षालन और परिवर्तन किया था। विवेकमयी दृष्टि से यथार्थवाद को देखा था, न कि भावुकता जन्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से। अपनी कहानी कला के अन्तिम चरण में उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था कि 'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।.......कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो। *

शैली की दृष्टि से तो नहीं, किन्तु नयी सामाजिक चेतना की दृष्टि से प्रेमचन्द की अन्तिम कहानियाँ एक नये स्वर, नये विश्वास और विद्रोह की ओर संकेत कर गयीं।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी का धरातल सामान्यतया प्रेमचन्द युगीन कहानी के धरातल से अधिक भिन्न नहीं कहा जा सकता। प्रवृत्ति के अनुसार देखा जाये तो इस युग के बाद हिन्दी कहानी में आदर्श और यथार्थ के साथ ही मनोवैज्ञानिकता भी आ गयी और उसका आधिक्य होने लगा। अतः प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानियों में दो प्रवृत्तियाँ मुख्यतया उद्भासित हुईं—

(१) सामाजिक संघर्ष के अर्थबोध की।

(२) व्यक्ति के मनोविज्ञान से आगे उसके मनोविश्लेषण की।

पहली प्रवृत्ति प्रेमचन्द से शुरू होती है, और जिसका विकास उनके अन्तिम चरण में हुआ था, दूसरी प्रवृत्ति को शक्ति पश्चिम से मिली थी—(अन्धानुकरण नहीं) शिल्प की दृष्टि से उस पर अवश्य अब तक निर्धारित नवीनतम रूपों का प्रभाव पड़ा। यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसमें वातावरण का प्राधान्य होने लगा। † व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की बहुलता भी उसकी एक विशेषता बन गयी।

---

* मानसरोवर (प्रथम भाग, भूमिका) : प्रेमचन्द, पृष्ठ २३

† हिन्दी साहित्य, पिछला दशक : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०२

इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका में जो उन दिनों 'साइकोएनिलिसिस' मनोविश्लेषण, सेक्स, दमित काम-वासना को अभिव्यक्तिपूर्ण कहानियाँ लिखी जा रही थीं, उन्हीं का प्रभाव इस समय की कहानियों पर पड़ रहा था। प्रेमचन्द के बाद जो महत्वपूर्ण कहानीकार हिन्दी जगत में अपनी इन नयी प्रवृत्तियों के साथ आये उनमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, और उपेन्द्रनाथ अश्क आदि। विदेशी कथा साहित्य, उसकी कथा परम्परा और बंगला तथा उर्दू की कहानी-कला के ज्ञान से भी पूर्ण परिचित थे।

प्रेमचन्द का मूल क्षेत्र जहाँ ग्रामीण सामाजिकता थी, वहाँ इस नये चरण के कहानीकारों का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। शहरी मध्यवर्ग और उसकी समस्यायें अपने विभिन्न पक्षों में कहानी का कार्य विषय बनीं। मनोविज्ञान का प्रयोग प्रेमचन्द और प्रसाद दोनों ने किया था, पर मनोविश्लेषण की पद्धति का प्रयोग इस चरण में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में मुख्य रूप से हुआ। जैनेन्द्र की 'एक रात' तथा 'राजीव और भाभी' इस सत्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। प्रसाद की कहानियों में भारतीयता की अमिट छाप मिलती है, और भाषा शैली की दृष्टि से इनकी कहानियाँ काफी प्रौढ़ हैं। क्योंकि प्रसाद कवि थे, अतः इनके गद्य की भाषा पर भी काव्यात्मकता का प्रभाव अधिक है।

जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ सात भागों के अन्तर्गत प्रकाशित हुई हैं। इनमें राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कहानियाँ, बालमनोविज्ञान और वात्सल्य की कहानियाँ, दार्शनिक और प्रतीकात्मक कहानियाँ, प्रेम और विवाह सम्बन्धी कहानियाँ, प्रेम के विविध रूपों की कहानियाँ, सामाजिक समस्याओं पर कहानियाँ संकलित हैं। कहानीकार और दर्शन के व्याख्याता भी बन कर जैनेन्द्र ने मानव समाज की जटिल मान्यताओं की नयी जाँच-पड़ताल शुरू की। अब कहानियाँ प्रतीक-रूप होने लगीं, उनमें एक गुत्थी होती थी, उपसंहार होता था—पाठकों को सोचने के लिए मसला होता था, कोई निष्कर्ष नहीं। जैनेन्द्र ने एक स्थान पर कहा है कि मुझसे कहानियों के विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं माँगें, क्योंकि कहानियों में से यदि उपसंहार ही समाप्त हो गयी, तो क्या ही क्या। यह उपसंहार ही तो कहानी है।*

---

* ——(क्रोध) कथानक मुझसे न माँगें, मैं इन्कार कर दूँगा। इसके

जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों को मानव दर्शन पर आधारित किया था। कहानी शिल्प विधि द्वारा इन्होंने व्यापक जीवन के व्यापक रूप और दार्शनिक पक्ष और व्यक्ति के उन मूल नैतिक प्रश्नों को लिया है, जो हमारी संस्कृति और उसके विकास के मेरुदण्ड हैं। *

यशपाल अपने ढंग के कहानीकारों में काफी ऊँचे ठहरते हैं, उनकी कहानियाँ जीवन के कठोर यथार्थवाद पर आधारित हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आधुनिक हिन्दी कहानीकारों में महत्वपूर्ण माने जाते हैं। अपनी 'परम्परा' कहानी संग्रह की 'अलिखित कहानी' में उन्होंने लिखा है कि—कहानी केवल कहानी भर होती है, उसे ऐसे लिखना कि वह सच जान पड़े सुगम होता है। किन्तु जीवन के किसी प्रगूढ़ रहस्यमय सत्य को दिखाने के लिये लिखी जाये, उसे ऐसा रूप देना कठिन ही है। जीवन के सत्य छिपे रहना ही पसन्द करते हैं, प्रत्यक्ष नहीं होते। और बस......"

इस कलागत दृष्टिकोण का प्रभाव जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय पर तो परिलक्षित होता ही है, प्रेमचन्द के बाद के अनेक कहानीकारों पर प्रत्यक्ष है। प्रसाद, सुदर्शन, कौशिक, गुलेरी आदि की कहानियों में भी नैतिक-सामाजिक सत्य (जो कुछ भी हो,) स्पष्ट और निष्कपट होते थे।

लेकिन जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय की कहानियों में कभी सैद्धान्तिक और कभी व्यावहारिक, हर स्तर की मान्यताओं के विषय में शंकाएँ उठने लगी हैं, अतः इनकी कहानियों में प्रेमचन्द की तरह व्यक्तिगत, सामाजिक तथा अन्य मानवीय सम्बन्धों पर उतने स्पष्ट निर्णय नहीं हैं। फिर भी इन्होंने निश्चय ही बड़ी गहराई से अपने काल की समस्याओं की कलापूर्ण अभिव्यक्ति की है, और इनकी कहानियों में सर्वथा एक नये प्रकार की बौद्धिकता (युग के परिप्रेक्ष्य में

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

* नहीं कि समाधान के नाम पर मैं उन्हें बहुत कुछ दे नहीं सकता, प्रत्युत इसलिए कि मैं मानता हूँ कि मन में शंका, उद्वेलन पैदा करना भी मेरी कहानियों का एक इष्ट है।"

—एक रात (भूमिका) : जैनेन्द्र

* आधुनिक हिन्दी कहानी : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ६७
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

कथानक पर आधारित न होकर चरित्र पर आधारित हो गयी है। और कहानी की शिल्प रेखायें अन्तर्मुखी हो गयी हैं, इससे चरित्र, लगता है निष्क्रिय से हो गये हैं, फलतः पात्रों मे कोई गति नहीं है, उनमें प्रकृति का सहज स्वाभाविक गुण परिवर्तन और गतिशीलता दिखायी नही देती, वे चिन्तनरत हो गये हैं।

कथा सूत्र की विश्रृंखलता के कारण नये-नये प्रयोग हुए फलतः कहानियाँ अस्पष्ट और रहस्यात्मक हो गयी। इनमें निश्चित अतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति के इस तरह ह्रास के कारण साधारण पाठकों के लिए कहानियाँ कठिन और दुर्बोध होने लगीं।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र की कहानियाँ इसका अपवाद है, उनमे अनावश्यक शिल्प-कौशल और कला चमत्कार नही है। प्रेमचन्द की तरह ही इनकी कहानियों मे भी तटस्थता, सूक्ष्म दृष्टि और साथ ही सफलता और सुबोधता है। 'खोज' कहानी संग्रह की कहानियों की भाव-भूमि से स्पष्ट होता है कि 'निर्गुण' की संवेदना और भावक्षेत्र प्रेमचन्द की तरह ही व्यापक और मानवीय है। 'जिन्दगी, 'तिवारी' 'छोटा डाक्टर' आदि कहानियों से प्रतीत होता हैं कि 'निर्गुण' ने भी सर्वथा सामान्य मनुष्य जीवन को लिया है। उनकी कहानियाँ वस्तुतः आधुनिक कहानियों की टैक्नीक तथा अस्पष्टता के चमत्कार-कौशल की फिसलन मे दृढ़ चट्टान का काम करती हैं। बिना किसी भूमिका के सीधा स्पष्ट प्रवेश— ऐसा कि पाठक की सारी संवेदना को अपनी ओर खींच ले, उनकी विशेषता है। * शिल्प विधान की एकरूपता मन को कहीं नही उबाती वरन रचना शिल्प की अकृत्रिमता और स्वाभाविकता से कहानियाँ मन मोहित कर लेती हैं।

विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ इनके बिल्कुल विपरीत हैं। कहानी के प्रारम्भिक भाग में प्रस्तावना, अथवा भूमिका का संस्पर्श ; कहानी के मध्य में कहीं-कहीं समस्या का विश्लेषण और चरित्रांकन की रेखाओं में जीवनगत मूल्य-स्तर का विवेचन होते हुये भी यथार्थ के प्रति निर्मम नहीं है। 'अगम अथाह' 'स्वप्न रूपी' 'गृहस्थी, 'जज का फैसला' आदि कहानियाँ उनकी सुबोध कथाशिल्प की उदाहरण हैं।

---

१. आधुनिक हिन्दी कहानी : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ८४

शिल्प की सरलता, प्रत्यक्ष प्रभाव डालने की क्षमता कमल जोशी की कहानियों की एक विशेषता है। 'निर्गुण' की तरह 'जोशी' भी बिना किसी भूमिका के कथा सूत्र को पकड़ कर कहानी को ऐसा उभार देते हैं कि पूर्व कथा अथवा पहली भूमिका स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है। इनके चरित्रों की अभिव्यक्ति गहरी मनोवैज्ञानिकता के प्रकाश में होती है।

इस कहानी धारा में अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त, चन्द्रकिरन सोनरेक्सा आदि के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कहानी धारा किसी विशेष वर्ग तथा विशिष्ट पाठक समुदाय के लिए नहीं है, इसकी कहानियाँ अगम, दुर्बोध तथा अस्पष्ट नहीं हैं। मनोविज्ञान, प्रतीक पद्धति, लाक्षणिकता, और प्रतीक योजना तथा सांकेतिक रहस्यों को अपना कर भी इनमें निश्चित इतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति का ह्रास नहीं हुआ। *

यह काल गत्यवरोध का काल रहा है। अज्ञेय की कहानी कला, जिसके मूल में केवल अनुभूति मात्र है और उसकी अभिव्यक्ति में उत्कट सच्चाई है, के बाद कहानीकार के पास आगे की जमीन कौन सी रह जाती है, उसे समझने में समय लगा। आगामी संभावनायें अस्पष्ट होने के कारण कुछ पकड़ में नहीं आ रहा था; फलतः मात्र शिल्प प्रयोग के होते रहे और आगे के कुछ वर्ष केवल शिल्प प्रयोग काल के रूप में ही अभिहित होने लगे। † फलतः सस्ती और रोमांटिक कहानियों का प्रचलन भी बढ़ चला—विकृत रुचि को सन्तुष्ट करने वाली कहानियाँ।

किन्तु समय तेजी से परिवर्तित हो रहा था, युग धर्म की परिवर्तित परिभाषाएँ निर्ममता पूर्वक पूर्व सत्यों को झुठला रही थी और बह रही थीं, वैसो—बदा सघर्षशील सामाजिक पार्श्व का एक बहुत बड़ा भाग; जो इस संक्रान्ति के दौर में भी पूर्णतया अछूता है, तभी कहानी काल के लेखकों ने इसे चुना। नयी कहानी का सबसे बड़ा स्वर यह उभरा कि इसने अपने समय, काल, परिस्थिति के जीवन और समाज, संघर्ष कालीन स्थितियों से सीधा सम्बन्ध स्थापित

---

* आधुनिक हिन्दी कहानी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ८५

† वही, पृष्ठ ९०

किया। इसने पूर्व कहानी की आत्मा में ही परिवर्तन कर दिया। नारी के प्रति बनी मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हुआ; महायुद्ध (द्वितीय) के परिणाम स्वरूप नारी, दिनो-दिन बढ़ती कीमतों तथा देश के विभाजन के कारण नौकरी को तत्पर हुई, स्वावलम्बी बनी, माता-पिता और छोटे भाई-बहिनों की पालनकर्त्री बनी और तब नारी का रुख भी वही हो गया जो कुछ दिनों पूर्व पुरुष का था। भाइयों—बेरोजगार भाइयों के प्रति भी व्यवहार उपेक्षापूर्ण हुआ, और क्योंकि वह कमाती थी, अतः माता-पिता को भी इसमें कोई असंगति दिखायी नहीं दी। उषा-प्रियम्वदा ने अपनी कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में इसी वस्तु सत्य को नई दृष्टि से परखा है। *

इस नयी माँग तथा लेखक की नयी दृष्टि का फल यह हुआ कि अनेक पत्र पत्रिकाएँ नयी कहानी से सम्बन्धित प्रकाशित होने लगीं। और नये कहानीकार नई कहानी के क्षितिज पर वेग से उड़ती पतंगों की तरह छाने लगे—मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल, उषा प्रियम्बदा, मन्नू भंडारी, अमृता प्रीतम, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल, प्रतापनारायण टण्डन आदि। जिस परम्परा धारा को प्रेमचन्द ने शुरू किया था वह फिर आगे प्रवाहित होने लगी। उसी परम्परा मे आने वाली कहानियाँ—अमर कांत की 'दोपहर का भोजन', मोहन राकेश की 'मिस पाल', और 'आर्द्रा' मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकारी', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे,' कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया, धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो,' मन्नू भंडारी की 'यह भी सच है,' फणीश्वर नाथ रेणु की 'मारे गये गुलफाम', उषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' आदि जहाँ एक ओर नई हैं, वहाँ उसी परम्परा की अर्जित उपलब्धि भी हैं।†

इस कहानी का वेग इतना अधिक प्रभावकारी हुआ कि पुरानी पीढ़ी के अनेक प्रतिष्ठित कहानी लेखकों ने इसे अपनाकर अपनी पूर्व रचना प्रक्रिया को

* लहर, नयी कहानी विशेषांक—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ ५२

† आधुनिक हिन्दी कहानी: लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ ९९-१००

ही बदल दिया। उनकी दृष्टि बदलने के साथ ही साथ शिल्प विधान भी परिवर्तित होने लगा। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का नाम इस दृष्टि से लिया जा सकता है। उनका 'पलंग' कहानी संग्रह इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इस कहानी धारा के अतिरिक्त इसके साथ ही साथ दूसरी कहानी-धारा भी बहती रही है, इसमें पुरानी धारा की लकीर को ही पीटा जा रहा है। और सर्वथा पुरानी परम्पराओं की ओर नये लेखक मुँह किये हुए हैं। किन्तु पुरानी कहानी लिखी नई रचना-प्रक्रिया के सन्दर्भ में ही है। इसके लेखक भी अधिक तर वही हैं जो नई कहानी धारा के हैं। वस्तुतः यह मिली-जुली कहानी धारा है।

इन कहानियों में जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों में अपेक्षाकृत विराट् संवेदनाओं की ओर सहज संकेत हैं। मार्कण्डेय की ग्राम कहानियाँ और कमलेश्वर की अपनी कस्बे की कहानियों में विशेष बात है सांकेतिक प्रक्रिया, जो रचना प्रक्रिया के भीतर से उसका अभिन्न अंग बनकर उभरती है। इन समय की कहानियों में विविधता है—कहीं भी किसी भी स्तर से एकरसता और दुर्बोधता का नामोनिशान भी नहीं है। फिर यह कहना अतिशयता न होगा कि इन कहानियों में जितनी अनुभूतियाँ उभरी हैं, सबका स्तर भिन्न-भिन्न है। कहीं गहराई है तो कहीं केवल विस्तार ही है। कहीं कहीं 'कहानी में कोई विचार ही नहीं है—कहानी आदि से अन्त तक विचार हीन(?) है; उसमें केवल एक जिया हुआ जीवन क्षण या अंश मात्र रहता है। और उन भोगे हुए क्षणों को ही मुखरित करना—उसे ही कृतार्थ बनाना कहानी का उद्देश्य रहता है। यह नई कहानी जीवन के उन अनुभूत क्षणों की झाँकी देकर उनके प्रति विचार के लिए सब कुछ पाठक पर छोड़ देती है—किन्हीं अर्थों में जैसे 'तलोवार' और 'फिरंगिन जिस्म' की कहानियाँ। *

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ

आधुनिक कहानी की इन प्रवृत्तियों को देखने से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक कहानीकार कहानी के सम्बन्ध में नये-नये प्रयोग कर रहा है। ऐसे प्रयोग—

* आधुनिक हिन्दी कहानी : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ १०३

जिनमें वह स्वयं रम जाता है। इन कहानियों में एकरसता है, एकांगिता है, सूक्ष्मदर्शिता है, विचारों की सम्यक् व्याख्या है, मनोविश्लेषण है और जीवन के विविध रूपों को देखने का प्रयास है। किन्तु इतना मानना पड़ेगा कि प्रत्येक कहानीकार ने एक-एक दृष्टिकोण को ही उठा कर उसी का विवेचन किया है। किसी एक ही कहानीकार ने जीवन को विविध दृष्टिकोणों से नहीं देखा, अनुभूतियों की व्यंजना में वैविध्य नहीं दिखाया, जीवन को निकट लाकर नहीं देखा—एक निश्चित दूरी से देखा प्रतीत होता है। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ इसका अपवाद हैं। इनमें जीवन के बहुरंगी पक्षों का विवेचन किया गया है— निकट से विवेचन किया गया है; इस तरह कि लगता है लेखक ने स्वयं इन विविध जीवनों को भोगा है। उनकी अनुभूति में स्पन्दन है, और विचारों में निर्णयात्मकता। इनकी कहानियों में जीवन की गहराई है, जीवन की अनेकानेक भाव भंगिमाओं के गम्भीर और पूर्ण चित्र हैं, परिवर्तित युग धर्म के मसीहे पर जन साधारण की बदलती निगाहों के विभिन्न प्रयोगात्मक रूप हैं, और सबसे बड़ी चीज है, मानवीय भावनाओं के अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण। चाहे इनकी कहानियों में सेक्स की कुण्ठा से दमित यौवन के भभकते चित्र न मिलें, प्रसाद की तरह कल्पनाओं का भावात्मक सम्प्रेषण न दिखायी दे, प्रेमचन्द की तरह आदर्श के पीछे दिवास्वप्न परिलक्षित न हो और वृन्दावन लाल वर्मा की तरह ऐतिहासिक कहानियों द्वारा अतीत के राग न सुनाई पड़ें, किन्तु मध्यवर्गीय जीवन की विविधता, उसके बौद्धिक चिन्तन के परिवर्तनशील पहलू और सामान्य जीवन के प्रति मध्यवर्गीय भावना के जीवन्त संकेत अवश्य मिल जायगे। डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ केवल कहानियाँ कहने के लिए नहीं हैं और न ही मात्र शिल्प-प्रयोग के लिए हैं, इनमें चरित्र को सामने रख कर बुद्धि को सजग किया गया है—विचारों का वैषम्य दिखाया गया है।

डा. प्रतापनारायण टण्डन विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के कुशल चितेरे कहानीकार हैं। और कहानी कला का मूल धरातल मानव चरित्र है। इनकी दृष्टि समाजसुधारक की दृष्टि नहीं है अपितु एक चिन्तक की दृष्टि है, जो किसी वस्तु के विविध सम्भावित पक्षों की विवेचना मात्र कर देता है, निष्कर्ष नहीं देता। इनकी कहानियों में समाज की आलोचना भी है, मानवीय स्वभावों की बहुरूपता है, मानसिक संघर्षों का अन्तर्द्वन्द्व है, कल्पना के अनुभूत्यात्मक संयोग है

और तिरस्कार अथवा हत्या आदि से संभावित भय का चित्रण है। इस आधार पर डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों को स्पष्टतया निम्न भागों में रख सकते हैं—

१. सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियाँ
२. चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कहानियाँ
३. मानसिक संघर्ष और ऊहापोह की कहानियाँ
४. काल्पनिक कहानियाँ
५. रोमांचक कहानियाँ
६. भावात्मक कहानियाँ।

वस्तुतः इन छहों धरातल की कहानियाँ अपने दृष्टिकोण और परिस्थितियों के कारण इतनी विस्तृत, व्यापक और गम्भीर हैं कि मानव अपने अधिक से अधिक रूपों में इनका उपजीव्य बन गया है। इनसे लेखक की मौलिकता, सूक्ष्मता ग्राहिणी प्रवृत्ति, असाधारण शिल्प विधान कौशल और यथार्थता के धरातल पर मध्यवर्गीय चरित्रों का आकलन स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कथानक

१. सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियों—के उक्त धरातलों के कारण कथानक भी छः रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियाँ नैतिक आलोचना की दृष्टि से लिखी गई हैं, इनमें कथानक का एक सुशिक्षित रूप स्पष्ट इतिवृत्त और सीमित यौनवाद दिखाई देता है। फ्रायड की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन ने भी सेक्स को प्रकृति का अनिवार्य चरण मानकर उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'ठहराव' 'लाल रेशम का पतला धागा', 'भविष्य के लिए', 'मजबूरियाँ', 'गोरी के—" और 'आखिरी खत' आदि कहानियाँ सीमित यौनवाद का उदाहरण हैं। इनमें कहानीकार ने यौवन की आवश्यक भूख के रूप में सेक्स को उभारा है; किन्तु द्रष्टव्य यह है कि कहीं पर भी इसकी अति नहीं है। 'उतार-चढ़ाव' कहानी में सुरेश बस से जाना इसलिए पसन्द करने लगता है कि बस स्टैण्ड के सामने

ऊपर के छज्जे पर कोई षोडशवर्षीया युवती उसे सलज्ज नयनों से देखते हुए प्रेम करने लगती है। 'गोरी के—'में सुखुआ इसीलिए पागल हो जाता है कि 'माधो की बहू' के क्वाँरेपन में उससे 'आसनाई' थी और वह प्रेम अब भी जीवित था, अतः उसके मर जाने पर उसी की चिता की राख पर बैठ कर भला वह गाना क्यों न गाये जो उसे सबसे अधिक प्यारा था— 'गोरी के गोड़वा में गड़िगा काँटा—'। 'ठहराव' में मिश्रा जी का दोस्त उनकी साली की लड़की 'मोहना' का हाथ इस लिए दबा देता है क्योंकि मोहना को उससे स्नेह हो गया था। और उसका आकर्षण पुनः आने का निमन्त्रण दे रहा था। इन कहानियों में सेक्स की कुण्ठा भी है और दलित यौवन का अवरुद्ध प्रवाह भी। 'मजबूरियाँ' में मिस पिंटो अपने प्रेमियों से उलझाव रखती हैं— इसीलिए क्योंकि उसका यौवन, उसका रूप नवीनता चाहता था, वही नवीनता जो जमाल मिस पिंटो की युवती लड़की की बात सुन कर अपने मन में कल्पना करने लगा था। किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन की इन कहानियों में 'पहाड़ी' की कहानियों की तरह काम वासना के द्वन्द्व की चरम परिणति कहीं नहीं है। अपितु इस भूख का तात्विक विश्लेषण इन कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

सामाजिक आलोचना केवल आलोचना के स्तर पर ही मुखरित नहीं है। इसमें बौद्धिकता है और सबसे बड़ी चीज है विचार शक्ति! लेखक की इस प्रकार की कहानियों में कहीं भी आवेग जन्य कार्यों का वर्णन नहीं है, प्रत्येक पात्र जीवन के खोखले पन को समझता है, और आलोचना करता है। 'भविष्य के लिए', 'उचक्का', 'एक शाम', 'थोड़ी दूर का सफर', 'अष्टगृह योग', 'भेद की बात', 'पुराने दोस्त' और 'गलतफहमी' आदि कहानियाँ सामाजिक विकृतियों का यथार्थ बोध कराती हैं। 'भविष्य के लिए' में लेखक ने मोहनी के द्वारा समाज में पुरुष वर्ग का यथार्थ रूप चित्रित किया है। मोहनी जिस ओर देखती है, पुरुष की भूखी आँखें — उसके यौवन को घूरती आँखें — उसे निगल लेना चाहती हैं। 'एक मानवीय सत्य' में चौधरी द्वारा कही गयी बात कि "औरत की जिन्दगी पाँच साल होती है, फिर उसे फेंक देना चाहिये", मोहनी को सत्य लगती है। हर पुरुष उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, और वासना की आग में अपनी आँखों को सेंकते समय अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहता है, किन्तु इसके बाद ? वह इसमें से उसे मक्खी की तरह

और शिकार अथवा हत्या आदि से संभावित भय का चित्रण है पर डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों को स्पष्टतया निम्न सकते हैं—

१. सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियाँ
२. चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कहानियाँ
३. मानसिक संघर्ष और ऊहापोह की कहानियाँ
४. काल्पनिक कहानियाँ
५. रोमांचक कहानियाँ
६. भावात्मक कहानियाँ।

वस्तुतः इन छहों धरातल की कहानियाँ अपने दृष्टिकोण के कारण इतनी विस्तृत, व्यापक और गम्भीर हैं कि मा अधिक रूपों में इनका उपजीव्य बन गया है। इनसे ले सूक्ष्मता ग्राहिणी प्रवृत्ति, असाधारण शिल्प विधान कौश धरातल पर मध्यवर्गीय चरित्रों का आकलन स्पष्ट परिल

कथानक

१. सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानि कारण कथानक भी छः रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। सो सम्बन्धी कहानियाँ नैतिक [illegible] की दृष्टि से ि का एक सुशिक्षित रूप [illegible] और सीधि फ्रायड की तरह [illegible] टण्डन ने भी चरण मानकर [illegible] विश्लेषण ि का पतन [illegible]

'एक शाम' में लेखक ने पुरानी घिसी-पिटी परम्पराओं पर व्यंग किया है। सिर पर कौवा बैठ जाने से दूसरे मुहल्ले भर में मातम कराना, अन्धविश्वासों पर करारा प्रहार है। 'गलतफहमी' में घनश्यामबाबू स्वयं ही नारी के प्रति—अपनी पत्नी के प्रति किये जाने वाले आक्षेपों की निराधारता पा लेते हैं और 'पुराने दोस्त' में मोहन तथा शारदा मिल कर सीधे-साधे युवक सुरेन्द्र को नवीन युग के साहस का उदाहरण देते हुए फाँसते हैं और विवाह के लिए माता पिता की अवहेलना करके भी तैयार होने को समझाते हैं, किन्तु जब उन्हें सुरेन्द्र से भी अच्छा दूसरा'मुर्गा' मिल जाता है, तो उसे मार्ग के कटक की तरह छोड़ दिया जाता है। यह है युगीन परिवर्तित जीवन के मानदण्ड, उलझते-जूझते नैतिक चित्र, जो वर्तमान सभ्यता को पनपा रहे हैं।

'थोड़ी दूर का सफर' में लेखक ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से 'घायल की गति घायल जाने' को स्पष्ट किया है। बस में बैठे सज्जन इसलिए इंसानियत के पक्के हिमायती थे क्योंकि वह अपनी ही तरह दूसरों की तकलीफ को भी महसूस कर रहे थे और दूसरे लोग! वे मदान्धों की तरह झगड़े पर उतारू थे; कारण—जाके पैर न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियों के कथानकों के निर्माण में दो प्रकार के साधनों का सहारा लिया है। प्रथम आन्तरिक साधन, द्वितीय वाह्य साधन। यदि आन्तरिक साधन अमूर्त रूप में चरित्रों के माध्यम से कथानक का निर्माण करते हैं तो वाह्य साधन मूर्त रूप में क्रमिक घटनाओं आदि के माध्यम से इसे सुनिश्चित रूप प्रदान करते हैं। 'भविष्य के लिए' के कथानक निर्माण में मोहनीके आन्तरिक सघर्ष, रविप्रभा पति और अफसर के संसर्ग से उत्पन्न मानसिक आरोह-अवरोह कथा विकास में स्वाभाविक गति देता है तो दूसरी ओर नौकरी की तलाश में अफसर से मिलने पर हुआ वार्तालाप और पति से हुआ सघर्ष और मोहनी का वहाँ से भागना आदि वाह्य घटनाएँ कथानक को सुनिश्चित रूप देते हैं। इसी प्रकार 'लाल रेशम का पक्का धागा' में हमीद और बन्नो की मनःस्थिति प्रथम व्यापार-प्रणाली का निदर्शन करती है। कहीं-कहीं लेखक ने सामाजिक आलोचना वार्तालाप द्वारा ही की है, और ऐसे स्थानों पर कथानक नहीं के बराबर होता है, वार्तालाप

निशाना फेंकता है और इधर-उधर पुनः निगाहें दौड़ाने लगता है। चाहे कोई हो, बदसूरत हो, मालिक हो, अनजाना हो या पति - - - । पति भी उसके पूरे यौवन पर ही दृष्टि रखता है। क्योंकि वह पति की इच्छा का विरोध न करके उसकी इच्छानुसार ही स्वयं को समर्पित करती जाती है, अतः इस निर्विरोध समर्पण के कारण बहुत शीघ्र ही उसकी प्यास नारी से भर जाती है और वह दूसरे पानी की खोज करता है। यदि नारी साहसी है तो भी पति यह समझ कर कि वह उसका पालक है, अपनी इच्छा और प्रवृत्ति का विरोध सहन नहीं कर सकता। मोहनी पुरुष के इस रूप का विरोध करना चाहती है, उससे संघर्ष करना चाहती है, किन्तु वह सोचती है–"....आदमी इतना नीच हो सकता है। मुझे लगा उसका व्यवहार केवल दिखाने भर के लिए था, कामुकता से भरा हुआ था। उसमें कोई प्रेम भाव पत्नि के प्रति स्नेह की भावना नहीं थी, केवल नारी का हृष्ट पुष्ट शरीर, युवती नारी के कोमल अंग, भारतीय नारी का विवश यौवन, जो पति के लिए सिर्फ खिलौना होती है ; वह उसके यौवन से खेलना भर जानता है। कैसी निर्बलता है !*

मोहनी के चरित्र में साहस है, उसमें पुरुष वर्ग से संघर्ष का माद्दा है, इसीलिए जब उसकी सहेली रविप्रभा उससे पति के पास जाने का आग्रह करती है तो वह आवेश भरी आवाज में कहती है — "अब मैं चाहे प्राण ही क्यों न दे दूँ, मगर वहाँ वापस न जाऊँगी ," † यहाँ हमें मोहनी के चरित्र में लेखक के उपन्यास 'अभिशप्ता' की निशा और राजेन्द्रमोहन अग्रवाल के उपन्यास 'उलझी लकीरें' की रश्मि का अपराजित साहस दिखायी देता है, जो सामाजिक धारणाओं पर प्रबल आघात है। अन्त में वह निश्चय कर लेती है — "मैं लड़ूँगी, संघर्ष करूँगी — अत्याचार के विरुद्ध, अनाचार के विरुद्ध ; अपने चरित्र निर्माण के लिए, अपने जीवन के लिये, अपनी स्वतन्त्रता के लिये, अपने अधिकारों के लिये, अपने भविष्य के लिए........ ‡

---

* बदलते इरादे — भविष्य के लिए : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २२२

† वही, पृष्ठ २२५

‡ वही, पृष्ठ २२९

'एक शाम' मे लेखक ने पुरानी घिसी-पिटी परम्पराओं पर व्यंग किया है। सिर पर कौवा बैठ जाने से दूसरे मुहल्ले भर मे मातम कराना, अन्धविश्वासो पर करारा प्रहार है। 'गलतफहमी' मे घनश्यामबाबू स्वयं ही नारी के प्रति—अपनी पत्नी के प्रति किये जाने वाले आक्षेपों की निराधारता पा लेते हैं और 'पुराने दोस्त' मे मोहन तथा शारदा मिल कर सीधे-साधे युवक सुरेन्द्र को नवीन युग के साहस का उदाहरण देते हुए फाँसते हैं और विवाह के लिए माता पिता की अवहेलना करके भी तैयार होने को समझाते हैं, किन्तु जब उन्हें सुरेन्द्र से भी अच्छा दूसरा'मुर्गी' मिल जाता है, तो उसे मार्ग के कंटक की तरह छोड़ दिया जाता है। यह है युगीन परिवर्तित जीवन के मानदण्ड, उलझते -जूझते नैतिक चित्र, जो वर्तमान सभ्यता को पनपा रहे हैं।

'थोड़ी दूर का सफर' में लेखक ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से 'घायल की गति घायल जाने' को स्पष्ट किया है। बस मे बैठे सज्जन इसलिए इंसानियत के पक्के हिमायती थे क्योंकि वह अपनी ही तरह दूसरों की तकलीफ को भी महसूस कर रहे थे और दूसरे लोग ! वे मदान्धों की तरह झगड़े पर उतारू थे, कारण—जाके पैर न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियों के कथानकों के निर्माण मे दो प्रकार के साधनों का सहारा लिया है। प्रथम आन्तरिक साधन, द्वितीय बाह्य साधन। यदि आन्तरिक साधन अमूर्त रूप में चरित्रों के माध्यम से कथानक का निर्माण करते है तो बाह्य साधन मूर्त रूप मे क्रमिक घटनाओं आदि के माध्यम से इसे सुनिश्चित रूप प्रदान करते हैं। 'भविष्य के लिए' के कथानक निर्माण में मोहनीके आन्तरिक संघर्ष, रविप्रभा पति और अफसर के संसर्ग से उत्पन्न मानसिक आरोह-अवरोह कथा विकास में स्वाभाविक गति देता है तो दूसरी ओर नौकरी की तलाश मे अफसर से मिलने पर हुआ वार्तालाप और पति से हुआ संघर्ष और मोहनी का वहाँ से भागना आदि बाह्य घटनाएँ कथानक को सुनिश्चित रूप देते हैं। इसी प्रकार 'लाल रेशम का पक्का धागा' मे हमीद और बसो की मनःस्थिति प्रथम व्यापार-प्रणाली का निदर्शन करती है। कहीं-कहीं लेखक ने सामाजिक आलोचना वार्तालाप द्वारा ही की है, और ऐसे स्थानो पर कथानक नहीं के बराबर होता है, वार्तालाप

मुख्य होता है, और उसी बातचीत में *समाज की विकृतियों एवं अन्यमान्यताओं* पर टीका टिप्पणी होने लगती है। *

२. चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कहानियाँ—जो कहानियाँ चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी हैं, उनमें लेखक की प्रतिभा का अच्छा निदर्शन है। लेखक की अधिक कहानियाँ चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी ही हैं। इनका कथानक किसी व्यक्ति विशेष चरित्र पर प्रकाश डालता है। 'चपरासियों की चाय', 'इन्टरव्यू लैटर,' 'लतीफ' 'गोरी के....' 'लंच टाइम' 'मुहना', 'उचक्का', 'पार्टनर', 'आदमी जागेगा', 'चलती हुई रकम', 'लाल रेशम का पतला धागा' और 'शून्य की पूर्ति' आदि रचनाएँ मानवीय चरित्र का सहज विश्लेषण करती हैं। यह चरित्र-विश्लेषण दो प्रकार का है। और इसी आधार पर कथानकों का निर्माण भी दो प्रकार का है। *यदि चरित्र संश्लिष्ट हैं, उनकी मनःस्थिति में गूढ़ ग्रन्थियां हैं तो उनके* चरित्र निर्माण में अन्य प्रेरणाओं के विवरण दिये गये हैं।

'उचक्का' में एक ऐसे व्यक्ति बीरेन बाबू का चरित्र दिया गया है जो अति कठोर और अत्याचारी होते हुए भी धार्मिकता और दयालुता का ढोंग करते हैं। 'आदमी जागेगा' मे शामलाल के चरित्र का विश्लेषण किया है जो *आर्थिक अभाव के कारण अपनी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती पुत्री के हाथ* पीले नहीं कर पाता और अपने पचास वर्षीय मैनेजर हरेन्दर से विवाह करे या न करे, इसी संघर्ष में पड़ा हुआ है। 'मुहना' में मंकू के चरित्र का अच्छा विश्लेषण हुआ है, वह अपने पुत्र को ऊँचा बनाना चाहता है, पढ़ा-लिखा कर होशियार बनाना चाहता है। *'भविष्य के लिए' में मोहनी का चरित्र संश्लिष्ट* है। वह केवल पति द्वारा निकाल दिये जाने पर संसार से संघर्ष को—पुरुष वर्ग को चुनौती देने को तैयार हो जाती है। ऐसे गूढ़ और संश्लिष्ट चरित्र के मनो-विश्लेषण के द्वारा उसकी अनेक कर्म प्रेरणाओं की अवतारणा हुई है। रविप्रभा *उसके चरित्र को उभारने के लिए ही सखसानी है। ओमीलाल भी उसके चरित्र* का निखार करता है और पति की सर्वांग लिप्सा....उसके मन मे असाधारण ऊहापोह को जन्म दे देती है। उसका चरित्र इन सब आश्रयों से और भी अधिक निखर कर सामने आता है।

---

* शून्य की पूर्ति (अष्ट गुरु योग) : डा० प्रभाकरनारायण सक्सेना

दूसरी ओर वे चरित्र जो साधारण मनोग्रन्थियों और रहस्यों के हैं उनमें साधारण कथानक का ही निर्माण किया गया है तथा एक सीधा-सादा सूत्रात्मक कथानक लिया गया है। 'चपरासियों की चाय' 'लंचटाइम' और 'लतीफ' इसी प्रकार के कथानक हैं। 'चपरासियों की चाय' में चपरासियों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है, इसका कथानक केवल लंच टाइम में साहब द्वारा चाय पीना है। गंगादीन, रामसरन और भगवती के साहब अपने-अपने कमरों में चाय पीते हैं और बाद को उनकी केतलियों में बची चाय उनके चपरासी लोग पी लेते हैं। इसी प्रकार 'लंच टाइम' में लंच के समय वर्मा—एक क्लर्क—की मानसिक स्थिति का चित्रण किया गया है। वर्मा घर से भोजन नहीं लाते, किन्तु वहाँ प्रत्येक को खाता देखकर उनकी भी जीभ लपलपा आती है। घोष खाने का निमन्त्रण देता है, किन्तु वर्मा की स्वाभाविक ऊपरी दिखावे वाली वृत्ति इन्कार कर देती है; मन चाह रहा है, अतः एक मेज से दूसरी मेज पर के खाना व्यक्तियों को खाते देखकर उनके भोजन को अपनी आँखों से ही खाने लगते हैं। और 'लतीफ' में भी लतीफ नाम के एक नौकर के द्वारा इस मानवीय वृत्ति का विश्लेषण किया है कि वह अधिक से अधिक लाभ के विषय में सोचता है। धन वृद्धि की आकांक्षा इतनी प्रबल है कि बीच की बाधायें भी उसकी मृगतृष्णा रोक नहीं पातीं।

३. मानसिक संघर्ष और ऊहापोह की कहानियाँ—डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में तीसरे प्रकार के कथानक मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से सम्बन्धित हैं। 'जीवन सिंह' और 'आखिरी खत' आदि इसी प्रकार के कथानक हैं। "आखिरी खत' में नसीमा अपने प्रेमी को पत्र लिखकर अपनी मोहब्बत का इजहार करती है और अपनी पाक मोहब्बत के कई उदाहरण तथा घटनायें पेश करती है। अपने प्रेमावेग में उसको बुरा-भला भी कहती है, पर फिर माफी भी माँग लेती है। उसको परले सिरे का छटा हुआ बदमाश और धूर्त समझती हुई भी चाहती है कि वह पत्र का उत्तर दे और आकर उसे ले जाये। * ऐसी

* बदलते इरादे (आखिरी खत); डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४५.

ही बेबसी और आन्तरिक संघर्ष 'वह चेहरा' नामक कहानी में उभरा है। कहानी का नायक अपनी पत्नी से अगाध स्नेह करता है, अर्थाभाव के कारण परेशान है, क्यों नौकरी नहीं मिलती, बीवी आधा पेट खाकर रहती है, अतः भूखे मरने की अपेक्षा वह पिता के यहाँ ही रहे—यह सोच कर उसे मैके भेज देता है किन्तु पुनः उसका अभाव खटकने लगता है, वह झुंझलाता है, अपनी विवशता पर बौखलाता है, किन्तु फिर पत्नी का चेहरा सामने आ जाता है; उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें, लाल पतले ओंठ, ताजे गुलाब जैसे गाल, -- वह खूबसूरत चेहरा - - - और उसकी सारी झुंझलाहट दूर हो जाती है। *

४. काल्पनिक कहानियाँ— काल्पनिक कहानियों में लेखक यथार्थता के धरातल से दूर गगन की छाँव में टहलने के लिए निकल पड़ता है। पर फिर भी उसकी छाया धरती पर ही पड़ती है। 'जन्नत से बाहर' कुछ इसी प्रकार की कहानी है। और इससे भी अधिक निकट की कहानी है 'सर्पिणी की आकर्षण कथा'। इन दोनों कहानियों के कथानक विवरणात्मक हैं और घटनाक्रम सुनिश्चित हैं। 'जन्नत के बाहर' में नायक स्वप्न में एक छिपकली को अपने ऊपर गिरने से उत्पन्न भय का अनुभव करता है। फिर देखता है उस छिपकली में से एक हसीन परी निकल आयी है और उससे वरदान माँगने को कहती है, किन्तु वह सोच नहीं पाता उससे कौन सा वरदान माँगा जाये, सभी वरदान उसे अधूरे मालूम होते हैं, और तब उसे ऊहापोह में पड़े देख कर परी यह कह कर चली जाती है। कि शायद उसे कुछ नहीं मांगना है। †

'एक सर्पिणी की आकर्षण कथा' में लेखक ने साधारण रूप से नायक के प्रति एक सर्पिणी के प्रेम का वर्णन किया है। नायक पुरुष है—मनुष्य है, फिर भी एक सर्पिणी उससे प्रेम करती है, जब वह सो जाता है तो अपनी कुंडली में उसे कस कर—अपने आलिंगन पाश में आबद्ध कर, स्वयं तृप्ति लेती है। उसके बन्दूक उठा कर मारने को छोड़ी गयी गोली से भी क्रुद्ध नहीं होती। इस

* बदलते इरादे (आखिरी खत): डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११६-१२८

† बदलते इरादे (जन्नत से बाहर) : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १४५

कहानी में लेखक ने एक सर्पिणी की आँखों की चमक का वर्णन किया है। *

५. रोमांचक कहानियाँ—शिकार और भयोत्पादक कहानियों का धरातल मनोहर कहानियों या जासूसी कहानियो जैसा है। इनमें लेखक ने विचित्रता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। शिकार की कहानियो मे 'कुमायुँ का आदमखोर' और 'एक शिकारी की डायरी के कुछ पृष्ठ' आदि अच्छी कहानियाँ है। और जासूसी टाइप की कहानियों में, 'फिल्म का षड़यन्त्र,' 'प्रेमी-प्रेतात्माएँ' और 'मृतात्मा से साक्षात्कार' आदि का नाम लिया जा सकता है। इन कहानियों मे एक ओर भय और रोमांच के क्षणों का स्फुरण है तो दूसरी ओर बौद्धिक धरातल भी कमजोर नहीं है। 'मृतात्मा से साक्षात्कार' इस प्रकार की कहानियों का सुन्दर उदाहरण है। डा० सेन को अपने कमरे में जाकर लाश का पोस्ट मार्टम करके उसकी रिपोर्ट देना है, किन्तु लाश वाले कमरे मे जाते-जाते शाम हो जाती है और फिर भी वे चाहते हैं कि काम शीघ्र ही समाप्त हो जाये। वे कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। इसी समय उन्हें लगता है कि लाश हिल रही है; तब उसकी आत्मा से साक्षात्कार होना है और मन में एक विचित्र प्रकार के भय का संचार होता है। यहाँ लेखक ने नायक के मन के संघर्षों और द्वंद्वो का भी कुशल चित्रण किया है। किन्तु इस प्रकार को जासूसी कहानियों में लेखक की प्रतिभा देखते हुए, उसकी प्रतिभा से हीन उतरती हैं। अन्य कहानियों से इनका स्तर निम्न है। इनमे भय और रोमांच उत्पन्न करने के लिए अतिसाधारण स्तर में कथानक को जटिल मात्र बना दिया गया है।

६. भावात्मक कहानियाँ—किसी व्यक्ति विशेष के प्रति श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने के लिए अथवा मस्तिष्क पर भावनाओं के अतिक्रमण के आवेग में इस प्रकार की कहानियों की रचना हुई है। इनमें लेखक ने मस्तिष्क से अधिक भावुकता का सहारा लिया है। 'जीवन सिंह' और 'स्वर्गीय मिश्र जी' इस प्रकार की कहानियाँ हैं। जीवन सिंह पाँच वर्ष बाद लड़ाई पर से आया है। अपनी विदाई की याद कर उसकी आँखों से आँसू छलछला आते हैं। वह भावना मे बह जाता है व्यथित हो जाता है, माता-पिता की याद कचोटे खाती है और

---

* बरसते हरारे (सर्पिणी की आकर्षण कथा); पृष्ठ ११६–१२८।

वह अपनी कठोरता पर आश्चर्य करता है कि कैसे वह उन्हें रोते-कलपते छोड़ गया था। एक समय वह था जब वह देश की रक्षा के लिए युद्ध पर जाने और मातृभूमि की पावन वेदी पर अपने प्राणों के उत्सर्ग के स्वप्न देखता था; औ जब इसका अवसर मिला तो सब कुछ छोड़ कर चला भी गया था। उसने अप रोती माँ की परवाह नहीं की; रोग से ग्रस्त पिता का ख्याल नहीं किया; औ छोटे भाई का स्नेह भी ठुकरा दिया था। पर घर की वर्तमान दुर्दशा उस निश्चयों को हिला देती है। पर तभी वह अपनी कमजोरी पर विजय पा लेत है और सोचता है.......नहीं, ऐसा नहीं था, आज भी यदि अवसर पड़े तो व अपने देश के किसी भी सपूत की तरह आगे बढ़ कर प्राणों का उत्सर्ग क सकता है। आज भी यदि आवश्यकता हो, तो वह अपने देश के लिए बड़ी बड़ी कुरबानी करने के लिए तैयार है........लेकिन क्या स्वदेश के लिए प्राण का बलिदान करने का उसने जो स्वप्न देखा था, वह उसकी कल्पना के अनुरू सिद्ध हुआ था ?—*

'स्व० मिश्र जी' कहानी भावात्मक कहानी होने के साथ ही उसे शब्द चित्र भी कहा जा सकता है। लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्वान एवं प्रिय प्रोफे सर श्री व्रजकिशोर जी मिश्र के आसामयिक निधन की सूचना प्राप्त होने प लेखक के मस्तिष्क मे उनकी रूप रेखा उभरती है और वह उनसे प्रभावित होने के कारण उनके व्यक्तित्व और स्वभाव का भावात्मक चित्रण करने के बाद निधन की घटना का उल्लेख करता है। इस कहानी में लेखक की भाषा कोमल और भावुक हो गयी है और बुद्धि पर जैसे हृदय का प्रभाव दिखाई देता है।

स्वरूप की दृष्टि से इनकी कहानियों के कथानकों में कथावस्तु के तीनों प्रकार मिलते हैं।

१. घटना प्रधान कथानक
२. चरित्र प्रधान कथानक
३. भाव प्रधान कथानक

पहले जिन छै: आधारों पर डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के कथानक की समीक्षा की गई है उनमें ये तीनों प्रकार के कथानक आ जाते हैं।

* दे० बदलते इरादे (जीवन सिंह), पृष्ठ १०१-१०२

सोद्देश्य सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियों तथा शिकार और भय आदि उत्पादक कहानियों के कथानक घटना प्रधान कथानक हैं । चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कहानियो तथा मानसिक संघर्ष और ऊहापोह वाली कहानियों के कथानक चरित्र प्रधान कथानक हैं तथा काल्पनिक कहानियों और भावात्मक कहानियों के कथानक भाव प्रधान कथानक हैं । इस विभाजन को करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि यह वर्गीकरण स्थूल रूप से ही है क्योकि हर प्रकार का कथानक किसी न किसी रूप में प्रत्येक कहानी में मिल जाता है । सामाजिक आलोचना सम्बन्धी कहानियाँ चरित्र प्रधान कहानियों मे भी मिलती हैं यथा–'लंच टाइम' और 'अष्ट गृह योग' आदि; और इसी प्रकार मानसिक ऊहापोह की कहानियों में भी भावुकता और घटना प्रधान कथानक प्राप्त होता है; अतः प्रश्न गौणता और मुख्यता का है ।

समग्र रूप से देखा जाये तो डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ अधिकतर चरित्र प्रधान हैं । इनमें घटना और संयोग गौण है तथा चरित्र चित्रण और विशेषता ही मुख्य है । कथासूत्र किसी मुख्य पात्र के चरित्र की रेखाओ मे अपना विकास पाता है । इनकी कहानियो के कथानकों मे चरित्र विश्लेषण अथवा चरित्र अध्ययन की दृष्टि से कार्य व्यापार दिये गये हैं । अतः उनका रूप कलात्मक और अपेक्षाकृत सूक्ष्म है, क्योंकि इन वाह्य घटनाओ से कथानक मे आरोहावरोह नही आता वरन् चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व, पात्रों की मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियों मे व्यक्त होने वाली उनकी समस्त चरित्रगत विशेषतायें उसके निर्माण मे चरितार्थ होती हैं । शून्य की पूर्ति, भेद की बात, इन्टरव्यू लेटर, जीवन सिंह, लंच टाइम, उचक्का, चपरासियों की चाय, ठहराव, भविष्य के लिए, और आदमी जायेगा आदि कहानिया उनकी इस प्रकार की कहानियो के उदाहरण मे प्रस्तुत की जा सकती हैं ।

वस्तु विन्यास की दृष्टि से कथानक के तीनो अगों का १. आरम्भ २ मध्य और ३. चरम सीमा अथवा अन्त का डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में निर्वाह हुआ है । किन्तु कहानी के आरंभ और अन्त भाग पर ही विशेष बल दिया गया है । आज की कहानी कला की तरह उनकी कहानियों मे कथा वस्तु है, घटनायें हैं, संघर्ष है, लेकिन इनका सम्बन्ध वाह्य व्यापारो से न होकर मनः मस्तिष्क से हो गया है । इनके विकास मे कौतूहल और

जिज्ञासा की तीव्रता है लेकिन स्तर भावुकता से हट कर बौद्धिक हो गया है। चरमसीमा भी है, किन्तु यह चरमसीमा किसी घटना अथवा संयोग पर आधारित नहीं है कि रूप-वसन्त कहानी की तरह दोनों पात्र बाद में मिल कर अपना राज-पाट प्राप्त कर लेते है और सौतेली माँ प्रायश्चित की अग्नि में जलती रहती है वरन् पुरुष या स्त्री की ऐसी मनोदशा की सीमा है—चरमसीमा है जो एकाएक अपने खोये हुए आनन्द और शान्ति को पा लेते हैं अथवा किसी एक निष्कर्षात्मक तथ्य पर आ जाते हैं।

वस्तुतः आधुनिक कहानी कला की तरह * डा. प्रतापनारायण टंडन की कहानियों मे कहानी कला के मूल तत्वों में परिवर्तन नहीं हुआ है, वरन् उन तत्वों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित हुआ है तथा, उनके विकास में ओ हेनरी की कहानी अन्तिम पत्ती तथा मोपांसा (फ्रांस) की कहानी नैकलेस की तरह उनके विन्यास में आश्चर्य जनक विकास हुआ है †

पात्र और चरित्र-चित्रण

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के पात्र सर्वथा सजीव और स्वाभाविक है। इनका आविर्भाव कल्पना की बहुरंगी छाया भूमि से न होकर उनकी

* The modern story tellers have changed their nature. There is still adventure, but it is now an adventure of the mind. There is suspense, but it is less a nervous suspense then an emotional or intellectual suspense. There is a climax, but it is not the climax of a woman who discovers her lost jewells in the hat box, but the climax of the woman who discovers her lost happiness in a memory......Seon O. Faalain.
The Short story, Page. 164.

† कहानी कला की समीक्षा, पृष्ठ ३२६

आत्मानुभूति के धरातल से हुआ है। फलतः कहानियों के पात्रों और पाठकों में सरलता से साधारणीकरण हो जाता है। इनकी कहानियों में लोकोत्तर पात्रों की कहीं कल्पना नहीं मिलती। इन्होने जीवन—सामान्य जीवन—को स्पर्श किया है जो मानव संघर्षो और युग चेतना का प्रतीक है। *

कहानी में चरित्र चित्रण का महत्व सबसे अधिक है। कलात्मक दृष्टि से एक ओर कहानी की संक्षिप्त सीमा के कारण चरित्र का विकास दिखाने का बहुत कम अवसर रहता है, दूसरी ओर चरित्र-चित्रण की संभावनाएँ इतनी सीमित रहती हैं कि उनसे चरित्रों को स्पष्ट करना परम हस्तलाघव की परीक्षा है। पात्रों के रूप, रंग और अन्य स्थितियों का चित्रण करने का अवसर ही नहीं रहता, वहाँ तो गागर में सागर भरने का प्रश्न रहता है, फिर भी अवस्था, रूप और रंग का विवरण देने से पात्रो की रुचि और मानसिक स्थिति का परिचय मिल जाता है, इससे उस चरित्र पर व्यापक प्रकाश पड़ जाता है। डा० प्रताप-नारायण टण्डन की कहानियों मे सर्वत्र तो नहीं, हाँ यदा-कदा इसका भी विवरण मिल जाता है। 'मुनिया' कहानी में सविता का चित्र देते समय लेखक ने उसके वस्त्र-विन्यास आदि का भी चित्रण किया है। यथा—'सविता चुपचाप अपने घुटनों पर अपना सिर झुकाए बैठी थी। उसके बाल एक साथ मोड कर एक चोटी में बंधे और उनमें से कुछ खुल कर उसके चेहरे के सामने फहरा रहे थे। उसके माथे पर एक बड़ी सी लाल बिन्दी चिपकी हुई थी और मांग का सिन्दूर कई दिन पहले का लगा होने के कारण धुंधला हो गया था......उसके बदन पर एक मामूली सूती रंगीन साड़ी थी और उसी के रंग से मिलता-जुलता सूती ब्लाउज। उसके हाथो मे आधी-आधी कलाइयों तक चूड़ियाँ उसकी सुरुचि का परिचय दे रही थी। उसके हाथों और पैरों के नाखूनों में लगी हुई सुर्खी आधी ही रह गई थी। काजल से अछूती आँखें, पाउडर से रहित गाल, फीके बादामी होंठ और उनके पीछे छिपे हुए चाँदी जैसे दाँत !"†

---

* हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल पृष्ठ ३३१

† मुनिया (बदलते इरादे) : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २६–२७

व्यावहारिक दृष्टि से डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में चरित्र-चित्रण के लिए चार साधनों का उपयोग किया गया है : वर्णन, संकेत, कथोपकथन और घटना व्यापार। नीचे इनके विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिससे इनका विशद परिचय प्राप्त हो जायेगा—

१. वर्णन द्वारा—(१) मैं ग्रेजुएट था—तीन साल से बेकार। माँ-बाप तो न मालूम कब के इस संसार से विदा हो चुके थे और भाई-बहिन कोई था नहीं इसलिए बेकारी कोई खास बुरी नहीं मालूम होती थी। फिर भी रोटी-कपड़े का सवाल तो सामने रहता ही था........मैं अपने दोस्त का एहसानमंद था जो उन दिनों वक्त बेवक्त मेरी मदद कर दिया करता था; अगरचे उसकी बीबी उसे हमेशा उस काम के लिए लानत भेजा करती थी। लेकिन मेरा दोस्त इतने पर भी मेरी मदद को तैयार रहता था बिना अपनी बीबी की परवाह किये। हालाँकि मैं भी उसे अक्सर यह समझाने की कोशिश किया करता था कि भाई, मेरे पीछे तुम क्यों अपनी जिन्दगी में कड़वाहट लाते हो। लेकिन फिर भी वह ऐसा करने से बाज नहीं आता था और उसे अपना फर्ज बताता था। *

(२) आज जीवन सिंह अपने आपको बहुत निराश अनुभव कर रहा था। देश सेवा और प्राणोत्सर्ग की भावना आज उसके हृदय की वस्तु नहीं रही थी।........युद्ध का आतंक उसके रोम-रोम पर छा गया था। क्या यह वही आदर्श था जिसके लिए उसने अपने माँ-बाप और भाई को छोड़ दिया था?.... सचमुच, ऐसा उसने नहीं सोचा था........इस सबकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी।†

२. संकेत द्वारा—थोड़ा वक्त और बीतना है।........कमरे में अन्धेरा हो जाता है। मैं पलंग से सामने की खुली खिड़की से बाहर आसमान की ओर देखने लगता हूँ। मेरी निगाह इधर उधर भटकती रहती है—एक किनारे से दूसरे किनारे की तरह। मैं अपने सामने, धीरे-धीरे ऊपर उठते हुए चाँद को कुछ देर

* बदलते इरादे (इन्टरव्यू लेटर) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १२-१३

† बदलते इरादे (जीवन सिंह) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०१

देखता रह जाता हूँ। यह चाँद, ये सितारे और यह दुनियाँ.........*

३—मैं चाँद को देखता हूँ, चाँद में सोती परियों को राजकुमारी को निहारता हूँ। लगता है जैसे उसकी आँखों में एक प्रकार का सम्मोहन है। वह प्रकाश की एक क्षीण परन्तु अटूट किरण के रूप में अपनी बाँह फैलाती है। उसकी दृष्टि में सुनयना का सा मोह है। †

३. कथोपकथन द्वारा—(९) जैसे ही चपरासी ने आकर कहा—"जाइये बुलाते हैं" वैसे ही मैं चिक हटाकर भीतर घुसी।

"आइये, आइये ! यहाँ तशरीफ रखिये,"

—मैंने देखा, वह व्यक्ति कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो गया था और सामने पड़ी एक बढ़िया कुर्सी की तरफ इशारा कर रहा था। मैं सकुचाती हुई चुप-चाप बैठ गई।

"हाँ अब बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

"मैं आपको थोड़ी तकलीफ........"

"हाँ, हाँ।" वह और भी उत्सुकता दिखाता हुआ और निगाह को मेरे शरीर पर गड़ाता मेज पर आगे झुक आया—"बोलिये मैं क्या कर सकता हूँ आपके लिए ?"

"जी मुझे रविप्रभा ने भेजा है।"

"ओ हो......." जैसे वह खुशी में भर कर हँस पड़ा "उन्होंने भेजा है आपको ?"

"जी।"

"अच्छा हाँ, याद आया........कुछ पढ़ी-लिखी हैं या.......?"

—उसने घूर कर पूछा।

"जी हाँ ऑफिस का काम कर लूँगी।" मैंने सिर झुकाए ही झुकाए कहा।

---

* बदलते इरादे, पृष्ठ ६०

† शून्य की पूर्ति : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १८

"तो ठीक है फिर, हमारे यहाँ क्लर्क की जगह खाली है उसी पर हम आपको रख लेंगे।"

"जी शुक्रिया इसके लिए बहुत-बहुत शुक्रिया।"

"अजी शुक्रिया की क्या बात है। आपके लिए......"

"तो कब तक आऊँ मैं—अगले सप्ताह मे ?" मैं खड़ी होती हुई बोली।

"अजी अभी बैठिये भी ! चाय पीकर जाइयेगा।"

"जी शुक्रिया ! इस वक्त तो चाय की इच्छा नहीं है। आप मुझे तारीख बता दीजिये। मैं उसी तारीख को आ जाऊँगी।'

"मैं यह सोच रहा हूँ कि यदि आप कल से ही काम करने आ क्या बुरा है !"

"मैं बहुत शुक्रगुजार होऊँगी......" मैं आशान्वित होकर बोली।

"जी नहीं, शुक्रगुजारी का क्या बात है, मै तो खुद ही आपकी इनायत का ......"

"जी......"मैंने कुछ तीखी आवाज में कहा।

"हाँ साहब—" वह असभ्यता से हँसने लगा।

"यह जगह कितने वेतन की है ?" मैंने क्रोध को दबाते हुए पूछा।

"यों वेतन तो पच्चासी रुपये है, मगर आपके लिए......सच पूछि यह आपके ही ऊपर है कितना वेतन आपको दिया जाये......"

"क्या मतलब ?"

"अगर आप साफ-साफ मतलब जानना चाहती हैं......" वह अस से हँसा।

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर ताका।

"हाँ साहब" उसने उद्दण्डता से मेरा हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए द लगा। "तो......"

"नीच कहीं के कुत्ते......"*

---

* बदलते इरादे (भविष्य के लिए) : डा० प्रतापनारायण ट पृष्ठ २१६-२१९

(२) "...छोटे बबुआ लक्ष्मी जी बड़ी चचल होती हैं, पैसा बड़ी मुश्किल से जुड़ता है।"

"साहू बाबा;" मैने उन्होंने टोकते हुए कहा—"मैं वह सारा भेद यहाँ आकर और आपसे मिल कर समझ गया।"

"क्या समझ गये।"

"यही कि पैसा कैसे जोड़ा जाता है।"

"तुम कुछ नहीं समझे।"

"नही दादा जी मैं सब कुछ समझ गया।"

"अच्छा बताओ क्या समझे ?" उन्होने चुनौती भरी आवाज में कहा।

"यही कि करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक होते हुए भी आप अपना रहन-सहन बहुत मामूली रखते हैं, केवल अंगोछा पहने हैं, किसी तरह की कोई तड़क भड़क नही रखते, घर मे नौकर न रख कर सारा काम खुद करते हैं, और सबसे बड़ी बात मैने यह समझी कि आपने यह जान कर कि मैं दस पन्द्रह मिनट बैठूगा, यह अन्धा दीवा भी बुझा दिया, जिसमें तेल जलने से बचे। मै समझ गया साहू बाबा, पैसा ऐसे ही जुड़ता है।"

"नही छोटे बबुआ तुम कुछ नहीं समझे।" साहू बडी बाबा यूढ हँसी हँसते हुए बोले—"बेटा तुम्हें यह नही पता कि दीवा बुझा कर मैने सिर्फ तेल ही जलने से नहीं बचाया, बल्कि अंधेरा होने पर पहना हुआ अंगोछा भी खोलकर रख दिया है। छोटे लाला...पैसा बड़ी मुश्किल से जुड़ता है।"*

इन समस्त उद्धरणों में पहले के (१) में वर्णन द्वारा हमदर्द मित्र का और उसकी कर्कशा पत्नी का चरित्रांकन किया है और (२) मे युद्ध की विभीषिका से आतंकित शौर्यवान सैनिक का चरित्र चित्रण है। संकेत द्वारा चरित्र चित्रण के उद्धरण नं० एक मे आसमान, तारे और अन्धेरे का संकेत कर नायक अपनी पत्नी के प्रति अपनी भावनायें व्यक्त करता है। उसे पत्नी के बिना सभी जीवन अन्धकार मय लगता है। उद्धरण नं० दो में मृत्यु की गोद मे जाता हुआ रोगी एक छोटी बालिका सुनयना की उन्मुक्त हँसी और भावुक भोलेपन से भरे

---

* शून्य की पूर्ति (भेद की बात): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ५४-५५

चरित्र को चाँद के धब्बे के संकेत द्वारा चित्रित करके उसकी निश्छलता घोषित करता है। कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण के उदाहरण नं० १ में एक वासना-शील अफसर और दृढ़ चरित्रा युवती का चित्रण किया गया है और दूसरे उदा-हरण में एक ऐसे लालची सेठ का चरित्र चित्रण है जो करोड़पति होते हुए भी एक-एक पैसे पर जान देता है—कंजूसी की सीमा पार कर देता है।

४. घटना कार्य व्यापार द्वारा—चौथे प्रकार का चरित्र चित्रण घटना देकर चरित्रांकन है। इसमें लेखक अपनी समीक्षा नहीं देता, तथ्य का यथारूप निरू-पण मात्र कर देता है। 'लाल रेशम का पतला धागा' कहानी में हमीद और बंसो का चरित्र इसका अच्छा उदाहरण है। यथा—

'एक दिन उसने (हमीद) घर लौटती हुई बंसो को देख कर पीछे से सीटी बजाई। बंसो रुकी और मुड़ कर उसकी ओर देखने लगी। हमीद ने गिलट का एक रुपया ठन्न से अपनी अंगुलियों से ठनका कर ऊपर उछाला और फिर बंसो की तरफ बढ़ा कर इशारा किया। बंसो की आँखें जो अभी तक भोलेपन से भरी हुई थीं, अब गुस्से और शरम से भर गईं'। वह जल्दी-जल्दी कदम रखती हुई भाग गई। *

अज्ञेय की तरह डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानी कला की आत्मा व्यक्ति चरित्र के केन्द्रबिन्दु से निर्मित हुई है। उन्होंने अपनी कहानियों में जितने भी सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक और नैतिक प्रश्नों को लिया है उनमें उन सबका अध्ययन व्यक्तिगत धरातल पर किया है। यद्यपि एक दो कहानियाँ इसका अपवाद भी दीखती हैं किन्तु उनके अन्तर में आलोचना एक ही सूत्र से दिखायी देगी। जैनेन्द्र और अज्ञेय की तरह डा. प्रतापनारायण टण्डन भी अपने दर्शन के चरित्र के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चरित्र-चित्रण—व्यापक दृष्टि से चरित्र अव-तारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई है। उनके चरित्रों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही विशेष रूप से काम कर रहा है—यद्यपि अद्भुत और विरोधात्मक रूप भी कम नहीं मिलता।

* डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ६०

अहरूप—व्यक्ति चरित्र को कहानी कला का मूलाधार बनाने के कारण डा. प्रतापनारायण टण्डन के चरित्र मूलतः व्यक्तिवादी हो गये हैं। और यह व्यक्तिवादी चरित्र प्रायः सामान्य न होकर विशिष्ट हो गये हैं। कारण यह है कि उनका विकास 'मैं' में ही दिखाया गया है। प्रथम तो डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के पात्रों का अहंरूप व्यक्तिपरक है किन्तु बाद में इतना व्यापक होने लगता है कि उसके माध्यम से अन्य चरित्रों का भी विकास होने लगता है। इस व्यापक रूप से चरित्र की अवतारणा में कही स्मृति में चरित्र उभरता है तो कही जीवन के विभिन्न घटना व्यापारों मे। यथा—

"पंडित जी की सौम्य मूर्ति स्वभाव सुलभ मुद्रा मे सोयी हुई है, एक शांति पूर्ण निद्रा, चेहरे पर नैसर्गिक सतता। अंतिम दर्शन।.... प्राप्त सूचनाओं के आधार पर एक धुंधला चित्र उभरता है....शव यात्रा...शहर के कोने-कोने से लोग पहुँचते हैं। आसपास के नगरों से निकट सम्बन्धी आ जाते हैं। बदहवास से, अविश्वास से, विश्वास करते हुए। समाज के शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन ऊँचे-नीचे, शासक-शासित, सभी वर्गों के व्यक्ति। मरे हुए हृदय और अश्रु पूर्ण नेत्र, कंपित स्वर, रोमांचकारी शरीर श्मशान की मोक्ष भूमि में चिता पर रखे पार्थिव शरीर के अन्तिम संस्कार के दर्शन, महान् आत्मा के निर्वाण के साक्षी।" *

इस उद्धरण मे सोचने वाले 'मैं' ने एक साथ एक महान् व्यक्ति के स्वर्गवास पर उपस्थित लोगों का शब्द चित्र दे दिया है और चरित्र चित्रण का क्षेत्र व्यापक कर दिया है जो किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित न रह कर समष्टि का द्योतक हो गया है।

विद्रोहात्मक चरित्र—विद्रोह के धरातल पर आविर्भूत चरित्र सामाजिक और व्यक्तिगत प्रश्नों को लेकर आये हैं। लेकिन इस व्यक्तिगत विद्रोहों का समावेश भी सामाजिक प्रश्नों मे ही हो गया है। अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत विद्रोह भी सामाजिक आलोचना और समाज से उत्पन्न भ्रान्तियों के प्रति विद्रोह है। कहीं-कहीं यह विद्रोहात्मक रूप बड़ा भाव पूर्ण और सफल है यहाँ विद्रोह

* पूज्य की मूर्ति (स्वर्गीय मिश्र जी): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १६७-१७०।

प्रतीत नहीं होता अपनी झलक मात्र दिखाता है। 'शून्य की पूर्ति' कहानी में इसी प्रकार का विद्रोह है। प्रत्येक व्यक्ति को मरने से भय लगता है। कोई मरना नहीं चाहता। जीवन सबको अच्छा लगता है। चाहे वह मृत्यु की देहरी पर ही क्यों न खड़ा हो इसका नायक टी. बी. का मरीज है, किसी भी समय मृत्यु उसका आलिंगन कर सकती है, उसे मृत्यु से भय लग रहा है, किन्तु तभी सुनयना नामकी एक छोटी सी बालिका से उसका परिचय होता है और वार्तालाप से उसका भय भाग जाता है। यहाँ लेखक ने मृत्यु के भय के प्रति विद्रोह का सजीव चित्रण किया है। यथा—"सुनयना की बातें मुझे आत्म संबोधन सी लगती हैं, जैसे अपने आप से बात कर रहा होऊँ, अपने अन्तर से कुछ पा रहा होऊँ, अकृत्रिम, लेकिन स्वप्निल यथार्थ का बोधक—

सुनयना की बड़ी-बड़ी आँखें अनिर्वचनीय चमक से भर गयी हैं। उसकी आँखों की गहराई मुझे बांध रही है। यह बन्धन केवल बंधन ही नहीं है, यह मुक्ति भी होगा। मेरे मृत्यु के समीप पहुँचने के अन्तराल का एक आवश्यक क्षण............एक विराम, जो संबल होगा, एक उपलब्धि, एक तृप्ति.... एक ऐसा अपरिचित क्षण जिसे अन्यत्र खोजना व्यर्थ होता रहा था।

'अब मुझे लगता है कि मैं मर सकता हूँ बिना किसी भय अथवा दुख के, क्योंकि वह पल मैं जी चुका हूँ, जब व्यक्ति मरने का फैसला करता है। वह यही पल था। अब मौत की पीड़ा मुझे नहीं सालेगी। ....मेरा मन अब हल्का हो गया है।——

————सूरज की सुनहरी धूप ढलती हुई ऊँची पहाड़ियों का अन्तिम बार स्पर्श करके विदा हो चुकी है। धीरे-धीरे झिलमिल शांति फैलती जा रही है। ————ओ मृत्यु! आ, अब मैं प्रस्तुत हूँ।"*

सामाजिक विद्रोह के प्रमाण में 'भविष्य के लिए' और 'आदमी जागेगा' कहानियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। इनमें सामाजिक विषमताओं और क्रूरताओं के नग्न यथार्थ बोध के साथ ही उनके प्रति विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया के सहज ग्राही संवेगों की भी कुशल अभिव्यक्ति है। 'भविष्य के लिए' कहानी को

* शून्य की पूर्ति : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १५-१६।

नायिका मोहनी एक ऐसी नारी है जो सतत संघर्ष शीला है—विद्रोह का जाज्वल्यमान प्रतीक है। उसके हृदय में स्वार्थी पुरुषों के प्रति विद्रोह है जो अफसरी का लबादा ओढ कर जरूरत मंद नारियों के सतीत्व का अपहरण कर नौकरी देने का आवरण डालते हैं। * उसके हृदय मे उन विलासी पतियों के प्रति विद्रोह है जो कामुकता के मद में अन्धे होकर नारी को मात्र विलास की वस्तु समझते हैं।† उसके हृदय में समाज के उन ठेकेदारों के प्रति विद्रोह है जो पुरुष की इस पाशविक वृत्ति को महज इसलिए प्रोत्साहन देते हैं कि नारी अपने पैरों पर खड़ी नही होती, खाने पीने के मामले मे पुरुष की मुखापेक्षी है।‡ उसके हृदय मे नारी की उस निर्बलता के प्रति द्रोह है जिसके कारण वह पुरुष की दासी बनी हुई है।* वह सोचती है –"बहुत से पुरुष इस तरह नीच वृत्ति वाले होते हैं। किसी की विवशता या कमजोरी से भरपूर लाभ उठाने वाले पशु। मेरा मन घृणा से भर गया। ———मुझे लगा संसार में बहुत सी बुराइयाँ हैं, जीवन के हर क्षेत्र में हैं। ....उनके आगे सिर नहीं झुकाना होगा, इनसे किसी प्रकार समझौता नहीं करना होगा, बल्कि इनका विरोध करना होगा, अन्त करना होगा।

.. ..क्या अधिकार है मेरे पति को मुझे इस प्रकार घर से निकाल कर मेरे सब अधिकारों को ले लेने का ? क्या अधिकार है उन्हें मुझे राह की भिखारिन बना देने का ? क्या मैं उनकी विवाहिता स्त्री नहीं हूँ ? मैंने सोचा कि मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। यदि वे मेरे साथ रहना नहीं चाहते तो न रहें, इसके लिए वे स्वतन्त्र हैं। मगर उन्हें मुझे मेरे समस्त अधिकारों से वंचित कर देने का कोई हक नहीं है। मेरी स्वतन्त्रता का हनन करने का कोई अधिकार नहीं है।"□

---

* देखिये भविष्य के लिये '(बदलते इरादे) डाक्टर प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ २१८-२१९।

† वही, पृष्ठ, २२०-२२४।

‡ वही, पृष्ठ, २२४-२२६।

* वही, पृष्ठ, २२७।

□ वही, पृष्ठ, २२७-२२१।

अन्त में मोहनी, इस विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया से जनित विचारों की भाव पीठिका में निर्णय करती है कि—"मैं लड़ूंगी, संघर्ष करूंगी—अत्याचार के विरुद्ध, अनाचार, के विरुद्ध, शोषण के विरुद्ध, अपने चरित्र-निर्माण के लिए, अपने नये जीवन के लिए, अपनी स्वतन्त्रता के लिए, अपने अधिकारों के लिए, अपने भविष्य के लिए........*

'आदमी जागेगा' कहानी भी इसी प्रकार के चरित्र को लिए हुए है। श्यामलाल का वेतन इतना कम है कि वह अपना पेट ही दोनों जून मुश्किल से भर पाता है फिर वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली अपनी बेटी प्रकाश के जो बाइस वर्ष की हो गई थी, कैसे हाथ पीले है; लड़के तो सोने से तुलना चाहते हैं। इस विषम स्थिति में उसकी फर्म—जिसमें वह काम करता है—का मैनेजर हरेन्दर प्रकाश से विवाह को उत्सुक है, साथ ही खर्चे को पाँच हजार रूपये भी दे रहा है, पर वह कब्र में पैर लटकाये हुए है, एक दुविधा और भी है, हरेन्दर के हाथों में बहुत कुछ है। वह उसे नौकरी से भी निकलवा सकता है, तरक्की भी करा सकता है। इधर जोर भी बहुत दे रहा है। इसी मानसिक अतर्द्वन्द्व में उसे निर्णय लेना है। देखिये—

'दफ्तर से चलने का वक्त हुआ तो हरेन्दर ने फिर बुलवा भेजा। पूछा-"क्या फैसला किया ?"

श्यामलाल के हृदय में भीषण संघर्ष हो रहा था। कहाँ अल्हड़ प्रकाश और कहाँ यह खूसट बूढ़ा !

उसे चुप देख कर हरेन्दर मुस्कुराया और मेज की दराज से रुपयों की गड्डी निकाल कर उसकी उसकी ओर बढ़ा दी।

............श्यामलाल के हृदय में एक नई आशा दौड़ गयी और अपनी पुत्री के लिए एक सहज ममता उमड़ पड़ी।

'लो' हरेन्दर उसे हिचकिचाते देख कर नोटों की गड्डी उसकी जेब में रखने लगा तो श्यामलाल ने उसके हाथ से गड्डी छीन कर उसके मुँह पर खींच

---

* भविष्य के लिये (बदलते इरादे) डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ, २२६

मारी और बाहर सड़क पर निकल आया।*

विश्लेषण—विश्लेषण का आग्रह डा० प्रतापनारायण टण्डन के चरित्रों मे सबसे अधिक है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर चरित्रों की अवतारणा करते समय लेखक ने इन चरित्रों में कर्म प्रेरणाओं, मनः स्थितियों, तथा स्वभावों का सूक्ष्म आकलन किया है।

यह चरित्र विश्लेषण तीन प्रकार से किया गया है—

१. निरपेक्ष विश्यलेण : अन्य पुरुष का विश्लेषण

२. आत्म-विश्लेषण : स्वयं अपने विषय में अपना विश्लेषण

३. मानसिक ऊहापोह द्वारा विश्लेषण : चिन्तन और मनन द्वारा आत्म विश्लेषण।

१. निरपेक्ष विश्लेषण—निरपेक्ष विश्लेषण मे टण्डन जी ने चिन्तन के रूप में विश्लेषण किया है। इसमे लेखक तटस्थ होकर किसी चरित्र विशेष का विश्लेषण कर रहा है। 'सुहना' कहानी में अशिक्षित मंकू का बच्चे की ममता से पूर्ण चरित्र विश्लेषण देखिये—

"...एक बार तो उसे घोर निराशा सी होने लगती है, और उसकी आँखें डबडबा आती है, परन्तु दूसरे ही पल उसमें फिर से एक नई आशा की लहर दौड़ पड़ती है। वह अपने भय से काँपते और रोते कलपते बच्चे को पुचकार कर चुप कराता है, गोद में लेकर उसका दुलार करता है और उसे समझाता है कि वही उसकी आशाओं का केन्द्र है और उसकी एक मात्र कामना यही है कि वह पढ लिख कर भला आदमी बने, क्योंकि वह अपना पेट काट-काट कर, भूखे रह-रह कर, जाड़े ठिठुरते हुए काटकर, अनेक विरोध सहकर किसी भी तरह से बराबर उसकी पढ़ाई के लिए खच जुटा देता है।'†

२. आत्म विश्लेषण—डा. प्रतापनारायण टंडन की कहानियों के पात्रों के चरित्रों में इस प्रवृत्ति की प्रेरणा हम सबसे अधिक पाते हैं। उनकी अनेक

*आदमी जागेगा (बदलते इरादे): डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. २६४-६५

† सुहना (बदलते इरादे) पृष्ठ १३३-१३४।

उत्कृष्ट कहानियाँ चरित्र के आत्म विश्लेषण पर ही आधारित हैं। यथा:–भविष्य के लिए, इन्टरव्यू लैटर, बदलते इरादे, ठहराव, शून्य की पूर्ति, आदि। आत्म विश्लेषण की स्थिति में चरित्र अपनी स्मृतियों, चिन्तनों, आत्म कथाओं और अन्तर्कथाओं द्वारा इसको चरितार्थ करता है। 'बदलते इरादे' कहानी में समूची कहानी में आत्म विश्लेषण की समस्त संभावनाओं, और स्थितियों का ही विश्लेषण है—पूरी की पूरी कहानी आत्मविश्लेषणात्मक है। अन्त में उसके सम्पूर्ण आत्मविश्लेषण को की निष्पत्ति होती है। इस कहानी का नायक कई दिन पूर्व अपनी पत्नी को उसके मैके भेज कर घर आता है इस विचार से कि कुछ दिन बढ़िया छनेगी। किन्तु उसकी मानसिक स्थिति परिवर्तित होती रहती है। पत्नी के पत्र उसको मानसिक ऊहापोह में डाल देते हैं। अन्त में—

''''मैं सोचता हूँ कुछ भी हो, अभी मैं अपनी बीवी को लेने नहीं जाऊँगा लेकिन थोड़ी ही देर में मेरा इरादा बदल जाता है और मैं तय कर लेता हूँ कि एक दो ही दिन में जाकर उसे ले आऊँगा। और यह ख्याल आते ही मुझे अपनी बीवी का हसीन, गोरा चेहरा याद आ जाता है। देखता हूँ उसकी बड़ी खूबसूरत आँखों में ढलकते मोती जैसे आंसू, ।...मैं महसूस करता हूँ, उसकी गर्म-गर्म साँसें। उसके मोती जैसे आँसू मेरे गालों पर झरते हैं। और मैं महसूस करता हूँ, उनकी गरमाहट। *

३. मानसिक ऊहापोह द्वारा विश्लेषण—में लेखक ने व्यक्ति चरित्रों की कुशल अवतारणा की है। जैनेन्द्र की तरह डा. प्रतापनारायण टण्डन के चरित्र मानसिक ग्रन्थियों में उलझे हुए हैं। शून्य की पूर्ति, भविष्य के लिए, आदमी जागेगा आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं,। 'लाल रेशम का पतला धागा' कहानी में हमीद की मानसिक ऊहपोह का अच्छा विश्लेषण किया गया है। यथा—

'शाम को भी उस दिन हमीद का मन कोई खास नहीं लगा। बेकार की फिकरेबाजी और छेड़-छाड़ में उसे मजा नहीं आया। अलावा इसके उसे उस दिन शाम को कोई अच्छी सूरत भी दिखायी नहीं दी थी। वही मनहूस, चूमे

---

* बदलते इरादे, पृष्ठ ६२-६३।

हुए, चिपके, बदसूरत, नकली मालूम होने वाले चेहरे, वही बनावटी सिंगार, और....उसके मन में रह-रहकर वंसों की सूरत ही आकर ठहर जाती। वंसों की बात दूसरी है। जात की कहारिन है तो क्या, रंग-रूप में बड़ियों को मात कर दे। बस हाथ चढ़ने की बात है फिर तो हमीद उसे चुटकियों मे ठिकाने लगा देगा। हमीद के सामने उसकी बिसात ही क्या है—

'..........हमीद निहाल हो गया। उसने समझा किला फतह हो गया। उसकी इच्छा हुई आगे बढ़कर इस शोख लड़की को अपनी बाँहों में भर ले। लेकिन उसने धीरज से काम लिया। वैसे ही खड़ा उसकी हरकतें देखता रहा।*

इसी प्रकार 'आदमी जागेगा' में श्याम लाल का अन्तर्द्वन्द्व दृष्टव्य है। यथा—

'श्याम लाल के हृदय मे भीषण संघर्ष हो रहा था। कहाँ अल्हड़ प्रकाश और कहाँ यह खूसट बूढ़ा!

........एक पल मे उसने निश्चय कर लिया कि वह ऐसा नहीं करेगा। यह अन्याय वह अपनी एकलौती कन्या के साथ नहीं कर सकता। उसका हाथ वह इस आदमी के हाथ मे नहीं दे सकता, जो अपना एक पैर कब्र मे लटकाये बैठा है। फिर क्या किया जाये? इस विवशता से मुक्ति पाने का उपाय क्या है? संघर्ष? हाँ संघर्ष! संघर्ष करना पड़ेगा। चेतना को जाग्रत करना होगा। आदमी को जागना होगा। वह जागेगा।' †

चरित्र की दिशा में उक्त जितने भी विधान प्रयुक्त हुए हैं उन सबका मूल आधार मनोविज्ञान ही है। लेकिन एक बात दृष्टव्य है कि चरित्र की दिशा में इतनी ऊँची भूमिकाएँ (चरित्र की मनोवैज्ञानिक अवतारणा चरित्रों का सांगोपांग विश्लेषण और व्यक्तित्व की प्रतिष्ठापना) होते हुए भी अज्ञेय की तरह न तो उनकी कहानियों के चरित्र असाधारण तथा विशिष्ट हुए हैं और न डा. देवराज के उपन्यास 'अजय की डायरी' के चरित्रों की तरह इतनी ऊँची भाव भूमि पर स्थित हैं कि उनको समझने या साधारणीकरण के लिए विद्वान और

---

* लाल रेशम का पतला धागा (शून्य की पूर्ति) पृष्ठ १०-११।

† आदमी जागेगा (बदलते इरादे) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. २११

जागरूक पाठक की अपेक्षा हो अपितु उनके चरित्र यदि एक ओर उच्च भाव भूमि पर स्थिर होकर विद्वानों और प्रबुद्ध पाठकों को चिन्तन का अवसर देते हैं तो दूसरी ओर जन सामान्य (साधारण पाठक) द्वारा भी उपेक्षा के पात्र नहीं होते। वे सहज गम्य हैं और उनकी यही प्रसादना उनका मौलिक गुण है, इनमें मानवीय निष्ठा और संस्कार अनन्य हैं।

वस्तुत: आधुनिक कला में पात्र और मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन की महत्ता सर्वोपरि हो गई है। फलत: डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म और की ओर चरित्र के बाह्य संघर्ष से आन्तरिक संघर्ष की ओर उन्मुख है।

कथोपकथन

नाटकीय तत्व कथोपकथन कहानी कला में आकर्षण, सजीवता और पाठकों में जिज्ञासा की वृत्ति को प्रेरणा देता है। कहानी के विकास क्रम में यह तत्व उस कलात्मक शृंखला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य आगे आने वाली घटनाओं से हमारा तादात्म्य जोड़ती है। इस तरह कहानी के अन्तर्गत कथोपकथन के तीन उद्देश्य होते हैं। (१)कथावस्तु का विकास, (२) पात्रों का चरित्र तथा(३)कहानी को कौतूहलता के सहारे गतिमय करना और आकर्षण की सृष्टि करना।

१. कथावस्तु का विकास करना—डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में कहानी कला की तीनो दिशाएं मिल जाती हैं। उनके कथोपकथन कलात्मक दृष्टि से अनुपम हैं। न तो वे बहुत बड़े हैं और न ही अरोचक। * उनमे प्रभविष्णुता और संवेदनशीलता की वृद्धि की अपूर्व क्षमता है। वस्तुत: भिन्न-भिन्न

---

* "अनावश्यक तथा अनपेक्षित रूप से विस्तृत तथा अरोचक कथोपकथन इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते।"

—हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन पृ. २१९।

पात्रों का पारस्परिक वार्तालाप कथावस्तु का विकास करता है और वर्णन विवेचन में सुन्दर समन्वय और अनुपात है। * 'आदमी जागेगा' के वार्तालाप छोटे हैं और कथानक को गतिमय करते हैं। एक उदाहरण दर्शनीय है—

"अरे सुनती हो ?"

"क्या बात है ?"

"वह हरेन्दर है न ?"

"कौन हरेन्दर ?"

"वह जो उस दिन बाजार में मिला था–हमारे दफ्तर का मैनेजर।"

"हाँ, हाँ।"

"वह....'श्यामलाल हकलाया–'वह प्रकाश के लिए।"

"तुम्हारी अक्ल तो नहीं मारी गई ? बूढ़े के साथ अपनी बच्ची की शादी।"

"अरे धीरे बोलो।" श्यामलाल फुसफुसाया—"बात तो सुनो, पैतालीस साल से कुछ कम उमर है। गहनों-कपड़ों का इन्तजाम वही करेगा। पहली औरत मर गई। घर में सिर्फ एक लड़का है और कोई नहीं। शादी के खर्च के लिए भी पाँच हजार ...."

"इससे तो अच्छा है कि लड़की बेच दो।"

"जरा बात तो समझा करो।........क्या मैं नहीं चाहता कि उसे अच्छा लड़का मिले ? वहाँ कम से कम खाने पहनने की तकलीफ तो नहीं उठानी पड़ेगी।" †

२–पात्रों की व्याख्या करना—कथोपकथन का सम्बन्ध कथानक से होते हुए भी पात्रों से विशेष रूप से होता है। कथोपकथन द्वारा कहानीकार अपने पात्रों के विषय में विविध जटिल परिस्थितियाँ, उनकी अन्तर्द्वन्द्व सम्बन्धी प्रति-

* हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ, ३३५।

† बदलते इरादे (आदमी जागेगा) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. २६१।

कुछ देर कोई नहीं बोला। फिर उसने कुछ कहने के लिए ओंठ खोले ही थे कि सहसा आवाज आई—"मोहना।"

"आयी।" वह चिल्लायी, और वैसे ही उछल कर भागी।*

रूप विधान की दृष्टि से कथोपकथन प्रायः तीन शैलियों में मिलते हैं :—

२. पूर्ण नाटकीयता के रूप में—अर्थात् केवल कथोपकथन हों, उसमें कार्य, स्थिति, और अन्यों के संकेत न हों। न ही पात्रों की भाव मुद्रा आदि का ही वर्णन होता है। सीधे-सीधे केवल कथोपकथन ही होते हैं। यथा—

"तुमने कल रात किसी आदमी को यहाँ देखा था ?"

"जी नहीं।"

"क्या रायसाहब बाहर से आने के बाद कुछ देर जागते रहे थे ?"

"नहीं हुजूर, वह जाते समय कह गये थे कि लौट कर देर हो जायेगी और उनके लिए खाना नहीं बनाया जाये, इसीलिए वे आने के बाद फौरन ही बत्ती बुझा कर सो गये थे।"

"लौटते वक्त रायसाहब नशे में तो नहीं थे ?"

"जी नहीं।"

"क्या वह अकेले ही सिनेमा देखने गये थे ?"

"जी हाँ, यहाँ से उनके साथ कोई नहीं गया था और फिर वह सिनेमा उनके भतीजे ने इसी कोठी में बनाया था, इसलिए उनके बार-बार कहने पर रायसाहब चले गये, वरना वह कल बहुत थके हुए थे और आराम करना चाहते थे।" †

पात्रों की मुद्राओं के संकेत के साथ-साथ उनके कथोपकथन आगे बढ़ते हैं, अर्थात् कथोपकथन के बीच-बीच में डा० प्रतापनारायण टण्डन पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों की ओर भी संकेत करते चलते हैं, जैसे—

"क्या ख्याल है ?" मोहन बाबू ने गाड़ी स्टार्ट कर रामकुमार जी से पूछा।

---

* टकराव (बदलते इरादे): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २०४-२०५

† टिकट का रहस्य " " २१५-२१६

"चलती हुई रकम है" उन्होंने भेद भरी हँसी हँसते हुए कहा। रामकुमार जी की बात सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ।

"बड़ी चलती हुई रकम है।" रामकुमार जी ने जोर देकर कहा। "इससे बढ़कर धूर्त चिराग लेकर ढूंढने से भी नहीं मिलेगा।"

"लेकिन क्या वाकई में केस मुफ्त करता है?" मोहन बाबू ने पूछा।

"अरे राम भजो।" रामकुमार जी ने मोहन बाबू के कंधे पर हाथ मारा—"इसके पास जो पँहुचा, बस समझो कि चुस गया। घाघ है घाघ"*

३. पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्य-व्यापारों और घटनाओं का उल्लेख जो पात्रों की कथोपकथन-काल की स्थिति में चरितार्थ होते हैं। जैसे—

"मैने कहा, आदाब अर्ज है" वर्मा बाबू अब तक सक्सेना साहब की मेज तक पँहुच गये थे। "क्या बहुत बिजी हैं?"

"आओ वर्मा बाबू!" सक्सेना साहब ने फाइलें किनारे खिसकायीं, और चपरासी को बुला कर पूछा—"आज खाना नहीं आया क्या अभी तक?"

"आया है साहब" उसने आधे मिनट में स्टेनलेस स्टील का बढ़िया टिफिन-दान उनके सामने लाकर रख दिया और शीशे के गिलास को उठा कर उसमें पानी लाने चला गया।

अब तक वर्मा बाबू दूसरे क्लर्क की कुर्सी खिसका कर सक्सेना साहब के सामने बैठ चुके थे।

"कहो सब ठीक ठाक?"

चपरासी आया और पानी रख कर चला गया।

"काम बहुत है।" वर्मा बाबू अंगड़ाई लेते हुए बोले।†

रूपात्मक विधान सम्बन्धी तीनों शैलियों में डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में अन्तिम दो का प्रचलन काफी है। वस्तुतः पात्रों के चरित्र चित्रण

---

* शून्य की पूर्ति (चलती हुई रकम): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ४३

† लंच टाइम (बदलते इरादे): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०२

और उसका सम्बन्ध कहानी की मूल संवेदना से जोड़ने के लिए उपर्युक्त दोनों शैलियाँ पूर्ण कलात्मक और सशक्त हैं। और इन दोनों शैलियों में आश्चर्य जनक गठन और सम्पूर्ण कहानी में प्रवाह तत्व की गति मिलती है। कहानियों के कथोपकथनों में पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों की व्यंजना और इसके साथ ही साथ कार्य व्यापारों की विवेचना करते रहने के कारण उनकी कहानियां सुबोध एवं सहज ग्राह्य हो गई हैं। यद्यपि उनकी काफी कहानियों में एक भी संवाद नहीं है (बदलते इरादे, वह चेहरा आदि) और अनेक में संवादों की भरमार है (यथा-चपरासियों की चाय, चलती हुई,रकम, चौक से हजरत गंज तक, अष्टगृह योग आदि) जो कहानी की प्रभविष्णुता और गतिमयता में गत्यावरोध करते हैं और कहानी कला के सम्यक निरूपण की दृष्टि से एक दोष ज्ञात होता है किन्तु शिल्प विधान के नये-नये प्रयोगों को देखते हुए इसे भी प्रयोग मान कर क्षम्य किया जा सकता है।

शीर्षक

डा० प्रतापनारायण टण्डन जी की कहानियों के स्थूल एवं वाह्य पक्ष पर विचार करते समय 'शीर्षकों' की मीमांसा आवश्यक ज्ञात होती है। क्योंकि इससे, प्रथम तो कहानी की रचना कला का संकेत मिल जाता है; शीर्षक अपने समय के प्रतिनिधि होते हैं। जिस प्रकार वस्त्रों और उनके पहनावों में अन्तर एवं परिवर्तन होता रहता है और किसी भी व्यक्ति के पहने हुए कपड़े देख कर उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है उसी प्रकार कहानियों की स्थिति भी शीर्षक से आँकी जा सकती है। दूसरी महत्व पूर्ण बात यह है कि इससे उनकी कहानियों का—व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का—पूरा परिचय मिल जाता है। लेखक की अभिरुचि किस प्रकार के विषयों की ओर है, अथवा वह विषय के आनयन में कहाँ तक व्यावहारिक है, और कहाँ तक काव्यात्मक, इसका भी संकेत शीर्षक से मिल जाता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के शीर्षक दोनों ही स्थितियों के द्योतक हैं। फिर भी इनमें परिपक्वता अधिक है। वे न तो शुद्ध विचार भूमि पर आधारित हैं और न

पूर्णतया भाव भूमि पर ही। इनकी कहानियों के शीर्षकों को हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

आकर्षक शीर्षक—बैरेट ने उपर्युक्त शीर्षक के विषय में कहा है कि उसे निश्चयबोधक, विषयानुकूल, आकर्षक, नवीन और लघु होना चाहिए।* डा० प्रतापनारायण टण्डन जी की अनेक कहानियां ऐसी मिलेंगी जिनके शीर्षक में ही आकर्षण है और जिज्ञासा की वृत्ति छिपी हुई है। 'भेद की बात', 'एक सर्पिणी की आकर्षक रोमांचक कथा,' 'फिल्म का षडयन्त्र' और कुमायू, का आदमखोर' आदि इसी प्रकार के शीर्षक हैं। 'वह काटा है' शीर्षक आकर्षण बढ़ाने के साथ ही प्रतिपाद्य विषय से भी सम्बन्धित है, परन्तु क्योंकि इससे कौतूहल की वृद्धि ही अधिक होती है—कि क्या काटा है, कैसे काटा है, क्यों काटा है,—अतः इसे इसी विभाग के अन्तर्गत रखा गया है। विस्मय से प्रेरित होकर ही अध्येता कहानी पढ़ लेता है। 'इनसे कल्पनामयी भावुकता को अवश्य ही स्फूर्ति प्राप्त होती है और विषय की ओर अग्रसर होने का सहज निमन्त्रण मिल जाता है। †

प्रतिपाद्य बोधक शीर्षक—डा० प्रतापनारायण टंडन की काफी कहानियों के शीर्षक कहानी के विचार, भाव, तथ्य और सार की सामूहिक ध्वनि के संदेश वाहक हैं। इस प्रकार के शीर्षकों को भी दो श्रेणियों में रखा जा सकता है।

[क] व्यक्ति का विधान करने वाले अथवा चरित्र प्रधान शीर्षक; जैसे—मुनिया, लतीफ, आलमअली, जीवन सिंह, सुहना, और गोली आदि। इन शीर्षकों से यह स्वतः ध्वनित हो जाता है कि इन नामों के व्यक्तियों की इन कहानियों में प्रधानता होगी अथवा उन्हीं के व्यक्तित्व की व्याख्या होगी।

[ख] घटना का विधान करने वाले शीर्षक, यदि रचना में कोई परिस्थिति

* "A good title is apt specific attractive new and short."
– Charles Barret : Short Story writing, PP. 67.

† कहानी का रचना विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृष्ठ १४२।

या घटना उभार कर इस प्रकार दिखाई गई हो कि जिससे मानव अन्तःकरण की कुछ प्रवृत्तियां दीख पड़ें अथवा जीवन और जगत का कोई प्रेरक रूप सामने आता है तो वह घटना विधान वाले शीर्षकों का विषय होगी। इस प्रकार की कहानियों में या तो प्रतिपाद्य का आधार घटना है, अथवा किसी शिल्प विशेष से कोइ घटना केन्द्रीय वस्तु है। इस प्रकार के घटना अथवा कार्य का निर्देश करने वाले शीर्षकों में एक शाम, चलती हुई रकम, भ्रष्ट गृह योग, इटरव्यू लेटर, रहस्य, मध्यस्थ, उचक्का, फुड़की, ठहराव आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है।

३—भावात्मक शीर्षक—प्रसाद की तरह डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानियों के कुछ शीर्षक भाव प्रधान हैं। इस प्रकार की कहानियां अन्तर-मनोवृत्ति निरूपक दिखाई पड़ती हैं। उसी के अनुरूप ही वाह्य वातावरण का निरूपण होता है। इस प्रकार की कहानियों का शीर्षक या तो प्रतिपाद्य को ध्वनित करने वाला भावात्मक है, अथवा उसी भाव की ध्वनि वहन करने वाली किसी कल्पना से सयुक्त। 'गोरी के........', 'बदलते इरादे,' 'वह चेहरा', 'मन-हूस दिन' 'शून्य की पूर्ति,' 'लाल रमेश का पतला धागा,' 'मजबूरियां,' 'माया जाल' आदि इसी प्रकार के शीर्षक हैं। इन शीर्षकों में न तो चरित्र निर्देशन मिलेगा और न इतिवृत्तात्मकता ही।

४. इतिवृत्तात्मक शीर्षक—इस प्रकार की कहानियों में कथा पक्ष अत्यधिक मुखर होता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में हम वर्णनात्मक शीर्षकों को भी रख सकते हैं। 'मेरी नाकामयाबी', 'औरत का वार्ड', 'चौक से हजरतगंजतक,' 'सड़क, बस और यात्री' 'मृतात्मा से साक्षात्कार', 'बस स्टॉप' आदि कहानियां वर्णनात्मक तथा इतिवृत्तात्मक श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के शीर्षकों पर विचारणीय बात है, शीर्षक और कहानी का सम्बन्ध। उनकी कहानियों के शीर्षक अपने में समाविष्ट हैं, कहानी के सार को व्यक्त करने वाले हैं और सबसे बड़ी बात है कि पाठकों की कौतूहलता को जाग्रत करने वाले हैं। इतिवृत्तात्मक तथा प्रति-पाद्य विषय पर आधारित शीर्षक तो कहानी के सार को अपने में अभिभूत किये हुए हैं ही, आकर्षक और भावात्मक शीर्षक भी इसका अपवाद नहीं हैं। उनकी कहानियों के शीर्षक कहानी से सम्बन्धित हैं और कहानी की सामूहिक सजीवता

के प्रतिनिधि हैं। 'वह काटा है' कहानी में आदि से अन्त तक पतंगबाजी की चर्चा है। जिस प्रकार 'गुलेरी' जी की कहानी 'उसने कहा था' का भाव अन्त में खुलता है, और शीर्षक की यथार्थता ज्ञात होती है अथवा मोपांसा की 'अन्तिम पत्ती' की तरह 'वह काटा है' का भाव भी अन्त में खुलता है जबकि नवाब साहब दिल्ली वाले नवाब की पतंग काट कर लखनऊ की नाक रख लेते हैं और जोर से चिल्लाते हैं—'वह काटा है।'

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के शीर्षकों में एक बात दर्शनीय है कि वे वैचारिक अधिक हैं। शीर्षक घटना प्रधान न होकर विचार-प्रधान अधिक हैं और इससे इनकी बौद्धिक स्थिति का सुपरिचय हो जाता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन कोरे कहानीकार या कथाशिल्पी ही नहीं हैं, अपितु एक महान् विचारक भी हैं यही कारण है कि उनकी कहानियों के शीर्षक तक भी इनसे अछूते नहीं हैं। 'भविष्य के लिए' 'आदमी जागेगा' और 'शून्य की पूर्ति' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इनके शीर्षक इन कहानियों के अन्दर घटित घटना का परिचय नहीं देते, और न इन शीर्षकों से शीर्षक के अनुसार वस्तु का प्रसार दिखाई देता है *, किन्तु विचारों का प्रसार अवश्य प्रतीत होता है। यह पहले ही स्पष्ट हो जाता है कि इनमें इसी प्रकार के विचारों की प्रधानता होगी। 'शून्य की पूर्ति' एक भावात्मक शीर्षक ज्ञात होता है, किन्तु जितना यह भावात्मक शीर्षक है, उससे कहीं अधिक वैचारिक है। कहानी का शीर्षक पढ़ते ही पाठक सोचता है शून्य आकाश को कहते हैं, शून्य का अर्थ होता है खाली सन्नाटा, रिक्तता, कुछ नहीं और उसकी पूर्ति ? अर्थात् भराव, पूर्णता, धरती। शून्य इस अर्थ से मृत्यु और पूर्ति जीवन भी हो सकता है, इसकी पाठक पहले कल्पना भी नहीं करता, किन्तु सुनयना बालिका के संताप में इसका आभास होने लगता है, जो अन्त में स्पष्ट हो जाता है। नायक जो पहले मृत्यु से भयभीत था अब उसका वरण करने को तैयार है ; वह अपनी रिक्तता की पूर्ति बालिका में

* "While a good title is essential, it is a grat mistake to have a startling or senstional title followed by a quiet litile character sketch. keep the title in its proper proportion to the nature and interest of the story."
—Maconochie, D. : The craft of the short story. PP. 25.

देखता है—और जीवन के क्रम को स्वीकार कर लेता है। जन्म और मरण; यही दो तो चक्र हैं, जिनकी गति पर जीवन चल रहा है फिर भय कैसा? वस्तुतः शीर्षक, कहानी के समस्त विचारों को अपने में समेटे हुए हैं और बौद्धिकता से पूर्ण है। इसी प्रकार 'भविष्य के लिए' शीर्षक भी नारी की जागरूकता और सजगता का सफल प्रतिनिधित्व करता है। हमें सदैव वर्तमान को ही नहीं देखना है, वरन् भविष्य को सफल बनाने के लिए वर्तमान स्थितियों से उत्पन्न बाधाओं से संघर्ष करना है, * तभी वर्तमान से भविष्य सुन्दर और समुन्नत बन सकेगा।

इतना होते हुए भी डा. प्रतापनारायण टण्डन की अनेक कहानियों के शीर्षक इस बौद्धिक धरातल तक न उठ कर नीचे ही रह जाते हैं और बड़े हीन लगते है। जैसे 'मेरी नाकामयाबी' 'फिल्म का षडयन्त्र, 'सर्पिणी की आकर्षण कथा' 'एक शिकारी की डायरी के कुछ पृष्ठ' 'चपरासियों की चाय' 'थोड़ी दूर का सफर' 'प्रेमी प्रेतात्माएं' आदि। इस प्रकार के शीर्षकों में न तो कोई आकर्षण है और नहीं कोई विचारात्मक या भावात्मक आधार। ऐसा लगता है जैसे कोई नौसिखिया कहानी-लेखक समस्त कहानी के सार को अपनी कहानी में समाविष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हो † अथवा वे पुराने जमाने में लिखी जाने वाली कहानियों की परम्परा पर हों; जैसे राजा 'भोज का सपना' या 'आपत्तियों का पर्वत'। 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक के पैटर्न (Patern) पर ही 'एक सर्पिणी की आकर्षण कथा' शीर्षक लगता है। इसी प्रकार कहानी के वर्ग संकेत को प्रकट करने वाले शीर्षक 'एक शिकारी की डायरी के कुछ पृष्ठ,' 'फिल्म का षडयन्त्र' और 'कुमायुँ का आदमखोर' आदि लगता है कि 'शिकार की कहानी' या 'अलिफ-लैला की कहानी' की तरह स्पष्ट वर्गीकरण का संकेत दे रहे हों। इनमें बात बहुत साफ हो जाने से संभव हैं तात्पर्य बोध भले ही हो जाये, परन्तु

* भविष्य के लिए (बदलते इरादे) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २२६।

† "रचना के क्षेत्र में आने वाले नये लेखक प्रायः समस्त कहानी का निचोड़ कर शीर्षक में निहित कर देने की चेष्टा करते हैं।"

। रचना विधान : डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृष्ठ १४७।

आकर्षण का अभाव ही है और सौन्दर्य तथा कौतूहल पद मूर्छित दिखाई पड़ता है। 'चपरासियों की चाय', 'प्रेमी-प्रेमिकायें' और 'थोड़ी दूर का सफर' में अस-बारी ढंग का हल्कापन दिखायी देता है।

किन्तु जैसा कि पहले ही लिख चुके हैं कि डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ उनके १४ वर्ष के विद्यार्थी काल की कृतियाँ हैं, अतः प्रारम्भिक कहानियों में यदि कुछ अपरिपक्वता मिलती है तो उनको अन्य कहानियों को देखते हुए भुलाया जा सकता है, क्योंकि इन कहानियों के शीर्षक अधिकतर उनके प्रथम कहानी संग्रह 'बदलते इरादे' से ही सकलित किये गये हैं। आगामी कहानियों में इस प्रकार का नौसिखियापन व्यक्ति नहीं होता है। और इन कहानियों में भी नौसिखियापन इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि हमारे सामने उनके बड़ी अच्छी कहानियों वाले शीर्षकों का अम्बार लगा हुआ है—जैसे पहले अच्छा कपड़ा देख लिया जाये फिर उससे कुछ ही न्यून कपड़ा भी नहीं भाता, इसी प्रकार अच्छे शीर्षकों में ये शीर्षक नहीं खप पाते।

भाषा और शैली

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों की भाषा बोलचाल की भाषा है। इसमें विचारों का गुम्फन अवश्य है किन्तु भाषा में तत्सम शब्दों को ठूँस-ठूँस कर भरने की प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती है। यद्यपि उनकी कहानियों में अपना स्वतन्त्र संगीत, भाषा-सौष्ठव और शब्द-संयम है फिर भी दो प्रकार की भाषा शैलियों के दर्शन होते हैं।

१. बोलचाल की भाषा शैली—प्रेमचन्द, अश्क, और यशपाल की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ अधिकतर इसी शैली में हैं। उनकी कहानियों की भाषा सजीव और साधारण है, बोलचाल के स्तर पर है—कृत्रिमता नहीं है; लगता है जैसे कहानी में पात्र नहीं बोल रहा है—जन सामान्य बोल रहा है। इसीलिए उन्होंने उर्दू के शब्दों तक को लाने में भी हिचक नहीं की। अंग्रेजी शब्दों का भी उपयोग मिल जाता है। यहाँ तक कि उनकी एक कहानी

का शीर्षक ही अंग्रेजी शब्द है * । कहीं-कहीं तो उनकी भाषा पूरी तरह हिन्दुस्तानी हो जाती है और उर्दू का काफी प्रभाव लक्षित होता है । यथा—

"मेरे दोस्तों को मुझसे यह शिकायत है कि मैं कहानी नहीं लिखता, जो कि मैं कई बार उन्हें लम्बे-लम्बे लेक्चर इसी बात पर, दे चुका हूँ, कि बरखुरदार, कहानी लिखना कोई मजाक नहीं है, कहानी हर शख्स नहीं लिख सकता, कहानी लिखना इतना आसान नहीं है, जितना तुम समझते हो। यदि ऐसा होता तो आज सभी ऐरे गैरे कहानी लेखक बने घूमते, वगैरह । लेकिन मैं देखता आया हूँ कि उन अक्ल के दुश्मनों पर मेरी इन तकरीरों का कोई असर नहीं होता।" †

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि उनकी भाषा चलती फिरती है और यदा कदा हल्के व्यंग और मजाकों का पुट भी है जिससे भाषा में प्रसादात्मकता बढ़ गयी है ।

२. गम्भीर और परिष्कृत भाषा शैली—किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में सर्वत्र चलती फिरती भाषा ही नहीं है, अज्ञेय और जैनेन्द्र कुमार की तरह उनकी भाषा गम्भीर और परिमार्जित भी है । 'शून्य की पूर्ति 'भविष्य के लिये', 'आदमी जागेगा', 'प्रेमी प्रेतात्माएं' 'मृतात्मा से साक्षात्कार', 'स्वर्गीय मिश्र जी', और 'उतार-चढ़ाव' आदि कहानियों की भाषा इसका उदाहरण है । यद्यपि इनमें क्लिष्ट शब्दों का ब्योरा नहीं है, भाषा सुगम है किंतु विचारों ने उसका परिमार्जन कर दिया है । यथा—

"अब मुझे लगता है कि मैं मर सकता हूँ बिना किसी भय अथवा दुख के, क्योंकि वह पल मैं जी चुका हूँ, जब व्यक्ति मरने का फैसला करता है । वह वही पल था, अब मुझे मौत की पीड़ा नहीं सालेगी । मरने का यह एक ऐसा निर्णय है जो मृत्यु के दुख को स्वीकार करने के लिये अनिवार्य है । यह न हो तो अतृप्ति और पश्चाताप मृत्यु का मूर्त रूप ही धारण कर लेते हैं । मेरा

* बदलते इरादे (पार्टनर) : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १८४ ।
† बदलते इरादे (मेरी नाकामयाबी) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १

मन अब हल्का हो गया है........"*

इन शैलियों के प्रयोग से दोनों ही प्रकार की कथा-वस्तु के प्रवाह और पात्रों की स्वाभाविकता का अन्तर प्रतीत होता है। फिर भी उनकी कहानियों में बोलचाल की भाषा शैली का ही प्रयोग अधिक मिलता है।

शैली—डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में निम्न शैलियाँ दृष्टिगत होती हैं—

१—ऐतिहासिक शैली
२—आत्म कथात्मक शैली।
३—संलाप शैली।
४—पत्रात्मक शैली।
५—डायरी शैली
६—मिश्रित शैली

ऐतिहासिक शैली—इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार एक कथावाचक की भाँति पूर्णतः तटस्थ होकर वर्णनात्मक ढंग पर कहानी की सृष्टि करता है। इस प्रकार की कहानी वर्णन के माध्यम से सुगठित की जाती है। यद्यपि डा प्रतापनारायण टण्डन जी की कहानियों में किसी में भी पूर्णतया इसका विवरण नहीं मिलता, फिर भी इसके यत्र-तंत्र उदाहरण मिल ही जाते हैं। 'पुराने दोस्त', 'चौक से हजरतगंज तक', 'लाल रेशम का पतला धागा' और मृतात्मा से साक्षात्कार' आदि कहानियाँ इस शैली के प्रमाण में प्रस्तुत की जा सकती हैं। किन्तु अज्ञेय की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन जी ने कुछ नये प्रयोग किये हैं। और इन प्रयोगों ने इस शैली को आश्चर्यजनक शक्ति और विकास दिया है। मृतात्मा से साक्षात्कार' में उन्होंने केवल वर्णनात्मकता ही नहीं दी है, विचारों पर भावना का आवरण भी स्पष्ट किया है; यद्यपि लेखक आदि से अन्त तक कहीं दिखाई नहीं देता फिर भी सूत्रधार स्पष्ट वहीं प्रतीत होता है। यथा—

"वह (डा. सेन) शरीर से यह चाह रहे थे कि झटपट उनके हाथ तीव्रता

---

*शून्य की पूर्ति (शून्य की पूर्ति): डा. प्र. ना. टण्डन : पृष्ठ १५।

बाद आखिर मैंने झुंझलाकर कह दिया "अच्छा बाबा तैयार हो।" *

(ख) कहानीकार स्वयं आत्मभाषण के रूप में समस्त कहानी पूरी करता है। कथानक दृष्टि से उस कहानी का 'मैं' मुख्य पात्र बन जाता है और वह अपनी आत्मकथाओं में कहानी के अन्य पात्रों को भी समेट कर चलता है। इस प्रकार की कहानियों में डा. प्रतापनारायण टण्डन की 'मेरी नाकामयाबी' 'बदलते इरादे', 'वह चेहरा' 'सर्पिणी की आकर्षण कथा' आदि कहानियाँ मुख्य हैं। 'मेरी नाकामयाबी' कहानी का एक उदाहरण देखिये—

"अब मैंने एक और महाशय का दामन पकड़ा। वह मेरे लिए और मैं उनके लिए बिल्कुल ही नावाकिफ थे। लेकिन मुझे इससे क्या करना था? आखिर वे तो वे भी एक मशहूर कहानी लेखक। उनके पास जाकर तसलीम करके मैंने उनके सामने अपनी यह ख्वाहिश, बहुत ही नरम अल्फाज में, जाहिर कर दी, कि मैं कहानी लिखना चाहता हूं। यह कहने के बाद मैं अनेक चेहरे की तरफ गौर से देखने लगा।"†

वस्तुतः यह आत्मकथात्मक शैली डा. प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों में बहुत उत्कृष्ट बन गई है। इसमें चरित्र का आत्मविश्लेषण उत्कृष्ट ढंग का हुआ है। जिन कहानियों (मेरी नाकामयाबी, वह चेहरा, मनहूस दिन) में केवल एक पात्र का ही विश्लेषण किया गया है, उनमें यह शैली बड़ी खूबी के साथ अंकित हुई है।‡ इस शैली में मनोविज्ञान का विश्लेषण भी अच्छी तरह हुआ है। 'वह चेहरा' में एक पति की मनःस्थिति का, जो अपनी पत्नी को उसके मैके भेज कर आता है, अच्छा चित्रण किया गया है। यथा—

"मैं सोचने लगता हूँ, मैंने अपनी बीवी को मायके भेज कर अच्छा ही

---

* दृश्य की पूर्ति : (जलती हुई रकम) डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १९-२०

† बदलते इरादे (मेरी नाकामयाबी): डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १२-१३

‡ "जिन कहानियों में एक ही प्रधान चरित्र होता है और शेष सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिए यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।"

—डा श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ १०६

किया। पिछले तीन दिन से बेचारी आधा पेट खाकर रह रही थी, उँह मुझे एकाएक गुस्सा आने लगता है और मैं टेढ़ी निगाह से उसके पलंग की तरफ देखता हूँ और उस पर पड़ी हुई उसकी साड़ी को। सवेरे मैं उसे सन्दूक में बन्द करके रख दूँगा। गुड़िया भी नोच कर फेंक दूँगा।........सभी चीजों पर दुबारा मेरी निगाह बारी-बारी से जा कर ठहरती हैं और लौट आती हैं। सब मुझे ललकारते हुए मालूम होते हैं, मेरे ऊपर खिलखिलाकर हंसते हुए। मैं सब कुछ तोड़-फोड़ कर जला दूँगा....मैं सोचता हूँ....लेकिन नहीं, मेरे सामने बीबी का चेहरा आ जाता है। उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें लाल पतले ओठ, ताजे गुलाब जैसे गाल.........वह खूबसूरत चेहरा—और मेरी सारी झुंझलाहट एकदम गायब हो जाती है, सारा गुस्सा खत्म हो जाता है।"*

पत्रात्मक शैली—केवल 'आखिरी 'खत' इस शैली की प्रतिनिधि कहानी है। किन्तु इस 'खत' में विशेषता है; अज्ञेय की कहानी 'सिगनेलर' की तरह इसकी अभिव्यक्ति मैं से हुई अवश्य है किन्तु साथ ही इसमें पत्र न देकर पत्र का सार दिया गया है। पत्रात्मक शैली से डा. प्रतापनारायण टंडन की यह नई शैली है। इसमें बीच-बीच में कमेन्ट्री आदि भी आती जाती हैं; ऐसा लगता है जैसे लम्बे पत्र को संक्षेप करके लिखने का प्रयत्न किया गया है और इससे कहानी की रोचकता में वृद्धि ही हुई है। आदि से अन्त तक उसी पत्र का वर्णन है। इसमें नवीनता यह है कि उस पत्र का वर्णन पत्र द्वारा या पत्र लिखने वाला नहीं करता, अपितु पत्र पाने वाला ही उस पत्र का उल्लेख अपने शब्दों में करता है। यथा—

'लेकिन उस खत की शुरुआत ही कुछ गैर मामूली मालूम होती है। क्योंकि वहाँ मैं 'प्यारे महमूद' की जगह पर 'ओ बेवफा' लिखा हुआ पाता हूँ। मैं कुछ भड़कता हूँ लेकिन ज्यादा नहीं, क्योंकि मुझे यह बात याद आती है कि नसीमा के पिछले खत में ही उसका दम तेजी पर आ गया था। मैं आगे पढ़ता हूँ, नसीमा ने लिखा है कि उसे दुनियाँ के किसी भी मुहब्बत के अफसाने में, या अपनी हमउम्र साथिनों के मुँह से कभी किसी ऐसे आदमी का जिक्र सुनने

* दे० बदलते इरादे (वह चेहरा), पृष्ठ १२७-१२८

का मौका नहीं मिला है, जो अपनी महबूबा के खत का जवाब तक न दे और यहाँ तक कि आठ-आठ खतों को पाकर भी चुप्पी साधे रहे। बल्कि—वह लिखती है—उसने तो यही देखा, पढ़ा और सुना है कि महबूब खत पर खत लिखता चला जाता है और तब भी महबूबा का दिल जरा भी नहीं पिघलता। वह लिखती है कि अपनी मुहब्बत के मामले में यह उल्टा रुख देखकर उसे ताज्जुब तो होता ही है, साथ ही यह भी यकीन हो गया है कि न सिर्फ मैं, बल्कि वह खुद भी, यानी हम दोनों ही, जरूर उल्टी रात को पैदा हुए थे।"*

डायरी शैली—इस शैली की प्रमुख कहानी 'एक शिकारी की डायरी के कुछ पृष्ठ' है। इस कहानी में भी आत्मचरित्र विश्लेषण और विवेचन की सारी स्थितियाँ मिलती हैं। यह शैली पत्रात्मक शैली से मिलती जुलती ही है। स्मृतियों के रूप में कहानी का संचयन किया है। तारीखें दे-दे कर घटना के बीच में अन्तराल डाला गया है। इस कहानी में एक शिकारी के द्वारा शिकार के विषय में डायरी शैली द्वारा लिखा गया विवरण प्रस्तुत किया गया है। शिल्प विधान की दृष्टि से यह कहानी साधारण है।

संलाप शैली—यह शैली नाटकीय शैली का एक रूप है, इसमें कहानी वार्तालाप प्रधान होती है और कथोपकथन से ही प्रारम्भ होती है। इस प्रकार की कहानियों में 'भविष्य के लिये' कहानी सर्वश्रेष्ठ है। यथा—

जैसे ही चपरासी ने आकर कहा, 'आइये बुलाते हैं,' वैसे ही मैं चिक उठाकर भीतर घुसी।

"आइये, आइये" भीतर पहुँचते ही मैंने देखा कि वह व्यक्ति कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो गया।

"यहाँ तशरीफ रखिये;" उसने सामने पड़ी हुयी कुर्सी की ओर इशारा किया। मैं सकुचाती हुई चुपचाप बैठ गयी।

"हाँ अब बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"‡

---

* बदलते इरादे (आखरी खत) पृष्ठ १०९-११०।

‡ बदलते इरादे (भविष्य के लिये) पृष्ठ २१६-२१७।

मिश्रित शैली—शिल्प विधि की दृष्टि से जो उक्त कहानियाँ हैं, वे इस शैली में निर्मित हुई हैं। इस शैली की कहानियों में न तो प्रयोग का आग्रह रहता है और न ही शैली की ऊपरी चमक-दमक वरन् अपितु सम्पूर्ण कहानी पूरे संयम, गम्भीरता और अपूर्व प्रभाव की शक्ति लिए हुए पाठक के सामने आती है। इस शैली की कहानियों में अनेक शैली का आश्रय लिया जाता है। लेखक अपनी बात को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उस समय जो भी शैली उपयुक्त समझता है उसी का आश्रय ले लेता है। इस शैली की कहानियों में 'भविष्य के लिये' 'आदमी जागेगा' 'वह काटा है', 'शून्य की पूर्ति' 'उचक्का' आदि हैं। इनमें आत्मकथात्मक शैली, ऐतिहासिक शैली, संलाप शैली आदि शैलियों का वर्णन है। डा० प्रतापनारायण टण्डन की अधिकतम कहानियाँ इसी शैली के सहारे विकसित हुई हैं।

उद्देश्य

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों का उद्देश्य मूलतः सामाजिक है। उनकी कहानियों का उद्देश्य समाज पर व्यंग है तो व्यक्ति चरित्रों के विश्लेषण के द्वारा मानव चरित्र की सूक्ष्म व्याख्या करना भी है। उनकी कहानियाँ मात्र मनोरंजन के लिये ही नहीं हैं, उनका लक्ष्य इससे कहीं ऊपर उठकर वैचारिक एवं बौद्धिक है। 'भेद की बात' 'आदमी जागेगा' 'चलती फिरती रकम' 'अष्टगृह योग' और कुड़की आदि कहानियों में समाज में प्रचलित मनोवृत्तियों पर व्यंग है, हल्का कटाक्ष है और उनके विरोध में संघर्ष की प्रेरणा है, तो 'शून्य की पूर्ति' 'उचक्का' 'सुहना' 'जीवन सिंह' और 'मुनिया' आदि कहानियों में मानव मन की गठित ग्रंथियाँ खोलने की चेष्टा की गयी है। 'शून्य की पूर्ति' में प्रतीकात्मक ढंग से मृत्यु और उसका जीवन पर प्रभाव का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। उसका नायक 'मैं' जो पहले मृत्यु की सम्भावना से निराश था, उससे भयभीत था, अब मृत्यु के वरण को सादर तैयार है और अन्त में स्वयं कह उठता है—"आ मृत्यु ! आ, अब मैं प्रस्तुत हूँ।

'भविष्य के लिये' कहानी में लेखक का उद्देश्य नारी में चेतना लाना है। इसकी नायिका 'मोहनी' पुरुष से संघर्ष करती है, अपने पति द्वारा किये जाने

वाले अत्याचारों के विरोध में खड़ी होती है और सामाजिक मौन मनोविकृतियों का ज्वलित प्रतिरोध करती है, इसीलिये कि नारी को मात्र भोग्या न समझा जाये—उसे भी वही दर्जा प्रदान किया जाये, जो एक पुरुष का है। यह कहानी डा० प्रतापनारायण टण्डन की बड़ी उद्देश्यपूर्ण कहानी है। इसमे नारी का संघर्ष है—अत्याचार के विरुद्ध, अनाचार के विरुद्ध, शोषण के विरोध मे, अपने चरित्र निर्माण के लिये, अपने नये जीवन के लिये, अपनी स्वतन्त्रता के लिए अपने अधिकारों के लिये, अपने भविष्य के लिये………… *

वस्तुत: डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियाँ यथार्थवाद की तुला पर तुली हुयी हैं। इनका मनोवैज्ञानिक धरातल काफी सुदृढ है। उनके उद्देश्य बिन्दु मे जहाँ एक ओर मनोवैज्ञानिक अनुभूति मिलती है वहां दूसरी ओर हमें एक ऐसे सत्य के दर्शन होते हैं जिसमें हमारे मनोविज्ञान, युग चेतना और व्यक्तित्व चेतना, तीनों का सामंजस्य उपस्थित होता है।

द्वितीय काल

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानियों के प्रथम काल की कहानियों की चर्चा करते समय 'शून्य की पूर्ति' नामक कहानी सग्रह मे आयी कहानियों तक को ले लिया गया था। यह कहानियाँ सन् १९६४ तक की कहानियों का प्रतिनिधित्व कर लेती हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त भी कुछ कहानियाँ हैं जिनका निर्माण काल सन् १९६५ है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के विदेश भ्रमण ने उनकी प्रतिभा और विचारों पर काफी प्रभाव डाला है और उनकी कहानियों ने एक क्रान्तिकारी तथा आश्चर्य जनक मोड़ लिया है। इनकी शैली, कथानक रूप विधान सभी पहले प्रकार की कहानियों से सर्वथा भिन्न हैं। अतः इन्हें दूसरे काल की कहानियाँ कहा जा सकता है। क्योंकि इस काल की कहानियाँ बहुत कम

* बदलते इरादे (भविष्य के लिए) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ २१६

हैं, यथा—संस्कारों की दूरी, तिल्मी रोशनी का व्यूह और सरकारी जंग, तथा 'टुमारों' 'बुमानी' 'दुमारो' आदि—फिर भी इनसे इस प्रकार की कहानियों की एक निश्चित गति सीमा का स्पष्ट निर्देशन हो जाता है। इस काल की कहानियों में आश्चर्यजनक बौद्धिक गहनता देखते हुये ही इनका नये काल—द्वितीय काल—के अन्तर्गत विवेचन किया जा रहा है।

इस काल की प्रतिनिधि रचना 'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी है। आगे के पृष्ठों में हम इसी कहानी के आधार पर द्वितीय काल की डा० प्रताप-नारायण टंडन की कहानियों का मूल्यांकन करेंगे।

'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी का कथानक प्रतीकात्मक है। मुख्यतः विचार-दर्शन को ही कथानक का रूप दिया गया है। इसमें कथानक सांकेतिक और व्यंजना के रूप में दिखायी देता है। सम्पूर्ण कथानक कथ्य न होकर व्यंजित है। मूल रूप मे कथानक केवल इतना ही है कि एक भारतीय युवक रोम जाता है और वहां एक प्रदर्शनी मे क्लारा नाम की युवती से भेंट करता है। उससे वार्तालाप होता है और अगले दिन प्लेन से रोम छोड़ देता है। लेकिन कथानक में पूर्व और पश्चिम के विचार दर्शन संस्कारों का प्रतीकात्मक रूप से वर्णन और उनके वैभिन्न का चिन्तन कथानक को सप्राण कर देता है। इस कहानी को चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कथानक भी कहा जा सकता है। क्लारा टेगी और भारतीय युवक के चरित्र, दोनों के मानसिक द्वन्द्व और उनके संस्कार इस कहानी में बड़ी कुशलता पूर्वक उभर आये हैं।

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्ष के चित्रों मे भी कथानक विधान दो ढंगों से हुआ है प्रथम, व्यक्ति के आत्म चिन्तन तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट संवेदनाओं के तादात्म्य से। इसमें भारतीय युवक के माध्यम से क्लारा का आत्म चिन्तन, भूत, भविष्य और वर्तमान में दोनों देशों की परिवर्तित मान्यतायें और संस्कारों की दूरी का दायरा, मानसिक ऊहापोह आदि प्रतीकों के सहारे उभरते हैं। भारतीयों और पाश्चात्यों में एक बहुत बड़ा अन्तर भाषा का नहीं है, देश का नहीं है, क्योंकि भाषा का अन्तर एक दूसरे की भाषाओं को जानकर मिटा जा सकता है, जाति का अन्तर कुछ अर्थ नहीं रखता, विज्ञान ने देश के अन्तर को दूर कर दिया है, किन्तु एक अन्तर है, वह कभी मिट नहीं सकता, उसकी जड़ें अज्ञान से सींची गयी हैं—

मस्तिष्क उसको ग्रहण नहीं करता—और वह अन्तर है संस्कारों का अन्तर* । जो संस्कार भारतीयों के हैं, उनके विपरीत संस्कार पाश्चात्य देशों के निवासियों के हैं और दोनों इतने विरोधी हैं कि उनका मेल दुष्कर है । यद्यपि कहानीकार अनुभव करता है कि यह दूरी मिट सकती है, और भविष्य में मिटेगी भी, पर कब, इसका स्वयं उसे भी पता नहीं ।

" - - - - क्लारा ! मेरी अन्तरात्मा पुकारती हुई कहती है ; आज इस दूरी के सामने हम-तुम दोनों, हो सकता है पराजित हो गये हों, लेकिन विश्वास रखो, एक दिन आयेगा, हाँ, जब यह दूरी नहीं रहेगी । तब शायद यह लोग इतने विवश इतने असहाय नहीं होंगे । पर मुझे लगता है, मेरी आवाज स्वरहीन हो गई है । शायद मेरे शब्द विशृंखिल हो गये हैं - - - ।"†

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र कथानक में, द्वितीय, चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओं के मेल से उभरे हैं । कथानक में क्लारा और भारतीय युवक की मानसिक संवेदनाओं के चित्रों को उभारने के लिए छोटी-छोटी घटनाओं को उतारा गया है । युवक का परिचय पेन्टर से होता है — एक युवक इटैलियन कलाकार से । लेखक को इस चित्रकार से कोई रुचि नहीं होती फिर भी जब वह (पेन्टर) लेखक को अपने घर आने को आमन्त्रित करता है, तो स्वतः उसके मुहँ से 'अवश्य' निकल जाता है, यद्यपि मन ही मन वह सोचता है कि वह कभी वहाँ नहीं जायेगा । यथा :—

"मेरा परिचय उस पेन्टर से कराया जाता है - - वह शक्ल सूरत से भी पेन्टर लगता है । लिबास से भी — — बोलचाल से भी । हर अंदाज से—

---

* "हमारे तुम्हारे बीच में एक बहुत बड़ी दूरी है । यह दूरी देश की नहीं है, जाति की नहीं है, भाषा की नहीं है, समाज की नहीं है । यह दूरी है संस्कार की । और इसे मेटना कठिन है ।"

—लहर (संस्कारों की दूरी : डा. प्रतापनारायण टण्डन), मासिक पत्रिका मार्च १९६५, पृष्ठ ५८ ।

† लहर (संस्कारों की दूरी : डा० प्रतापनारायण टण्डन) मासिक पत्रिका, मार्च १९६५, पृष्ठ ५९

हैं, यथा—संस्कारों की दूरी, तिरमी रोशनी का व्यूह और सरकारी जंग, तथा 'दुमारो' 'बुमानी' 'दुमारो' आदि—फिर भी इनसे इस प्रकार की कहानियों की एक निश्चित गति सीमा का स्पष्ट निर्देशन हो जाता है। इस काल की कहानियों में आश्चर्यजनक बौद्धिक गहनता देखते हुये ही इनका नये काल—द्वितीय काल—के अन्तर्गत विवेचन किया जा रहा है।

इस काल की प्रतिनिधि रचना 'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी है। आगे के पृष्ठों में हम इसी कहानी के आधार पर द्वितीय काल की डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानियों का मूल्यांकन करेंगे।

'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी का कथानक प्रतीकात्मक है। मुख्यतः विचार-दर्शन को ही कथानक का रूप दिया गया है। इसमें कथानक सांकेतिक और व्यंजना के रूप में दिखायी देता है। सम्पूर्ण कथानक कथ्य न होकर व्यंजित है। मूल रूप में कथानक केवल इतना ही है कि एक भारतीय युवक रोम जाता है और वहां एक प्रदर्शनी में बलारा नाम की युवती से भेंट करता है। उससे वार्तालाप होता है और अगले दिन प्लेन से रोम छोड़ देता है। लेकिन कथानक में पूर्व और पश्चिम के विचार दर्शन संस्कारों का प्रतीकात्मक रूप से वर्णन और उनके वैभिन्न्य का विस्तार कथानक को सप्राण कर देता है। इस कहानी को चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कथानक भी कहा जा सकता है। बलारा टेसी और भारतीय युवक के चरित्र, दोनों के मानसिक द्वन्द्व और उनके संस्कार इस कहानी में बड़ी कुशलता पूर्वक उभर आये हैं।

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्ष के चित्रों में भी कथानक विधान दो ढंगों से हुआ है प्रथम, व्यक्ति के आत्म विस्तार तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट संवेदनाओं के तादात्म्य से। इसमें भारतीय युवक के माध्यम से बलारा का आत्म विस्तार, भूत, भविष्य और वर्तमान में दोनों देशों की परिवर्तित मान्यतायें और संस्कारों की दूरी का दायरा, मानसिक ऊहापोह आदि प्रतीकों के सहारे उभरते हैं। भारतीयों और पाश्चात्यों में एक बहुत बड़ा अन्तर भाषा का नहीं ... का नहीं है, क्योंकि भाषा का अन्तर एक ... की भाषाओं को ... जा ... जाति का अन्तर हुआ ... है, किन्तु एक ... रसना, विज्ञान ... से सीखी गयी है— ... कभी।

मस्तिष्क उसको ग्रहण नहीं करता—और वह अन्तर है संस्कारों का अन्तर* । जो संस्कार भारतीयों के हैं, उनके विपरीत संस्कार पाश्चात्य देशों के निवासियों के हैं और दोनो इतने विरोधी हैं कि उनका मेल दुष्कर है। यद्यपि कहानीकार अनुभव करता है कि यह दूरी मिट सकती है, और भविष्य में मिटेगी भी, पर कब, इसका स्वयं उसे भी पता नहीं।

"- - - - क्लारा ! मेरी अन्तरात्मा पुकारती हुई कहती है ; आज इस दूरी के सामने हम-तुम दोनों, हो सकता है पराजित हो गये हों, लेकिन विश्वास रखो, एक दिन आयेगा, हाँ, जब यह दूरी नहीं रहेगी। तब शायद यह लोग इतने विवश इतने असहाय नहीं होंगे। पर मुझे लगता है, मेरी आवाज स्वरहीन हो गई है। शायद मेरे शब्द विशृंखिल हो गये हैं - - -।"†

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र कथानक में, द्वितीय, चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओं के मेल से उभरे हैं। कथानक में क्लारा और भारतीय युवक की मानसिक संवेदनाओं के चित्रों को उभारने के लिए छोटी-छोटी घटनाओं को उतारा गया है। युवक का परिचय पेन्टर से होता है — एक युवक इटेलियन कलाकार से। लेखक को इस चित्रकार से कोई रुचि नहीं होती फिर भी जब वह (पेन्टर) लेखक को अपने घर आने को आमन्त्रित करता है, तो स्वतः उसके मुहँ से 'अवश्य' निकल जाता है, यद्यपि मन ही मन वह सोचता है कि वह कभी वहाँ नहीं जायेगा। यथा:—

"मेरा परिचय उस पेन्टर से कराया जाता है - - वह शक्ल सूरत से भी पेन्टर लगता है। लिबास से भी — — बोलचाल से भी। हर अंदाज से—

* "हमारे तुम्हारे बीच में एक बहुत बड़ी दूरी है। वह दूरी देश की नहीं है, जाति की नहीं है, भाषा की नहीं है, समाज की नहीं है। वह दूरी है संस्कार की। और इसे मेटना कठिन है।"
—लहर (संस्कारों की दूरी : डा. प्रतापनारायण टण्डन), मासिक पत्रिका मार्च १९६५, पृष्ठ ५८।

† लहर (संस्कारों की दूरी : डा० प्रतापनारायण टण्डन) मासिक पत्रिका, मार्च १९६५, पृष्ठ ५९

है, यथा—संस्कारों की दूरी, मिट्टी रोशनी का व्यूह और सरकारी जंग, तथा 'टुमारो' 'तुमारो' 'तुमारो' आदि—फिर भी इनमें इस प्रकार की कहानियों की एक निश्चित गति सीमा का स्पष्ट निर्देशन हो जाता है। इस काल की कहानियों में आश्चर्यजनक बौद्धिक गहनता देखते हुये ही इनका नये काल—द्वितीय काल—के अन्तर्गत विवेचन किया जा रहा है।

इस काल की प्रतिनिधि रचना 'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी है। आगे के पृष्ठों में हम इसी कहानी के आधार पर द्वितीय काल की डा० प्रताप-नारायण टंडन की कहानियों का मूल्यांकन करेंगे।

'संस्कारों की दूरी' नामक कहानी का कथानक प्रतीकात्मक है। मुख्यतः विचार-दर्शन को ही कथानक का रूप दिया गया है। इसमें कथानक सांकेतिक और व्यंजना के रूप में दिखायी देता है। सम्पूर्ण कथानक कथ्य न होकर व्यंजित है। मूल रूप में कथानक केवल इतना ही है कि एक भारतीय युवक रोम जाता है और वहां एक प्रदर्शनी में क्लारा नाम की युवती से भेंट करता है। उससे वार्तालाप होता है और अगले दिन प्लेन से रोम छोड़ देता है। लेकिन कथानक में पूर्व और पश्चिम के विचार दर्शन संस्कारों का प्रतीकात्मक रूप से वर्णन और उनके वैभिन्न का चिन्तन कथानक को सप्राण कर देता है। इस कहानी को चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी कथानक भी कहा जा सकता है। क्लारा टेसी और भारतीय युवक के चरित्र, दोनों के मानसिक द्वन्द्व और उनके संस्कार इस कहानी में बड़ी कुशलता पूर्वक उभर आये हैं।

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्ष के चित्रों में भी कथानक विधान दो ढंगों से हुआ है प्रथम, व्यक्ति के आत्म चिन्तन तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट संवेदनाओं के तादात्म्य से। इसमें भारतीय युवक के माध्यम से क्लारा का आत्म चिन्तन, भूत, भविष्य और वर्तमान में दोनों देशों की परिवर्तित मान्यतायें और संस्कारों की दूरी का दायरा, मानसिक ऊहापोह आदि प्रतीकों के सहारे उभरते हैं। भारतीयों और पाश्चात्यों में एक बहुत बड़ा अन्तर भाषा का नहीं है, देश का नहीं है, क्योंकि भाषा का अन्तर एक दूसरे की भाषाओं को जानकर मेटा जा सकता है, जाति का अन्तर कुछ अर्थ नहीं रखता, विज्ञान ने देश के अन्तर को दूर कर दिया है, किन्तु एक अन्तर है, वह कभी मिट नहीं सकता, ... बचपन से ... गयी है—

मस्तिष्क उसको ग्रहण नहीं करता—और वह अन्तर है संस्कारों का अन्तर* । जो संस्कार भारतीयों के हैं, उनके विपरीत संस्कार पाश्चात्य देशों के निवासियों के हैं और दोनों इतने विरोधी हैं कि उनका मेल दुष्कर है। यद्यपि कहानीकार अनुभव करता है कि यह दूरी मिट सकती है, और भविष्य में मिटेगी भी, पर कब, इसका स्वयं उसे भी पता नहीं।

"- - - - क्लारा ! मेरी अन्तरात्मा पुकारती हुई कहती है ; आज इस दूरी के सामने हम-तुम दोनों, हो सकता है पराजित हो गये हों, लेकिन विश्वास रखो, एक दिन आयेगा, हाँ, जब यह दूरी नहीं रहेगी। तब शायद यह लोग इतने विवश इतने असहाय नहीं होंगे। पर मुझे लगता है, मेरी आवाज स्वरहीन हो गई है। शायद मेरे शब्द विशृंखिल हो गये हैं - - -।"†

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र कथानक में, द्वितीय, चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओं के मेल से उभरे हैं। कथानक में क्लारा और भारतीय युवक की मानसिक संवेदनाओं के चित्रों को उभारने के लिए छोटी-छोटी घटनाओं को उतारा गया है। युवक का परिचय पेन्टर से होता है — एक युवक इटेलियन कलाकार से। लेखक को इस चित्रकार से कोई रुचि नहीं होती फिर भी जब वह (पेन्टर) लेखक को अपने घर आने को आमन्त्रित करता है, तो स्वतः उसके मुहँ से 'अवश्य' निकल जाता है, यद्यपि मन ही मन वह सोचता है कि वह कभी वहाँ नहीं जायेगा। यथा :—

"मेरा परिचय उस पेन्टर से कराया जाता है - - वह शक्ल सूरत से भी पेन्टर लगता है। लिबास से भी — — बोलचाल से भी। हर अंदाज से—

---

* "हमारे तुम्हारे बीच में एक बहुत बड़ी दूरी है। वह दूरी देश की नहीं है, जाति की नहीं है, भाषा की नहीं है, समाज की नहीं है। वह दूरी है संस्कार की। और इसे मेटना कठिन है।"
—लहर (संस्कारों की दूरी : डा. प्रतापनारायण टण्डन), मासिक पत्रिका मार्च १९६५, पृष्ठ ५८।

† लहर (संस्कारों की दूरी : डा० प्रतापनारायण टण्डन) मासिक पत्रिका, मार्च १९६५, पृष्ठ ५९

"कभी हमारे स्टूडियों में भी आइये" वह झटकेदार शेकहैंड करता हुआ मुझसे कहता है।

"अवश्य" और मैं कभी उसके स्टूडियो में न जाने की कसम मन में खाता हूँ।*

इसी प्रकार बस स्टेण्ड पर जाना, टाइवर नदी के पुल से नीचे बहते पानी को देखना और क्लारा के घर पर जाना आदि छोटी-छोटी घटनाएँ कथानक के विचारों से बोझिल वातावरण को गति देती हैं, जिससे मानसिक संघर्ष और भी उभरते हैं।

एक बात यहाँ ध्यान में रखने की है, कि डा० प्रतापनारायण टंडन की इस कहानी 'संस्कारों की दूरी' में प्रतीक जैनेन्द्र की तरह के नहीं हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में प्रतीक के रूप में मुख्यतः पेड़ पौधे, जीव जन्तु आदि प्रयुक्त हुए हैं। ('वह बिचारा सांप' में सांप, 'तत्सत्' में बड़, पीपल, शीशम, बबूल तथा 'चिड़िया की बच्ची' में चिड़िया के चरित्र — यद्यपि ये प्रतीकात्मक चरित्र विशुद्ध रूप से मानव सापेक्ष्य हैं‡) किन्तु डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानी—'संस्कारों की दूरी'—में प्रतीक दार्शनिक धरातल पर हैं और कहानी बौद्धिक होते हुए भी दर्शनपक्ष से अछूती नहीं है। क्लारा जिस देश की रहने वाली है, उस देश में परपुरुष के साथ घूमना बुरा नहीं समझा जाना, चुम्बन उनके यहाँ की स्वाभाविक प्रक्रिया है और शरीर अर्पण असाधारण नहीं है। किन्तु क्लारा के हृदय में वासना का उदय और उससे भारतीय युवक का भी आवेष्टित होकर स्वाभाविक कर्म में प्रवृत्त होना, लेखक स्पष्ट शब्दों में नहीं लिखता, अपितु प्रतीकात्मक रूप में वर्णित करता है।

"- - - - क्लारा मेरे ऊपर झुक जाती है।

मुझे शून्य से एक आवाज़ फुसफुसाती सी लगती है, "सुनो - - तुम्हें क्या कोई अनुभूति नहीं होती ? सच बताना।"

---

* लहर (संस्कारों की दूरी : डा० प्रतापनारायण टण्डन), मासिक पत्रिका, मार्च १९६५ पृष्ठ २३

‡ आधुनिक हिन्दी कहानी, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ १०

मुझे अपनी आँखों के सामने मटमैला बिन्दु चमकता लगता है। एक छोटा सा गोल धब्बा, धीरे-धीरे टिमटिमाता हुआ। ऐसा मालूम होता है कि दूर-दूर चमकता हुआ, रह-रह कर वह क्रमशः निकट आने लगता है, पास बहुत पास। मैं उससे टकरा जाता हूँ, उसमे खो जाता हूँ ——

डा० प्रतापनारायण टण्डन का उसका यह वर्णन एक ओर यदि कहानी को प्रबुद्ध बौद्धिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है तो दूसरी ओर साधारण पाठकों से काफी दूर कर देता है — उसमें दुरूहता है, जटिलता है और......।

'सस्कारो की दूरी' कहानी के विचार काफी प्रौढ एवं परिपक्व हैं। लेखक का मुख्य उद्देश्य भारत और रोम — विदेश — के रहन-सहन के अन्तर को चित्रित करना रहा है। भारत में कोई युवक किसी युवती की कमर में हाथ डालकर घूमे तो सभी की दृष्टियाँ उसे दुश्चरित्र ठहरा देंगी, उसे स्वयं आप ही झिझक लगेगी और वह संकोच करेगा। किन्तु विदेशों में यह एक स्वाभाविक क्रिया है, लोग सड़कों पर निर्द्वन्द्व घूमते हैं। हमारे यहाँ एक दूसरे के जीवन के निजी रहस्यो का भडाफोड़ करने को उत्सुक रहते हैं पर वहाँ किसी के वैयक्तिक जीवन से कोई रुचि नहीं, लगाव नहीं ; सभी स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। यथा—

'नहीं' 'सच !' मैं फिर कहता हूँ।....मैं क्लारा की कमर मे हाथ डाल कर खुली रौनकदार सड़को पर घूमने मे कुछ सकोच करता हूँ। पर मेरी झिझक अपने आप दूर हो जाती है। देश, जाति, धर्म और वातावरण के परम्परागत संस्कार यहाँ मुझे बन्धन नहीं लगते। शायद हम अपने देश मे एक दूसरे के निजी जीवन के रहस्यों के भंडाफोड़ अखबारो मे देखना चाहते हैं। उन पर मखौल और कानाफूँसी करके एक पाशविक तृप्ति पाते हैं। हालाकि अपने भेदों की हवा भी हम दूसरों को नहीं लगने देना चाहते। यह यहाँ शायद सभी लोग इतनी पारस्परिक स्वतन्त्रता को सामान्य स्तरीय मान्यता देते हैं।..........."

भारत में रहने वाले की जिन्दगी व्यवस्थित है, बन्धन मे बन्धी हुई है, इतनी अधिक बन्धी हुई है कि स्वतन्त्रता ही नष्ट हो गई है। कही जाति का बन्धन है, कही नीति का बन्धन है, कही देश का बन्धन है, कहीं प्रीति का बन्धन है, कही धर्म का बन्धन है, कहीं समाज का बन्धन है, कही बन्धनों के बीच बन्धन है—आशय यह कि मनुष्य का सारा जीवन बन्धनो मे बन्ध गया है,

मुझे अपनी आँखों के सामने मटमैला बिन्दु चमकता लगता है। एक छोटा सा गोल धब्बा, धीरे-धीरे टिमटिमाता हुआ। ऐसा मालूम होता है कि दूर-दूर चमकता हुआ, रह-रह कर वह क्रमशः निकट आने लगता है, पास बहुत पास। मैं उससे टकरा जाता हूँ, उसमें खो जाता हूँ ———

डा० प्रतापनारायण टण्डन का उसका यह वर्णन एक ओर यदि कहानी को प्रबुद्ध बौद्धिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है तो दूसरी ओर साधारण पाठकों से काफी दूर कर देता है — उसमें दुरूहता है, जटिलता है और........।

'संस्कारों की दूरी' कहानी के विचार काफी प्रौढ़ एवं परिपक्व हैं। लेखक का मुख्य उद्देश्य भारत और रोम — विदेश — के रहन-सहन के अन्तर को चित्रित करना रहा है। भारत में कोई युवक किसी युवती की कमर में हाथ डालकर घूमे तो सभी की दृष्टियाँ उसे दुश्चरित्र ठहरा देंगी, उसे स्वयं आप ही झिझक लगेगी और वह संकोच करेगा। किन्तु विदेशों में यह एक स्वाभाविक क्रिया है, लोग सड़कों पर निर्द्वन्द्व घूमते हैं। हमारे यहाँ एक दूसरे के जीवन के निजी रहस्यों का भंडाफोड़ करने को उत्सुक रहते हैं पर वहाँ किसी के वैयक्तिक जीवन से कोई रुचि नहीं, लगाव नहीं; सभी स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। यथा—

'नहीं' 'सच !' मैं फिर कहता हूँ।...मैं बलारा की कमर में हाथ डाल कर पुली रौनकदार सड़कों पर घूमने में कुछ संकोच करता हूँ। पर मेरी झिझक अपने आप दूर हो जाती है। देश, जाति, धर्म और वातावरण के परम्परागत संस्कार यहाँ मुझे बन्धन नहीं लगते। शायद हम अपने देश में एक दूसरे के निजी जीवन के रहस्यों के भंडाफोड़ अखबारों में देखना चाहते हैं। उन पर मखौल और कानाफूंसी करके एक पाशविक तृप्ति पाते हैं। हालांकि अपने भेदों की हवा भी हम दूसरों को नहीं लगने देना चाहते। यह यहाँ शायद सभी लोग इतनी पारस्परिक स्वतन्त्रता को सामान्य स्तरीय मान्यता देते हैं।............"

भारत में रहने वाले की जिन्दगी व्यवस्थित है, बन्धन में बन्धी हुई है, इतनी अधिक बन्धी हुई है कि स्वतन्त्रता ही नष्ट हो गई है। कहीं जाति का बन्धन है, कहीं नीति का बन्धन है, कहीं देश का बन्धन है, कहीं प्रीति का बन्धन है, कहीं धर्म का बन्धन है, कहीं समाज का बन्धन है, कहीं बन्धनों के बीच बन्धन है—आशय यह कि मनुष्य का सारा जीवन बन्धनों में बन्ध गया है,

वह हिलडुल नहीं सकता, जबकि वहाँ पर (विदेश में) जीवन जीने के लिए है —बन्धन हीन मुक्त, भूत-भविष्य की चिन्ता से मुक्त। यहाँ वर्तमान को नगण्य समझा जाता है, वहाँ वर्तमान को सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया जाता है, क्योंकि भविष्य भी तो वर्तमान का रूप धारण करेगा और यदि वर्तमान सुन्दर बनता जा रहा है तो भविष्य आप ही सुन्दर बन जायेगा। क्लारा कितने दार्शनिक अन्दाज से कहती है —

'मैं एक आदि और अन्त हीन जीवन को जी रही हूँ। मैं उसे बिना किसी क्रमबद्धता के भोग रही हूँ। मुझे कुछ पता नहीं कि मैं कल क्या थी, और और मेरी जिन्दगी में क्या था ? मुझे यह भी नहीं मालूम कि कल मैं क्या होऊँगी और मेरी जिन्दगी में क्या होगा ? मैं सिर्फ उस वस्तु को जानती हूँ। इस पल को अनुभव कर रही हूँ। इस तरह मैं न अतीत में जीती हूँ और न भविष्य में। मैं वर्तमान में जीती हूँ, सिर्फ वर्तमान में। और तुम..............'

........'तुम अतीत और भविष्य में जीते हो। तुम्हारे जीवन से वर्तमान का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसमें वर्तमान कुछ भी नहीं है। जिस कुछ को तुम वर्तमान समझते हो, वह या तो अतीत का पश्चात्ताप है और या भविष्य की भूमिका। हो सकता है इसमें कोई अर्थवत्ता हो ; हो सकता है कोई उपलब्धि छिपी हो, पर माफ करना, मुझे उसमें निरर्थकता—खोखलापन—नजर आता है।

यहाँ लेखक का—स्वयं का—विचार दर्शन बोलता ज्ञात होता है। वस्तुतः भारतीय भूत और भविष्य की चिन्ता में ही जीता है, वर्तमान उसके लिये नगण्य है। भविष्य बनाओ; जब तक वर्तमान सुन्दर न होगा, भविष्य कैसे सुन्दर हो जायेगा। भूत का भविष्य आज का वर्तमान ही तो है, आज का वर्तमान, भविष्य का भूत है। इस आधार पर वर्तमान तो कभी आता ही नहीं। जिस भविष्य को सुन्दर बनाने के लिये वर्तमान को नष्ट किया जाता है, वह कब वर्तमान बनेगा इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है, क्योंकि जब भविष्य को सुन्दर बनाने के उपकरण होंगे तो इस समय जो निर्धारित भविष्य है, उसके आने तक, जब वह वर्तमान बन जायेगा—उसमें आगे के भविष्य की चिन्ता और उसे सुन्दर बनाने के उपकरण प्रारम्भ हो जायेंगे। इस प्रकार भारतीय का जीवन खोखला है-निरर्थक है, केवल साधना है, तपस्या है और कुछ नहीं।

जीवन जीते हैं, इसलिये कि वह मिल गया है और जिया जाने वाला क्षण बिताना है (भोगना नहीं), भविष्य की आशा में। वस्तुतः यहाँ कहानीकार दार्शनिक अधिक हो गया है और इसने पाठक को केवल एक बार पढ़ 'डालने' की वस्तु न बनाकर मनन और चिन्तन की सामग्री दी है। कथानिर्माण में इतने अधिक प्रयोग इस कहानी में हुये हैं कि इसने कहानी की शिल्प-गति ही बदल दी है। कथा-विधान की इतनी पटुता, इतना हस्तलाघव, हिन्दी के किसी अन्य कहानीकार में सम्भव नहीं है। लेकिन साथ ही यह भी विचारना आवश्यक है कि कहानी के भाव पक्ष को देखते हुए कहानी की इतनी जटिलता, और इतना प्रतीकात्मक रूप किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं है। इसने कहानी को दुरूह बना दिया है। कहीं-कहीं तो कहानी की आत्मा में भी अस्पष्टता आ गई है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की इस कहानी की आत्मा व्यक्ति चरित्र के केन्द्र बिन्दु से निर्मित हुई है और वह केन्द्र बिन्दु है क्लारा—क्लारा टेसी। इस कहानी में उन्होंने जितने भी सामाजिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्नों को उठाया है, उनका आधार व्यक्तिगत पहलुओं से लिया गया है। अज्ञेय की कहानियाँ भी इसी प्रकार की व्यक्तिवादी हैं, किन्तु उनकी कहानियों पर यह दोषारोपण किया जाता है कि वे अपने से बाहर कुछ नहीं देखते, पर डा० प्रतापनारायण टण्डन की इस कहानी के पात्र क्लारा के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनके चरित्र निर्माण के विधान में अहं रूप की सबसे बड़ी प्रेरणा है, और जिस विचार भूमि पर यह चरित्र आधारित है, उसपर कहानीकार ने शिल्प कौशल से एक के माध्यम से ही समस्त विदेशी जीवन का परिचय दे दिया है। चरित्र विधान की दृष्टि से डा० प्रतापनारायण टण्डन का यह सबसे सफल आश्चर्यजनक शिल्पगत प्रयोग है।

लेखक सबसे पहले क्लारा की धुंधली आकृति शब्द चित्रों में अंकित करते हुए कहता है—

एक युवती की आकृति........क्लारा का चेहरा। सुनहरी त्वचा, हलके बस्तई बाल, नीली आँखें, पतले ओंठ, छोटी नाक और चमकदार दाँत, गाल पर पड़ती हुई मोहिनी रेखा से बनी हुई मोहक हँसी। निर्द्वंद्व, सुनहरे बालों के पीछे, लम्बे लटके हुए, ऊपर से गाँठ बान्धे हुए गुच्छों की लहरन....

क्नारा शान्त कार्यरत रहना चाहती है, दार्शनिकों का सा अन्दाज उसे कतई पसन्द नहीं। वह वर्तमान क्षण को—जीने वाले क्षण को—भोगना चाहती है, आनन्द से भोगना चाहती है। इसलिए जब नायक टाइबर नदी के पुल से नीचे बहते पानी को देखता है और देखते रहना चाहता है, तो वह बुरी तरह ऊब जाती है। यथा—

......टाइबर नदी का यह पुल मुझे बहुत अच्छा लगता है। उस पर खड़े होकर पानी को देखना, बस देखते रहना। हालांकि क्नारा मुझे ऐसा करते देखकर कभी-कभी ऊब जाती है। मानो भुनभुना कर कहती हो, यदि पानी ही निहारना था, तो फिर मुझे साथ लाकर बोर करने की क्या जरूरत थी? *

विश्लेषण का आग्रह अज्ञेय की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन के चरित्रों में सबसे अधिक है 'संस्कारों की दूरी' कहानी में इसी धरातल से क्नारा और भारतीय युवक के चरित्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। इन दोनों के चरित्रों की कर्म प्रेरणाओं, मनःस्थितियों, स्वभावों का सूक्ष्म आकलन और विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। यह विश्लेषण मनोविश्लेषण के अतिरिक्त आत्म विश्लेषण तथा संकेतों और सूक्ष्म हाव भावों के सहारे क्नारा तथा भारतीय युवक की कर्म प्रेरणाओं और मनः स्थितिओं के माध्यम से भी हुआ है। शैली विधान की दृष्टि से डा० प्रतापनारायण टण्डन की यह कहानी मिश्रित शैली अथवा प्रतीकात्मक शैली में है। इसमें इतिवृत्त भी है, संवाद भी है और आत्मविश्लेषण भी है। प्रतीकों के सहारे घटना का प्रवाह होता है।

शैली के सामान्य पक्ष में इनका हस्तलाघव और लेखन शिल्प दोनों ही विश्लेषण के धरातल पर चरितार्थ हुए हैं। कथोपकथन प्रायः छोटे, सुगठित और व्यंजनात्मक हैं। अज्ञेय की तरह डा० प्रतापनारायण टंडन की इस कहानी की शैली में सर्वत्र आश्चर्यजनक संयम, गम्भीरता, चयन और परिष्कार मिलता है, इसी से इनकी भाषा अमूर्त से अमूर्त मनोद्‌गारों, घात प्रतिघातों और मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति में सदैव सफल रही है।

---

* लहर [संस्कारों की दूरी : डा० प्रतापनारायण टण्डन] मासिक पत्रिका मार्च १९६५, पृष्ठ ५१।

'संस्कारों की दूरी ' कहानी को वातावरण प्रधान कहानी कहा जा सकता है। कहानी के आरम्भ से ही वातावरण को बोझिल बनाया गया है, भारतीय युवक प्लेन में बैठा हुआ मन ही मन 'गुडबाई क्लारा' कहकर क्लारा से विदा लेता है। यहाँ कहानी को वातावरण प्रधान बनाने के साथ ही जीवन का आरम्भ किया गया है। एक युवती के चेहरे की आकृति आँखों के सामने उभरने से वातावरण को सप्राण करने की चेष्टा की गयी है। युवक की आँखों के सामने चित्र घूमते हैं—अस्पष्ट चित्र, जो पाश्चात्य वातावरण की नींव पर हैं, जिन्हें कोई भी भारतीय एक निश्चित दूरी से देखता हुआ अनुभव करता है। और फिर उस वातावरण का निकटता से अनुभव करना—भोगे जाने वाले क्षण की बौद्धिक मीमांसा कहानी के वातावरण को सजग कर देती है ।

विदेश में युवक को नवीन वातावरण मिलता है जिसमें उसके संस्कार—परम्परागत संस्कार—विछल कर मुक्त हो जाते हैं और वह मुक्त जीवन का भोग करता है।

इसपर भी वातावरण में एक ऊब है, एक उदासी है—अनजानापन है, और उसके कारण निकटता होते हुए भी दूरी लगती है, सब कुछ बीता हुआ अतीत सा लगता है, भोगा हुआ क्षण लगता है, मुक्त हो रहा क्षण नहीं लगता।

वस्तुतः आधुनिक युग के कहानीकारों में डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानी 'संस्कारों की दूरी' का मूल्य सर्वाधिक है। इसमें रचना कौशल की प्रतिभा, नये-नये प्रयासों का सफल आग्रह इतना है कि इनकी शिल्प विधि में आश्चर्यजनक विविधता आ गई है। साथ ही देश काल, वातावरण और परिस्थिति का चित्रण इतने व्यापक और विस्तृत ढंग से किया गया है कि कुछ दोषों के होते हुए भी इसका स्थान सर्वोपरि सिद्ध हो जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, मानसिक ऊहापोह और दो भिन्न देशों की भिन्न संस्कृतियों के बीच खड़े एक युवक का अन्तर्द्वन्द्व कहानी को सप्राण बना देता है।

अध्याय : ४

अभिनव नाट्य कृतित्व

आधुनिक हिन्दी नाट्य विधा

डा. प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों एवं कहानियों की विवेचना के बाद हम उनके नाटकों पर आते हैं। नाट्य साहित्य मे अभी तक इनका परिमाण की दृष्टि से विशेष योगदान नहीं है, किन्तु गहनता और गठन की सीमा में इनकी रचनाएं नाट्य-विधा का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। डा. टण्डन जी की अब तक प्रकाशित रचनाएं, स्वर्गयात्रा-(ऐतिहासिक नाटक) और नवाब कनकौवा—(एकांकी संग्रह, जिसमें चार एकाकी, क्रमशः नवाब कनकौवा, टेलीग्राम, नौ हजार की चपत, गलतफहमी संग्रहीत हैं) प्राप्त होती है। कुछ एकाकी इनके अतिरिक्त भी यत्र-तत्र प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु हम इन्ही के आधार पर उनके कृतित्व का मान निर्धारण करेंगे।

इससे पहले कि हम डा. प्रतापनारायण टण्डन के ऐतिहासिक नाटक और उनके एकांकियों का मूल्यांकन करें, प्रथमः ऐतिहासिक नाटकों तथा एकांक्यो के विकासात्मक इतिहास पर संक्षेप मे दृष्टिपात कर लेना आवश्यक समझते हैं।

आधुनिक हिन्दी नाटकों के उद्भव के विषय में, यद्यपि इसका सम्बन्ध ब्रजभाषा * और कहीं-कहीं तो विद्यापति † से जोड़ा गया है, फिर भी यह

* वास्तव में आधुनिक हिन्दी या खड़ी बोली का सीधा सम्बन्ध ब्रज भाषा से ही है और खड़ी बोली नाटकों से पूर्व हमें ब्रज भाषा के ही नाटक प्राप्त होते हैं।

† मिश्र बन्धु विनोद, पृष्ट १४१।

निश्चित है कि वास्तव मे हिन्दी नाटक का प्रारम्भ उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अंग्रेजी प्रचार के फलस्वरूप हुआ। *

स्थूल रूप से देखा जाये तो ऐतिहासिक नाटकों की प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु युग से ही आरम्भ हो गई थी। भारतेन्दु जी न तो प्राचीनता को प्राचीन क- कर छोड़ने के पक्ष में थे और न ही नवीनता के दुराग्रह को स्वीकार कर पक्ष मे थे। कहने को आवश्यकता नही कि भारतेन्दु युग प्राचीन और अ चीन विचार धाराओं और संस्कृत रूपक विधान तथा आंग्ल नाट्य शैल मिलन का युग था। सत्य हरिश्चन्द्र, विषस्यविषमौषधम्, मुद्राराक्षस इनके ऐतिहासिक नाटक हैं। इसी युग के लाला श्रीनिवासदास लिखित 'संयो स्वयंवर' रणधीर और प्रेम मोहिनी तथा राधाकृष्णदास लिखित 'महा प्रताप सिंह या राजस्थान केशरी' से इस ऐतिहासिक नाट्य प्रवृति का रि माना जा सकता है। बालकृष्ण भट्ट के नाटक पौराणिक अधिक हैं, राधाचरण गोस्वामी का 'अमर सिंह राठौर' विकसित ऐतिहासिक नाटक रचियता ने नाट्य नियमों से बढ़कर देश-प्रेम माना है और मुसलमानों के अंग्रेजों पर क्षोभ प्रकट किया है। यह नाटक दुःखान्त है। हरिऔध अ नाटक 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' तथा 'रुक्मिणी परिणय' में संस्कृत वर्णवृत्तो महत्ता प्रदान की गई है।

भारतेन्दु युग तो हिन्दी ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण काल था, प्रसाद युग में हिन्दी नाटक अपनी सर्वतोमुखी स्वर्णिम प्रतिभा प्रकाशित में सफल होते हैं। इस प्रवृत्ति के सबसे बड़े नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' जिनके 'राज्यश्री,' 'विशाख', 'अजातशत्रु,' 'चन्द्रगुप्त,' 'स्कन्दगुप्त वि दित्य', 'ध्रुव स्वामिनी' आदि ऐतिहासिक नाटकों ने इसे आगे बढ़ाया। 'प्र दिचन' मे जयचन्द और और पृथ्वीराज की गृह-कलह के दुष्परिणामों के मा से वर्तमान आपसी युग की बुराइयाँ प्रदर्शित की गई हैं। इनके नाटकों संस्कृत और अंग्रेजी दोनों का ही प्रभाव लक्षित होता है। किन्तु इनके सम नाटककारों में अंग्रेजी नाट्य प्रणाली का दृढ़ आग्रह दिखायी देता है।

* आधुनिक हिन्दी नाटक : डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ११, २१, ३१ ; हिन्दी नाट्य विमर्श : डा० गुलाबराय, पृ० ११०

'रक्षा-बन्धन,' 'शिवा साधना,' स्वप्न भंग' और 'प्रतिशोध' आदि के लेखक हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में ऐतिहासिक कथा है। "इनके नाटक विगत 'कल' के द्वारा आज की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत करते है।" गोविन्दवल्लभ पंत ने कला पक्ष पर विशेष बल देते हुए भावपक्ष द्वारा राष्ट्रीय चेतना मे विशेष सहयोग दिया है। इनके 'राजमुकुट' और 'अन्तःपुर' ऐतिहासिक नाटको का प्रारम्भ गीतों से होता है, जिनसे संस्कृत नाटकों के नांदी पाठ की ध्वनि सुनाई देती है। फिर भी अंग्रेजी प्रभाव कम नहीं है। वर्जित दृश्यों को भी उन्होंने रंगमंच पर लाने का प्रयास किया है। सेठ गोविन्ददास ने, जबकि अन्य नाटककार विदेशी समस्याओं को ही प्रमुखता देते थे, इन्होंने हमारी ही समस्याओं को प्रमुखता दी। इनके ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' 'शशिगुप्त' और 'कुलीनता' विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी चिन्ताधारा गुप्त जी और प्रेमचन्द के अनुकूल प्रतीत होती है। मिश्र जी के नाटको जैसा बुद्धिवाद आधुनिक नाटककारों में उदयशंकर भट्ट में पाया जाता है। इनके ऐतिहासिक नाटक 'विक्रमादित्य' 'दाहर', 'मुक्तिपथ' और 'शक विजय' प्रमुख हैं। 'शक विजय' की कथा सुगठित और सम्बद्ध है; इसमें नाटककार ने कल्पना का सहारा अवश्य लिया है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों की भी रक्षा की है। यह भारतीय परम्परा के निकट है। उपेन्द्रनाथ अश्क के ऐतिहासिक नाटक 'जयपराजय' में भारतीय वातावरण और जीवन का ध्यान रखा गया है। 'कोणार्क' जगदीशचन्द्र माथुर का तीन अंकों का ऐतिहासिक नाटक है।

एकांकी के जन्म से आधुनिक लेखकों का ध्यान नाटक से हट कर एकांकी की ओर अधिक आकर्षित हुआ है। फलतः नाट्य साहित्य में अभिनव प्रयोग किये जाने लगे और नाटकों की धारा मन्द पड़ने लगी; आगे चलकर इस एकांकी का भी वेग विकास हुआ और उसकी भी नई-नई विधाएं रचित होने लगी। अब हम अति संक्षेप में एकांकी के विकास पर दृष्टिपात करेंगे।

हिन्दी में एकांकी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है किन्तु थोड़ी अवधि में ही इसने हिन्दी नाटक साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। यों तो हिन्दी साहित्य में एकांकी का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से ही माना जाता है, किन्तु इस समय के कतिपय कृतियों को एकांकी के अन्तर्गत रखना उचित नहीं है। वस्तुतः हिन्दी एकांकी का आरम्भ प्रसाद के 'एक घूंट' से हुआ है। इसे

हिन्दी एकांकी के क्षेत्र मे विशिष्ट प्रयोग कहा जा सकता है। इसके बाद भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवां' (एकांकी संग्रह) प्रकाशित हुआ, जिससे हिन्दी एकांकी में नया युग प्रारम्भ हुआ। इनके एकांकियों में पाश्चात्य भावों की उग्रता है तथा सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर विवेचन है। प्रो० अमरनाथ ने इब्सन और शॉ को इनका गुरु माना है। कारवां के प्रवेश कथन से तो उनपर डा. एच० लारेंस की एन्द्रियता के प्रभाव का भी अनुमान लगाया जा सकता है। वे आज के एकांकी नाटकों में प्राप्य यथार्थ और मनोवैज्ञानिक चित्रण के अगुआ कहे जा सकते हैं।

जिस प्रकार भुवनेश्वर प्रसाद के सन्देहवाद का कारण पाश्चात्य नाटक हैं उसी प्रकार गणेशप्रसाद द्विवेदी की सौन्दर्य धारणा और मनोविश्लेषण पद्धति भी अंग्रेजी एकांकियों और पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित दिखायी देती है। इनके एकांकियों में विनोद, हास्य और कौतूहल द्वारा सामाजिक विकृतियों के परिष्कार में विश्वास दिखायी देता है। 'रपट' एकाकी इसका प्रमाण है।

डा. रामकुमार वर्मा हिन्दी एकांकियों को उन्नत और प्रसिद्ध बनाने वाले कलाकार है। इनके प्रारम्भिक एकांकी प्रसाद के 'एक घूंट' के साथ ही लिखे गये थे। अंग्रेजी की एकांकी नाटक पद्धति, विकास, वस्तु संघटन आदि का सम्यक् ज्ञान होते हुए भी इनके एकांकियों में मौलिकता अक्षुण्ण है। 'पृथ्वीराज की आंखें' इनका प्रथम एकांकी संग्रह है और 'चारुमित्रा' तीसरा। 'चारुमित्रा' मे 'चारुमित्रा', 'उत्सर्ग', 'रजनी की रात' और 'अंधकार' चार एकांकी संग्रहीत हैं। डा. रामनाथ सुमन ने इसे सभी दृष्टियों से उत्तम बताया है। 'सप्तकिरण' 'कौमुदी महोत्सव' तथा 'रजत रश्मि मे पाँव' आदि एकांकी संग्रहों के विषय में कहा जा सकता है कि इनमें प्राप्त संघर्ष चित्रण, मनोवैज्ञानिक विवरण, नारी नारी समस्या, यथार्थ प्रतिपादन, वैज्ञानिक उन्नति, संकलनत्रय का निर्वाह विस्तृत रंग सकेत और अंग्रेजी शब्द प्रयोग आदि अंग्रेजी प्रभाव को सिद्ध करते हैं। साथ ही यत्रतत्र भारतीय इतिहास से सम्बन्धित एवं पौराणिक वातावरण भी प्राप्त होता है; जिससे एकाकीकार की मौलिकता का परिचय भी प्राप्त होता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के एकांकी यथार्थवाद की भूमि पर आधारित हैं। इनके एकांकियों की विशेषता है कि ये तर्क पर आधारित हैं, उनमें नारी की

राजपूत यदि पारस्परिक द्वेष और शौर्य प्रदर्शन की विवेक हीन भावना को छोड़ कर देशभक्ति के तेज से पूर्ण होते तो आज के इतिहास का नक्शा ही दूसरा होता है। वस्तुतः राणा प्रताप एक पीड़ित राजपूत हिन्दू थे, इनकी विपत्तियाँ उस समय जन साधारण की विपत्तियों का आरोपण बन गईं, अतः वे विपत्तियाँ हिन्दू जाति की विपत्तियाँ समझी जाने के कारण—कष्ट सहिष्णु होने के नाते राणाप्रताप समस्त हिन्दू-जाति के नेता बन गये।

राजपूती काल के चरित्रों पर लिखे गये एतिहासिक नाटकों में राजपूती शौर्य, प्रेम और बलिदान का देशभक्ति और त्याग की भावना से अतिरंजित वर्णन मिलता है। सत्य के दर्शन किसी में नहीं होते, सभी ने उस जातीय कलुष पर देशभक्ति का मुलम्मा चढ़ा दिया है। डा० प्रतापनारायण टण्डन का नाटक 'स्वर्ग यात्रा' इस दिशा में पहला क्रान्तिकारी कदम है जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों की तथातथ्य आलोचना की गई—इतिहास के एक पृष्ठ का वास्तविक चित्र उपस्थित किया गया है—ऐसा चित्र जिसमें मस्तिष्क और विवेक की अपेक्षा भावना का प्राधान्य है, जिसमें सार कम है। दम्भ अधिक। वस्तुतः डा० प्रताप-नारायण टण्डन का यह नाटक 'स्वर्गयात्रा' इस ऐतिहासिक नाट्य परम्परा की नवीन कड़ी है। इनके चारों एकांकी—नवाब कनकौवा', 'गलतफहमी', 'टेली-ग्राम' और 'नौ हजार की चपत' सामाजिक एकांकियों की कोटि में आते हैं। फिर भी विषय वस्तु की दृष्टि से इनका निम्न रूप में वर्गीकरण हो सकता है—

ऐतिहासिक नाटक—स्वर्गयात्रा

सामाजिक नाटक—गलतफहमी और नौ हजार की चपत

हास्य प्रधान नाटक—नवाब कनकौवा और टेलीग्राम।

अब हम इनका नाट्य कला के तत्वों के आधार पर विश्लेषण करेंगे। सामान्यतः आलोचक नाटकों के छैः तत्व मानते हैं,—कथातत्व, संवाद, चरित्र चित्रण, वातावरण का चित्रण, भाषा शैली तथा उद्देश्य। किन्तु जिस प्रकार से किसी भी विधा का लक्षण ऐसा होना चाहिये, जो उसे अन्य साहित्यिक विधाओं से स्पष्ट पृथकता प्रदान करे, उसी प्रकार उसके तत्व भी अन्य विधाओं से पृथ-कता प्रदान करने वाले होना चाहिये। अतः उपर्युक्त छहों तत्व ऐसे तत्व हैं जो उपन्यास कहानी के भी तत्व माने जाते हैं। अतः देखना यह है कि वह कौन से आधार हैं जो नाटक को कहानी और उपन्यास से पृथक् करते हैं। वे आधार हैं संवाद और दृश्य विधान। कोई भी कहानी साधारण हेर फेर कर नाटको

और दृश्य विधानों के रूप में प्रस्तुत किये जाने पर नाटक का कलेवर धारण कर लेती है।

नाटक मूलतः दृश्य होता है अर्थात् उसके अभिनयात्मक होने के कारण तीन तत्व रह जाते हैं—

१. कथा वस्तु, २. संवाद, ३. दृश्य विधान।

बाकी तीनों सभी तत्व इन तीनों के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं।

१: कथावस्तु—

कथावस्तु में चरित्र-चित्रण और उद्देश्य को लिया जा सकता है। क्योंकि पात्रों के चरित्र और कथा का उद्देश्य भी कथा का ही एक अंग है। चरित्र चित्रण को इसमें अलग तत्व मानने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि कथानक बिना पात्रों के चल नहीं सकता और पात्रों के जीवन का संघर्ष, घटनाएं कथा का ही स्वरूप हैं। नायक भी—चाहें वह प्रधान पात्र ही सही—अन्य पात्रों की तरह कथा का एक अंग है और उद्देश्य, जिसे पुरानी परम्परा में फल प्राप्ति कहा जा सकता है, वह तो कथानक का निःसन्देह अंग है। *

ऐतिहासिक नाटक स्वर्ग यात्रा की कथावस्तु चार अंकों में विभाजित है। इसमें राजपूती आन-बान और शान का वीरतापूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। किन्तु साथ ही राजस्थान के तथाकथित गौरवमय पृष्ठों को नाटककार ने भारत के गौरव का प्रतीक न मान कर झूठी आन-बान और मर्यादा का दम्भपूर्ण बोध और शौर्य का अन्ध प्रदर्शन ‡ माना है। लक्ष्मीनारायण मिश्र और हरिकृष्ण प्रेमी तो राजपूती इतिहास का चित्रण भारतीय गौरव को केन्द्रबिन्दु मान कर करते हैं। परन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने परम्पराओं की लीक

* हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा : रामगोपाल सिंह चौहान, पृ. १२१।

‡ स्वर्ग यात्रा (निवेदन) : प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ (i)

राजपूत यदि पारस्परिक द्वेष और शौर्य प्रदर्शन की विवेकहीन भावना को छोड़ कर देशभक्ति के तेज से पूर्ण होते तो आज के इतिहास का नक्शा ही दूसरा होता है। वस्तुतः राणा प्रताप एक वीर राजपूत हिन्दू थे, इनकी विजयें उस समय जन साधारण की विजयों का आरोहण बन गईं, अतः ये विजयें हिन्दू जाति की विजयें समझी जाने के कारण—कट्टर सहिष्णु होने के नाते राणाप्रताप समस्त हिन्दू-जाति के नेता बन गये।

राजपूती काल के चरित्रों पर लिखे गये ऐतिहासिक नाटकों में राजपूती शौर्य, प्रेम और बलिदान का देशभक्ति और त्याग की भावना से अतिरंजित वर्णन मिलता है। सत्य के दर्शन किसी में नहीं होते, सभी ने उस अतीत वस्तु पर देशभक्ति का मुलम्मा चढ़ा दिया है। डा० प्रतापनारायण टण्डन का नाटक 'स्वर्ण यात्रा' इस दिशा में पहला क्रान्तिकारी कदम है जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों की तथ्यात्मक आलोचना की गई—इतिहास के एक पृष्ठ का वास्तविक चित्र उपस्थित किया गया है—ऐसा चित्र जिसमें मस्तिष्क और विवेक की अपेक्षा भावना का प्राधान्य है, जिसमें सार कम है। दम्भ अधिक। वस्तुतः डा० प्रताप-नारायण टण्डन का यह नाटक 'स्वर्णयात्रा' इस ऐतिहासिक नाट्य परम्परा की नवीन कड़ी है। इनके चारों एकांकी—नवाब ननकौवा', 'गलतफहमी', 'हेली-ग्राम' और 'नौ हजार की चपत' सामाजिक एकांकियों की कोटि में आते हैं। फिर भी विषय वस्तु की दृष्टि से इनका निम्न रूप में वर्गीकरण हो सकता है—

ऐतिहासिक नाटक—स्वर्णयात्रा

सामाजिक नाटक—गलतफहमी और नौ हजार की चपत

हास्य प्रधान नाटक—नवाब ननकौवा और हेलीग्राम।

अब हम इनका नाट्य कला के तत्वों के आधार पर विश्लेषण करेंगे। सामान्यतः आलोचक नाटकों के छः तत्व मानते हैं,—कथातत्व, संवाद, चरित्र चित्रण, वातावरण का चित्रण, भाषा शैली तथा उद्देश्य। किन्तु जिस प्रकार से किसी भी विधा का लक्षण ऐसा होना चाहिये, जो उसे अन्य साहित्यिक विधाओं से स्पष्ट पृथकता प्रदान करे, उसी प्रकार उसके तत्व भी अन्य विधाओं से पृथकता प्रदान करने वाले होना चाहिये। अतः उपर्युक्त छहों तत्व ऐसे तत्व हैं जो उपन्यास कहानी के भी तत्व माने जाते हैं। अतः देखना यह है कि वह कौन से आधार हैं जो नाटक को कहानी और उपन्यास से पृथक् करते हैं। वे आधार हैं संवाद और दृश्य विधान। कोई भी कहानी साधारण हेर फेर कर संवादों

और दृश्य विधानों के रूप में प्रस्तुत किये जाने पर नाटक का कलेवर धारण कर लेती है।

नाटक मूलतः दृश्य होता है अर्थात् उसके अभिनयात्मक होने के कारण तीन तत्व रह जाते हैं—

१. कथा वस्तु, २. संवाद, ३. दृश्य विधान।

बाकी तीनों सभी तत्व इन तीनों के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं।

१: कथावस्तु—

कथावस्तु में चरित्र-चित्रण और उद्देश्य को लिया जा सकता है। क्योंकि पात्रों के चरित्र और कथा का उद्देश्य भी कथा का ही एक अंग है। चरित्र चित्रण को इसमे अलग तत्व मानने की आवश्यकता ही नही, क्योंकि कथानक बिना पात्रों के चल नहीं सकता और पात्रों के जीवन का संघर्ष, घटनाएँ कथा का ही स्वरूप हैं। नायक भी—चाहें वह प्रधान पात्र ही सही—अन्य पात्रों की तरह कथा का एक अंग है और उद्देश्य, जिसे पुरानी परम्परा में फल प्राप्ति कहा जा सकता है, वह तो कथानक का निःसन्देह अंग है। *

ऐतिहासिक नाटक स्वर्ग यात्रा की कथावस्तु चार अंको में विभाजित है। इसमें राजपूती आन-बान और शान का वीरतापूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। किन्तु साथ ही राजस्थान के तथाकथित गौरवमय पृष्ठों को नाटककार ने भारत के गौरव का प्रतीक न मान कर झूठी आन-बान और मर्यादा का दम्भपूर्ण बोध और शौर्य का अन्ध प्रदर्शन ‡ माना है। लक्ष्मीनारायण मिश्र और हरिकृष्ण प्रेमी तो राजपूती इतिहास का चित्रण भारतीय गौरव को केन्द्रबिन्दु मान कर करते हैं। परन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने परम्पराओं की लीक

* हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा : रामगोपाल सिंह चौहान, पृ. १९१।

‡ स्वर्ग यात्रा (निवेदन) : प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ (i)

नहीं पीटी वरन् मस्तिष्क लगा कर वर्तमान के लिए उचितानुचित का विवेक किया है। राजस्थान के गौरवमय इतिहास के ये पृष्ठ तत्कालीन समाज को भले ही मार्ग प्रशस्त कर सकते हों, किन्तु अब निरी भावना और विवेक हीनता ही समझी जायगी—किसी प्रकार आदर्श मान कर अनुकरण योग्य नहीं माने जा सकते। इस सम्बन्ध में स्वयं नाटककार लिखता है—"....राजपूती आन-बान, मर्यादा और प्रतिष्ठा का दम्भपूर्ण बोध, शौर्य का अन्ध प्रदर्शन, प्रेम का विवेकहीन स्वीकरण और बलिदान की त्यागमयी भावना का चित्रण करने वाला यह नाटक एक सुगठित और सुनियोजित घटना-चक्र का आधार लेकर विकसित होता है।" *

नाटककार ने यदि इसके विवेकहीन पक्ष पर दृष्टिपात किया है तो साथ ही उज्ज्वल पक्ष—बलिदान की 'त्यागमयी भावना' के चित्रण से भी पीछे नहीं रहा है। कथावस्तु तीन ऐतिहासिक स्थलों—ऊडिट, पूंगल और मंडोर—में त्रिकोणात्मक रूप से विकसित होती है। कथावस्तु में शास्त्रीय कार्य व्यापार की पाँचों अवस्थाएँ—प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रायाशा, फलागम और नियताप्ति-मिल जाती हैं, यद्यपि इनकी ओर लेखक का ध्यान विशेष रूप से नहीं है। प्रारम्भ ऊडिट के महाराज मणिकराज की राजसभा में ज्योतिषी द्वारा राजकुमारी कोडमदे की भविष्य में—निकट भविष्य में—होने वाले अनिष्ट की घोषणा से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व से होता है। तीसरे दृश्य में राजकुमारी कोडमदे द्वारा अपने विवाह के प्रति विरक्ति दिखाना तथा राजा मणिकराज तथा महारानी मोनलदे के वार्तालाप में प्रयत्न की अवस्था दिखाई देती है। ज्योतिषी ने जो भविष्यवाणी की थी वह फलीभूत हो सकती है, यदि कोडमदे का विवाह अडं-कमल (मण्डोर का राजकुमार जिसके पास स्वयं माणिकराज ने अपनी पुत्री से विवाह करने के अनुरोध के साथ विवाह स्वीकृति सूचक नारियल भेजा था) से नहीं होता है तो शान्तिधारा में विघ्न की संभावना का अस्पष्ट चित्र मस्तिष्क में बनने लगता है। क्योंकि राजकुमार अडंकमल इसे अपमान समझकर चुप बैठने वाला नहीं है। यह प्रयत्न की अवस्था द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य तक चलती है। दूसरे दृश्य में प्राप्त्याशा की अवस्था इस कथन से स्पष्ट हो जाती है, जब महाराज राणगदेव (सादूल के पिता) अपनी पत्नी अपन देवी से

* [illegible] निवेदन

वार्तालाप के बीच सूचना देते हैं कि कोडमदे का विवाह सादूल से पक्का हो गया है।* इनके वार्तालाप में अनिष्ट की संभावना भी स्पष्ट हो जाती है। ‡ यह प्राप्त्याशा की अवस्था तीसरे अंक के तीसरे दृश्य के मध्य तक चलती है। तृतीय दृश्य में जब अड़कमल के पास दस्युराज मेहराज का वृद्ध पिता साँकला सरदार आता है और सादूल से बदला लेने की भावना प्रकट करता है, वहाँ से 'फलागम की भूमिका बनने लगती है, और चतुर्थ अंक के चौथे, पाँचवें दृश्य में अधिक स्पष्ट हो जाती है। अन्दन नगर में भाटी और राठौर सैनिकों का भीषण युद्ध फलागम है और वृद्ध साँकला का युद्ध के मैदान में कूद पड़ना, राजकुमार सादूल का अड़कमल के हाथों घायल हो जाना नियताप्ति की भूमिका है। राजकुमार सादूल के प्राणान्त से नियताप्ति स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि जो अनिष्ट की घोषणा प्रारम्भ में ज्योतिषी

---

* राणांगदेव—तुमने ठीक ही सूचना दी थी महारानी, आज ऊदिट से महाराज माणिकराज ने अपनी कन्या के विवाह का नारियल राजकुमार सादूल के लिये भेजा था।

अचलदेवी—आपने उसे स्वीकार कर लिया न महाराज?

राणांगदेव—स्वीकार क्यों न करता? तुमने पहले ही इस विषय में आग्रह किया था।

—स्वर्ग यात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ ४३।

‡ राणांगदेव—मुझे तो ऐसा लगता है कि कोई अनिष्ट होने वाला है और उसी की भूमिका बन रही है।

अचलदेवी—महाराज यदि ऐसा भी है तो होनी को रोका नहीं जा सकता। यदि कर्तव्य रक्षा का अर्थ हो विपत्ति का आह्वान करना है, तो फिर जो होना है वह हो।

राणांगदेव—इस विवाह की अनिवार्य प्रतिक्रिया मंडोर पर यह होगी कि वह सेना लेकर चढ़ आयेगा। अड़कमल इतना बड़ा अपमान सहज ही में नहीं भूल सकता।

—स्वर्ग यात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ४१।

ने की थी, कि राजकुमारी का जीवन संकट में है, वही स्पष्ट हो जाता है। सादूल—कोडमदे के पति—के मारे जाने से राजकुमारी की स्थिति स्पष्ट हो जाती है और अंतिम सातवें दृश्य में जब राजकुमारी कोडमदे सादूल के शव पर चिता बनाने बैठती है और अपना एक हाथ काटकर पितृगृह और दूसरा पतिगृह भिजवाकर चिता में अग्नि प्रज्वलित कराती है, वहाँ नियताप्ति है। ज्योतिषी की भविष्यवाणी अन्त में कोडमदे के शरीर को भस्म करके सफल होती है। इस प्रकार प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, फलागम और नियताप्ति, पाँचों कार्य व्यापार की अवस्थाएँ इस नाटक मे मिल जाती हैं।

स्वर्ग यात्रा नाटक की मूल कथा समस्यात्मक विडम्बना से सम्बन्ध रखती है। अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव के कारण उसका रूप गठन पूर्व ऐतिहासिक नाटकों जैसा नही है। अपने-अपने संस्कारों में प्रत्येक पात्र इस प्रकार बँधा हुआ है कि भिन्न कार्य कर ही नहीं सकता। समूचे नाटक की कथावस्तु संस्कारों में विवश बँधे हुए पात्रों के एक-एक कार्यकलाप पर पग धरती हुई आगे गतिशील होती है। महाराज माणिकराज अपनी पुत्री का विवाह अच्छे कुल में करना चाहते हैं, इसीलिए मण्डोर के राजकुमार अर्डकमल के पास टीका भेजते हैं, उनकी पुत्री कोडमदे सादूल से प्रेम करती है, किन्तु नारी सुलभ लज्जा के कारण अपने प्रेम को पिता के सम्मुख प्रकट नहीं कर पाती, साथ ही राजपूतानी होने के कारण उस प्रेम पर दूसरे का स्वीकरण भी स्वीकार नहीं कर सकती। अतः मन ही मन मरने का निश्चय कर लेती है। जब माणिक-राज को इसका पता चलता है, वे कर्तव्य-भावना से भी अधिक पुत्री-प्रेम के प्रवाह में बह जाते हैं। और राजकुमार सादूल से विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। सादूल भी जो पहले से ही राजकुमारी को अपना हृदय दे बैठा है, अपने प्रेम की परिणति विवाह में होते देख प्रत्येक भावुक नवयुवक की तरह स्वीकृति दे देता है। वह जानता है कि उसका सामना अर्डकमल से होगा, फिर भी उसके क्षत्रियत्व का जोश इस कार्य से हतोत्साहित नहीं करता, इसी बीच दस्युराज मेहराज को नष्ट करने से मिली सफलता ने उसे आवश्यकता से अधिक उन्मादी बना दिया है, साथ ही माणिकराज का अनुरोध वह उनके सम्मान के कारण टाल नहीं पाता अतः स्वीकृति दे देता है। राजकुमार अर्डकमल भी क्षत्रियत्व का ज्वलन्यमान प्रतीक है, वह बिना पूर्व सूचना के उसे मध्य में हटा देने के कारण स्वयं को अपमानित समझता है, अतः बदले की भावना उसमें जागरण करती है।

दस्युराज साँकला अपने पुत्र के निधन के कारण प्राणहर्ता सादूल के विरुद्ध हो गया है, अतः सादूल से यदि प्रतिशोध की भावना रखता है, तो अनुचित जान नहीं पड़ता। वस्तुतः प्रत्येक पात्र एक-दूसरे से इस प्रकार गुथा हुआ है—कथानक में उलझा हुआ है कि भावी घटना का परिणाम होना आवश्यक हो गया था।

नाटक में त्याग की भावना का भी उत्कर्षात्मक चित्रण हुआ है। प्रत्येक पात्र में त्याग की भावना है, बलिदान की भावना है, मरना तो उनके बाँयें हाथ का खेल है।

हास्य एकांकी—'टेलीग्राम' एकांकी सामाजिक से अधिक हास्य प्रधान है। नवाब कनकौवा, भी हास्य एकांकी ही है; किन्तु इन दोनों को पूर्ण हास्य एकांकी नहीं कहा जा सकता। इनमें सामाजिकता का भी एक पुट है, फिर हास्य के अधिक निकट होने से इन्हें हास्य एकांकी की श्रेणी में रखा गया है। 'टेलीग्राम' में मध्यवर्गीय एक ऐसे परिवार का अंकन किया गया है जिसके यहाँ लड़के वाले लड़की देखने आ रहे हैं। यह एक ऐसा परिवार है, जहाँ चार-चार जवान लड़कियाँ हैं और उनके हाथ पीले करने को पैसा अधिक नहीं है। एक लड़के वाला लड़की देखने को तैयार हो गया है और आज आने वाला है, इसीलिए घर भर में हड़बड़ी मची हुई है। गृहणी कल्याणी परेशान है, जरा-जरा सी आवाज से चौंक जाती है, लड़के के आने का भ्रम कर बैठती है। और पति ऐसा कि उसे कोई चिन्ता नहीं, आलस्य में नौ बजे तक सोता रहता है। अन्त में टेलीग्राम आ जाता है कि आज लड़के वाले नहीं आयेंगे। और तब सब हड़बड़ी समाप्त हो जाती है।

वस्तुतः यह एकांकी आज के समाज पर व्यंग है। इसका हास्य बड़ा निखरा हुआ है। आलसी पति और कर्मशीला पत्नी के मध्य मध्यवर्गीय समाज में प्रचलित समस्यात्मक विडम्बना—लड़की के विवाह—ने एकांकी को कोरे हास्य की श्रेणी से उठाकर मनन और चिन्तन की सीमा तक ला दिया है। वर्णन का ढग और वार्तालाप इसके हास्य को अक्षुण्ण रखते हैं।

इसी प्रकार 'नवाब कनकौवा' एकांकी लखनऊ के नवाबी ठाठों में पली पतंगबाजी पर आधारित है। लखनऊ में पतंगबाजी का शौक बहुत पुराना है—नवाबों के खानदान का है, और इसमें हार-जीत, मौत और जिन्दगी का

ने की थी, कि राजकुमारी का जीवन संकट में है, वहीं स्पष्ट हो जाता है। सादूल–कोडमदे के पति–के मारे जाने से राजकुमारी की स्थिति स्पष्ट हो जाती है और अन्तिम सातवें दृश्य में जब राजकुमारी कोडमदे सादूल के शव पर चिता बनाने बैठती है और अपना एक हाथ काटकर पितृगृह और दूसरा पतिगृह भिजवाकर चिता में अग्नि प्रज्वलित कराती है, वहाँ नियताप्ति है। ज्योतिषी की भविष्यवाणी अन्त में कोडमदे के शरीर को भस्म करके सफल होती है। इस प्रकार प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, फलागम और नियताप्ति, पाँचों कार्य व्यापार की अवस्थाएँ इस नाटक में मिल जाती हैं।

स्वर्ग यात्रा नाटक की मूल कथा समस्यात्मक विडम्बना से सम्बन्ध रखती है। अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव के कारण उसका रूप गठन पूर्व ऐतिहासिक नाटकों जैसा नहीं है। अपने-अपने संस्कारों में प्रत्येक पात्र इस प्रकार बँधा हुआ है कि भिन्न कार्य कर ही नहीं सकता। समूचे नाटक की कथावस्तु संस्कारों में विवश बँधे हुए पात्रों के एक-एक कार्यव्यापार पर पग धरती हुई आगे गतिशील होती है। महाराज माणिकराज अपनी पुत्री का विवाह अच्छे कुल में करना चाहते हैं, इसीलिए मण्डोर के राजकुमार अर्डकमल के पास टीका भेजते हैं, उनकी पुत्री कोडमदे सादूल से प्रेम करती है, किन्तु नारी सुलभ लज्जा के कारण अपने प्रेम को पिता के सम्मुख प्रकट नहीं कर पाती, साथ ही राजपूतानी होने के कारण उस प्रेम पर दूसरे का स्वीकरण भी स्वीकार नहीं कर सकती। अतः मन ही मन मरने का निश्चय कर लेती है। जब माणिक-राज को इसका पता चलता है, वे कर्तव्य-भावना से भी अधिक पुत्री-प्रेम के प्रवाह में बह जाते हैं। और राजकुमार सादूल से विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। सादूल भी जो पहले से ही राजकुमारी को अपना हृदय दे बैठा है, अपने प्रेम की परिणति विवाह में होते देख प्रत्येक भावुक नवयुवक की तरह स्वीकृति दे देता है। वह जानता है कि उसका सामना अर्डकमल से होगा, फिर भी उसके क्षत्रियत्व का जोश इस कार्य से हतोत्साहित नहीं करता, इसी बीच दस्युराज मेहराज को नष्ट करने से मिली सफलता ने उसे आवश्यकता से अधिक उत्साही बना दिया है, साथ ही माणिकराज का अनुरोध वह उनके सम्मान के कारण टाल नहीं पाता अतः स्वीकृति दे देता है। राजकुमार अर्डकमल भी क्षत्रियत्व का जाज्वल्यमान प्रतीक है, वह बिना पूर्व सूचना के उसे मध्य से हटा देने के कारण अपने को अपमानित समझता है, अतः बदले की भावना उठना अवश्यम्भावी है।

दस्युराज साँकला अपने पुत्र के निधन के कारण प्राणहर्ता सादूल के विरुद्ध हो गया है, अतः सादूल से यदि प्रतिशोध की भावना रखता है, तो अनुचित जान नहीं पड़ता। वस्तुतः प्रत्येक पात्र एक-दूसरे से इस प्रकार गुंथा हुआ है—कथानक में उलझा हुआ है कि भावी घटना का परिणाम होना आवश्यक हो गया था।

नाटक में त्याग की भावना का भी उत्कर्षात्मक चित्रण हुआ है। प्रत्येक पात्र में त्याग की भावना है, बलिदान की भावना है, मरना तो उनके बाँयें हाथ का खेल है।

हास्य एकांकी—'टेलीग्राम' एकांकी सामाजिक से अधिक हास्य प्रधान है। नवाब कनकौवा, भी हास्य एकांकी ही है; किन्तु इन दोनों को पूर्ण हास्य एकांकी नहीं कहा जा सकता। इनमें सामाजिकता का भी एक पुट है, फिर हास्य के अधिक निकट होने से इन्हें हास्य एकांकी की श्रेणी में रखा गया है। *'टेलीग्राम' में मध्यवर्गीय एक ऐसे परिवार का अंकन किया गया है* जिसके यहाँ लड़के वाले लड़की देखने आ रहे हैं। यह एक ऐसा परिवार है, जहाँ चार-चार जवान लड़कियाँ हैं और उनके हाथ पीले करने को पैसा अधिक नहीं है। एक लड़के वाला लड़की देखने को तैयार हो गया है और आज आने वाला है, इसीलिए घर भर में हड़बड़ी मची हुई है। गृहणी कल्याणी परेशान है, जरा-जरा सी आवाज से चौंक जाती है, लड़के के आने का भ्रम कर बैठती है। और पति ऐसा कि उसे कोई चिन्ता नहीं, आलस्य में नौ बजे तक सोता रहता है। अन्त में टेलीग्राम आ जाता है कि आज लड़के वाले नहीं आयेंगे। और तब सब हड़बड़ी समाप्त हो जाती है।

वस्तुतः यह एकांकी आज के समाज पर व्यंग है। इसका हास्य बड़ा निखरा हुआ है। आलसी पति और कर्मशीला पत्नी के मध्य मध्यवर्गीय समाज में प्रचलित समस्यात्मक विडम्बना—लड़की के विवाह—ने एकांकी को कोरे हास्य की श्रेणी से उठाकर मनन और चिन्तन की सीमा तक ला दिया है। वर्णन का ढंग और वार्तालाप इसके हास्य को अक्षुण्ण रखते हैं।

इसी प्रकार 'नवाब कनकौवा' एकांकी लखनऊ के नवाबी ठाठों में पली पतंगबाजी पर आधारित है। लखनऊ में पतंगबाजी का शौक बहुत पुराना है—नवाबों के खानदान का है, और इसमें हार-जीत, मौत और जिन्दगी का

फैसला होती थी। इसमें लखनऊ के नवाब और दिल्ली के नवाब के बीच पतंगबाजी का 'मैच' दिया गया है, जिसमें लखनऊ के नवाब दिल्ली के नवाब की पतंग काटकर लखनऊ की नाक बचा लेते हैं। लखनऊ के नवाब की जीत दिखाने का संभवतः यह कारण भी हो सकता है कि लेखक लखनऊ का रहने वाला है। एकांकी के बीच-बीच में खास आवाजें और विवरण इस बात का द्योतन करती हैं कि लेखक को भी पतंगबाजी का शौक है और चित्रों की सजीवता तथा यथार्थता आँखों देखे दृश्यों का भ्रम उत्पन्न करती है। डा० प्रतापनारायण टण्डन की कहानी 'वह काटा है' की तुलना इस एकांकी 'नवाब कनकौवा' से की जा सकती है। दोनों में आश्चर्यजनक समानता है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि कहानी को थोड़े हेरफेर से एकांकी का रूप दे दिया गया है। उसमें भी लखनऊ के ही नवाब जीतते हैं।

दोनों एकांकी रेडियो नाटक हैं, जिन्हें नई प्रायोगिक भावभूमि पर लिखा गया है। हरिकृष्ण प्रेमी की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन ने अपने एकांकियों में शास्त्रीय पक्ष की ओर आग्रह न रखकर उद्देश्य को देखा है तथा जीवन के सत्य को—एक लघु क्षण को—चित्रित करने की चेष्टा की है।

सामाजिक एकांकी—इनमें 'गलतफहमी' और 'नौ हजार की चपत' आते हैं। यद्यपि 'नवाब कनकौवा' और 'टेलीग्राम' भी समस्यात्मक एकांकी हैं किन्तु टेकनीक की दृष्टि से हास्य प्रधान होने के कारण द्वितीय वर्ग में रखे गये हैं। ये दोनों एकांकी (गलतफहमी और नौ हजार की चपत) सामाजिक एकांकी ही हैं। 'नौ हजार की चपत' में पत्रिका निकालने के लिए दूसरों को मूर्ख बनाने वालों पर व्यंग किया गया है। हरीश पी. एच. डी. का विद्यार्थी होने जा रहा है, किन्तु प्रोफेसर, करुणा, दिग्गज और सरलेश के चक्कर में पड़कर अपनी सारी जमा पूंजी खो बैठता है, अन्त में कोई उसका साथ नहीं देता और पत्रिका बन्द हो जाती है। एकांकीकार ने इसमें एक शिक्षित युवक की साहित्य में नाम की चाह की समस्या को उठाया है और उसकी विडम्बनात्मक परिणति का सफल चित्र खींचा है।

इसी प्रकार 'गलतफहमी' में एक ग्रेजुएट युवक मनोहर का चित्र जो तीन-तीन बार आई. ए. एस. में बैठकर असफल हो चुका है, अब पैसे की तंगी में है, फिर भी मित्र से मिलने के लिये—चाहे उधार ही सही, अच्छे कपड़ों का

प्रबन्ध करता है, दूसरे स्टेशन पर लाला लोगों द्वारा 'साहब' समझा जाकर 'गलत-फहमी' का शिकार होता है। यह एकांकी डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानी 'गलतफहमी' का रूपान्तर मात्र है। कथानक की दृष्टि से दोनों में असाधारण समानता है। केवल टेक्नीक का अन्तर है—प्रथम कहानी है और यह एकांकी है। अन्यथा कथानक एक ही है।

कौतूहल और जिज्ञासा तो इन नाटकों में आरम्भ से ही है। चारों एकांकी और स्वर्गयात्रा नाटक इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते। पाठक की बुद्धि आगामी घटना की जिज्ञासा में उत्सुक रहती है और आरम्भिक घटनाओं से निकल कर आगे बढ़ना चाहती है। 'नौ हजार की बचत' में तो यह जिज्ञासा वृत्ति बहुत स्पष्ट है। प्रारम्भ में ही हरीश का कथन—कि'......................ओह, मुझे कभी ऐसा लगता है, जैसे यह दुनिया मुझे पागल बना देगी, यहाँ मैंने जिसको भी जैसा समझा, वह वैसा नहीं निकला।...... ...मुझे जो-जो अनुभव हुये, और जिस-जिस वर्ग के लोगों ने वे अनुभव दिये, उन सबको देख समझ कर ऐसा लगता है, जैसे मैं बूढ़ा हो गया हूँ और एक तरह की सुस्ती मुझ पर छाने लगी है*—पाठकों की उत्सुकता को तीव्रतर कर देता है। जिज्ञासा की धीरे-धीरे शान्ति होती है और घटनाक्रम खुलता मुँदता चरमसीमा की ओर अग्रसर होता है।

संघर्ष—डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व और वाह्य संघर्ष दोनों का ही बाहुल्य है। 'स्वर्गयात्रा' में यह अन्तर्द्वन्द्व खूब उभरा है। राजकुमारी कोडमदे मन ही मन सादूल से प्यार करती है, पर पिता द्वारा अर्डकमल से विवाह तय करने पर भी संकोच और लज्जावश कह नहीं पाती है। उसकी सखियाँ पूछती हैं, पर वह केवल यही कह पाती है—"सखी"............मैं ....लेकिन मैं राजकुमार अर्डकमल से विवाह नहीं कर सकती।‡ इस हड़बड़ाहट में उसके अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट परिचय लग जाता है। सादूल का अन्त-

---

* नवाब ननकौवा (नौ हजार की बचत) डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५९।

‡ स्वर्ग यात्रा : डा० प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ १६।

द्वन्द्व भी विचित्र है, एक ओर प्रेम का बन्धन है, वह मन ही मन कोडमदे से प्यार करता है, और साथ ही महाराजा माणिकराज द्वारा विवाह का अनुरोध है और उसके विपरीत दूसरी ओर कर्तव्य है—मित्र अड़कमल से शत्रुता लेना है क्योंकि कोडमदे उसकी वाग्दत्ता है। इसलिये जब बीरसिंह उससे कुशल-क्षेम पूछता है तो वह कहता है:—

सादूल—हाँ बीरसिंह, शरीर से तो स्वस्थ हूँ किन्तु मानसिक रूप से अनेक चिन्ताओं से ग्रस्त हूँ।

बीरसिंह—कुमार को अपने मस्तिष्क में अनावश्यक और निरर्थक बातों को स्थान नहीं देना चाहिए।

सादूल—चाहता तो मैं भी यही हूँ बीर सिंह, लेकिन मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैंने जो कुछ किया है वह ठीक है या नहीं।*

कुछ इसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व अड़कमल के मन में भी है। वह कोडमदे से विवाह का इच्छुक नहीं था, पर माणिकराज ने नारियल भेजा और उसने स्वीकार किया, अब यदि बिना उसकी स्वीकृति के उसकी होने वाली पत्नी का विवाह दूसरे से कर दिया जाये, तो यह उसके पुरुषत्व को चुनौती है। लेकिन वह यह नहीं समझ पाता कि दोषी किसको समझे। जब जगतसिंह उससे ऊहिट पर चढ़ाई करके राजकुमारी के हरण की बात चलाता है, तो वह तुरंत निषेध करते हुये कहता है—

"नहीं जगतसिंह जी, मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह सारी परिस्थिति कुछ ऐसी अस्पष्ट और जटिल रूप लेकर आई है कि मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि अपराधी कौन है। मैंने महाराज माणिकराज को सम्मान देकर भूल की; अब उनका असम्मान कर दूसरी भूल नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि महाराज माणिकराज का तो विशेष हाथ इस मामले में है नहीं, राजकुमारी कोडमदे का भी अपराध इसमें नहीं है। यह हो सकता है कि महाराज माणिकराज को अपनी कन्या की रुचि के विषय में कोई ऐसी बात ज्ञात हुई हो,

* स्वर्णयात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ४७।

जिसके कारण वह उसका सम्बन्ध मेरे साथ करना अब उचित नहीं समझते। इसका आशय यह है कि राजकुमारी मुझे नही चाहती, अतः हरण कर विवाह अनुचित है। राजकुमार सादूल भी अपराधी तभी समझा जायेगा, जब मैं महाराज माणिकराज तथा राजकुमारी कोडमदे को भी अपराधी मानूं। यदि उसने कहीं विवाह की इच्छा की भी होगी, तो उसकी ओर से कही कोई अनुचित बात नही हुई।"*

ऐसी स्थिति मे वह तीनों को सामूहिक रूप से अपराधी मानता है।

इसी प्रकार 'नौ हजार की चपत' मे हरीश का अन्तर्द्वन्द्व नरेटर (स्वागत कथन) में खूब उभरा है। यह नाटक स्पष्ट रूप से द्वन्द्व को लेकर चलता है। फिर भी उनके पात्रों में आज का सा अन्तर्द्वन्द्व दिखायी नहीं देता है। उनके मानसिक संघर्ष अधिकांशतः स्वगत-कथन द्वारा भावनापूर्ण भाषा मे व्यक्त हुए हैं। क्योंकि यह नाटक है और नाटकों में सबकुछ वार्तालाप द्वारा ही कहना पड़ता है, अतः पात्र अपने आन्तरिक संघर्षों की सूचना अपने सहयोगी पात्रों द्वारा देते हैं। हरीश आगे पढ़ना चाहता था, किन्तु अपने धूर्त साथियों के चक्कर मे पड़ कर सब भूल जाता है, अब उसका मस्तिष्क विगत को सोचता है और मन मे अन्तर्द्वन्द्व उठ रहा है—

'ओह, मुझे कभी ऐसा लगता है, जैसे यह दुनिया मुझे पागल बना देगी, यहाँ मैंने जिसको भी जैसा समझा, वह बेईमान निकला, जिसको भला समझा वह बुरा साबित हुआ, जिसको विद्वान समझा वह मूर्ख सिद्ध हुआ और जिसको मित्र समझा उसने शत्रुता की। और अब तो ऐसी स्थिति आ गई है कि समझ मे नहीं आता कि किसका विश्वास किया जाय और किसका नहीं। हर आदमी एक ऐसा बनावटी चेहरा अपने मुह पर लगाये है जिसके पीछे झाँक कर उसका यथार्थ रूप तब तक नहीं देखा जा सकता, जब तक कि उससे कोई चोट न खा ली जाये।........"‡

इसी ऊहापोहों में डूबता उतराता हरीश अपने अतीत के चित्र सामने रखता है।

---

* स्वर्ग यात्रा : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५८-६०।

‡ नवाब ककरौवा (नौ हजार कीचपत): प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५६।

जिस प्रकार आन्तरिक संघर्षों ने नाटकों को सप्राण बनाया है, उसी प्रकार बाह्य संघर्षों ने उनको गति दी है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटकों तथा एकांकियों में बाह्य कार्य व्यापार और संघर्ष कुशलता के साथ अभिव्यक्त हुये हैं। कहीं कहीं ये संघर्ष सूक्ष्म हैं और कहीं कहीं स्थूल हैं। राजकुमार साहुन का रघुराज मेहरान से संघर्ष सूक्ष्म है। इसी प्रकार 'गलतफहमी' में मनोहर का संसार में जीने के लिए संघर्ष सूक्ष्म है। वह पढ़ा-लिखा युवक होकर भी जीवन यापन की सुविधाओं से हीन है, अतः संघर्ष करता है, किन्तु यह संघर्ष उसके तथा मित्र रवान् के वार्तालाप में मुखरित होता है। सूक्ष्म संघर्ष डा० टण्डन के एकांकियों एवं नाटकों में कम उभरे हैं। स्थूल संघर्ष अधिक हैं और कुशलता के साथ अभिव्यक्त हुये हैं। 'स्वर्ग यात्रा' नाटक में यह संघर्ष सीमा पर है, और एकांकियों में भी इसका अच्छा विधान हुआ है। उदयशंकर भट्ट की तरह डा० प्रतापनारायण टंडन के एकांकियों में जीवन की ऊपरी प्रसन्नता के नीचे छिपे विषाद का चित्रण हुआ है। 'यह ऊहापोह शॉ के कैंडिडा मिसेज वारेन्स, प्रोफेसन और इब्सन के डोल्स हाउस और घोस्टस आदि के अनुरूप दिखाई देता है। 'गलतफहमी' के मनोहर, 'नवाब ननकौवा' के 'नवाब ननकौवा' और 'स्वर्गयात्रा' के शार्दूल तथा अर्कमल के वाग्दम्भ के पीछे छिपी असमर्थता की झलक हमें Enemy of the people के नेताओं की याद दिलाता है। इनके प्रायः सभी एकांकियों तथा नाटक में योरोपीय ढंग का संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व देखने में आता है। घटनाएँ पूर्व निर्दिष्ट पथ पर ही नहीं चलतीं, प्रत्युत परिस्थिति और प्रकृति के अनुरूप स्वाभाविक मार्ग बनाती हैं। उनमें आरोहावरोह होता है। अतः धारा कभी वेगवती हो जाती है और कभी मन्थरगति वाली। घटनाओं में कहीं युद्ध का कोलाहल है तो कहीं शान्ति; कहीं संकीर्णता, क्रोध, ईर्ष्या और हत्या है तो कहीं औदार्य, क्षमा, प्रेम, और सेवा।

डा० प्रतापनारायण टंडन के ये नाटक और एकांकी समाज के यथार्थवादी रूप से परिचित कराने के उद्देश्य से ही लिखे गये हैं। स्वर्गयात्रा में भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों का अंकन उद्देश्य न होकर 'राजपूती आन-बान, मर्यादा और प्रतिष्ठा का दम्भपूर्ण बोध, शौर्य का अन्ध-प्रदर्शन, प्रेम का विवेक-हीन स्वीकरण और बलिदान की त्यागमयी भावना का चित्रण करता ही

उद्देश्य है।* मध्यकालीन इतिहास ऐसा जाज्वल्यमान इतिहास नहीं है जिसे अपने गौरव का प्रतीक मान लिया जाये। राजकुमारी कोडमदे को लेकर व्यक्तिगत मानापमान की झूठी शान मे मर मिटना बुद्धि की तुला पर उचित नहीं लगता। कोडमदे अर्डकमल से प्रेम न करते हुये मरने को तैयार है, पर पिता से अपनी इच्छा नहीं कहती; लगता है जैसे मृत्यु पडोस का कोई घर है जहाँ सरलता से पहुँचा जा सकता है। एक ओर मुसलमानो के अत्याचारी दमन चक्र और दूसरी ओर राजपूतों का जरा-जरा सी बात पर मर मिटना, बुद्धि की कसौटी पर खरा नहीं उतरा।

इसी प्रकार सामाजिक एकांकियो में मध्यवर्गीय समाज मे फैलता वैषम्य, वाह्य प्रदर्शन की मूढ़ भावना और जीवन के लिये संघर्ष, नवाबी जमाने की पतंगबाजी के माध्यम से सरगर्मी को चित्रत करना उद्देश्य है। वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टंडन की अतीत और वर्तमान पर प्रगतिशील दृष्टि न होकर यथार्थवादी दृष्टि है, नवीन वातावरण के अनुरूप धारणा है, जो वर्तमान की तुला पर सब कुछ तौलती हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वर्तमान को सामने रख कर लिखा है और उस पर मन्तव्य वर्तमान के लिये उपयोगी-अनुपयोगी की दृष्टि से किया गया।

अंग्रेजी नाटकों की परम्परा और प्रभाव के कारण डा० प्रतापनारायण टंडन का 'स्वर्गय.त्रा' दुखान्त है। परम्परा सुखान्त की है, किन्तु उन्होने अन्त मे मृत्यु जैसे दृश्य को दिखा कर नाटक को कारुणिक बना दिया है। अन्त मे कोडमदे चिता मे आग लगा कर अपने पति सादूल के साथ भस्म होती हुई दिखायी गयी है† और 'टेलीग्राम' में तार के आ जाने से कल्याणी की आशाओं के महल ढहते हुये दिखाये गये हैं, अन्त में लेखक उसकी दशा का वर्णन करते हुये लिखता है—कल्याणी अपना सिर पकड़ कर वहीं जमीन पर धम्म से बैठ जाती है। लाला जी भी वहीं पड़ी टूटी कुर्सी पर बैठ जाते हैं। चारो लड़कियाँ एक दूसरे का मुँह देखती हुई बाहर चली जाती हैं।‡

---

* स्वर्गयात्रा : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १।

† स्वर्गयात्रा : प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८८

‡ नवाब कनकौवा (टेलीग्राम), पृष्ठ ५६।

इस विवरण मे वातावरण सहमा हुआ सा मालूम होता है । और सब पर एक विषाद है । इसी तरह 'नौ हजार की चपत' में हरीश (नायक) को सबसे परेशान होकर अपने जीवन के अरमानों को नष्ट कर लेना पड़ता है और वह हल्दी मिर्चा बेचना प्रारम्भ कर देता है। 'गलत फहमी' को न सुखान्त ही कह सकते हैं और न ही दुखान्त; मनोहर के मन पर छाया हुआ बोझ वैसे ही रहता है, अलबत्ता मार्ग की परेशानी से पीछा छूट जाता है। हाँ 'नवाब कनकौवा' को अवश्य सुखान्त कहा जा सकता है, क्योंकि अन्त में लखनऊ वाले नवाब की पोल खुलने पर नवाब कनकौवा का खिताब मियां अमन को दे दिया जाता है फलतः हँसी के साथ उछाह का वातावरण मुखरित हो जाता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के पात्रों के चरित्र-चित्रण में एक ओर यदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति दिखायी देती है तो दूसरी ओर आधुनिक अंग्रेजी नाट्य शैली की भी प्रधानता दिखायी देती है। पात्रों के चरित्र आन्तरिक और वाह्य संघर्षों से जूझते दिखाई देते हैं। स्वर्गयात्रा नाटक के तीन मुख्य पात्र हैं, कोडमदे, सादूल और अर्डकमल; कोडमदे में देशभक्ति से अधिक अपने प्रेम का ध्यान है। वह सोलह वर्षीया स्वरूपवती युवती राजकुमारी है जिसके पिता ऊडिट के महाराज माणिकराज वैभवशाली राजा हैं। उसके हृदय में अर्डकमल के प्रति एक विरक्ति की भावना है, सादूल को देखकर—उसके शौर्य की गाथाएँ सुनकर स्वाभाविक ही उसका प्रेम उसके प्रति उमड़ पड़ता है। साथ ही उसमें लज्जा भी है, इसी कारण माता-पिता से अपने प्रेम को छिपाती है। जब उसकी सखी हीरक उससे उसकी उखड़ी-उखड़ी अवस्था का कारण पूछती है तो वह स्पष्ट कह देती है—

कोडमदे—मैं किसी से नहीं कहूँगी हीरक ; यह मेरे स्वभाव में नहीं है। मेरे हृदय में जो आग धधक रही है, वह मेरी मृत्यु से ही शान्त होगी, यह बात मैं अच्छी तरह जानती हूँ। *

कोडमदे अपने हृदय को समझाना चाहती है, पर उसका हृदय है कि मानता ही नहीं। उसके मानसिक द्वन्द्व का निम्न दोहे में अच्छा ध्वनन हुआ है यथा—

* स्वर्गयात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३५

"नैण सरै तो सगण है,
　　तू मत लागियौ चित्त।
वे छूटेंगे रोय कै,
　　तू बन्ध्यो रहैगो नित्त॥ *

कोडमदे में मृत्यु के प्रति भय नहीं है। साथ ही साथ माता के घर से भी अपार स्नेह है। प्रत्येक युवती की तरह विवाह के बाद घर छोड़ते समय, घर के प्रति उसका मोह और स्नेह उमड़ पड़ता है। किन्तु मार्ग में ही अड़कमल की सेना के बीच घिर जाने पर वह अपने पति सादूल को साहस बँधाती है। यद्यपि इस युद्ध के लिए वह अपने को ही दोषी समझती है, और इसे दुर्भाग्य ही मानती है। † फिर भी यह उसके धैर्य और सहिष्णुता की सीमा है कि इतनी विपत्ति में भी वह घबड़ाती नहीं अपितु हंसते-हंसते अपने प्रिय पति को युद्ध में जाने के लिए प्रेरित करती है। उसकी घबड़ाहट पर अतीत के पूर्वजों का हवाला देकर उत्साह बँधाती है और बड़े स्वाभिमान पूर्वक कहती है—

कोडमदे—नाथ, मैं राजपूत कन्या हूँ। अपने पति को गर्व से मस्तक उठाये निर्भीक भाव से युद्ध मे जाने के हेतु विदा देना ही हमारे लिए बड़े सुख और गौरव की बात है। ‡

किन्तु यही कोडमदे अपने पति का निधन सुनकर करुण विलाप करती है। और अपने समय की परम्परा के अनुसार चिता में जल जाती है—इस आशा में कि स्वर्ग में तो पति के साथ मिलन होगा ही। चिता पर बैठी हुई भी कोडमदे अपने साहस और बलिदान का परिचय देती है, एक हाथ स्वय काट कर अपने पतिगृह को भेजती है और फिर पीड़ा को सहन कर दृढ़ शब्दों में अपने मामा जयतुग से दूसरा हाथ काट कर पितृगृह भेजने का आदेश देती है। और

* "मेरा दुर्भाग्य, यहाँ भी वही युद्ध की विभीषिका, काल का क्रूर नृत्य मृत्यु का अट्टहास, न जाने क्या होने वाला है देव!"
—स्वर्गयात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८२।

† वही, पृष्ठ २५।

‡ वही, पृष्ठ २८।

इस विवरण में वातावरण सहमा हुआ सा म
एक विषाद है। 'इसी तरह 'नौ हजार की चपत'
परेशान होकर अपने जीवन के अरमानों को नष्ट
हल्दी मिर्चा बेचना प्रारम्भ कर देता है। 'गलत
सकते है और न ही दुखान्त; मनोहर के मन
रहता है, अलबत्ता मार्ग की परेशानी से पीछा छ
कौवा' को अवश्य सुखान्त कहा जा सकता है,
नवाब की पोल खुलने पर नवाब कनकौवा व
दिया जाता है फलतः हँसी के साथ उत्साह का

डा० प्रतापनारायण टण्डन के पात्रों के
स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति दिखायी देती है
नाट्य शैली की भी प्रधानता दिखायी देती है
बाह्य संघर्षों से जूझते दिखाई देते हैं। स्वर्ग
कोडमदे, सादूल और अडंकमल; कोडमदे मे
ध्यान है। वह सोलह वर्षीया स्वरूपवती
ऊडिट के महाराज माणिकराज वैभवशाल
के प्रति एक विरक्ति की भावना है, सादूल
सुनकर स्वाभाविक ही उसका प्रेम उसके
लज्जा भी है, इसी कारण माता-पिता से
उसकी सखी हीरक उससे उसकी उखड़ी-
वह स्पष्ट कह देती है—

कोडमदे—मैं किसी से नहीं कहूँगी
मेरे हृदय में जो आग धधक रही है, इ
मैं अच्छी तरह जानती हूँ। *

कोडमदे अपने हृदय को समझा
ही नहीं। उसके मानसिक द्वन्द्व का

एकांकियों के पात्र भी दो प्रकार के हैं, प्रधान पात्र और गौण पात्र। 'नवाब कनकौवा' में नवाब कनकौवा और अगन मियाँ, 'नौ हजार की चपत' मे हरीश, टेलीग्राम में लाला जी तथा कल्याणी और 'गलतफहमी' में मनोहर प्रधान पात्र हैं, बाकी सब पात्र गौण हैं। फिर भी प्रधान पात्रों का गौण पात्रों के बिना व्यक्तित्व नहीं है—इन पात्रों के बिना उनका अलग अस्तित्व नहीं रह सकता।

सभी पात्रों का चरित्र अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व व्यक्त करने के लिए उपन्यास या कहानी जैसा विस्तृत क्षेत्र नहीं होता, उसमें या तो स्वगत कथन द्वारा, अथवा पात्रों के वार्तालाप द्वारा उसे अभिव्यक्त किया जाता है। हरीश का और कल्याणी का चरित्र अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। हरीश एक भावुक नवयुवक है, जिसकी भावनाएँ साहित्य-क्षेत्र मे नाम कमाने को लालायित हैं। वह एक उत्साही और सीधा सादा युवक है, इसके विपरीत नवाब कनकौवा निहायत आलसी और धूर्त है। प्रोफेसर, दिग्गज, करुणा और सरलेश आज के धूर्त साहित्यकारों के चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं जो हरीश ऐसे नवयुवकों की आड़ में छिपकर बन्दूक चलाते हैं—सामने आने का साहस तो कर नहीं पाते, अतः हरीश को बहला-फुसला कर मूर्ख बनाते हैं और अपना कार्य साधन करते हैं।

इसके विपरीत नवाब कनकौआ को हाशिम और कासिम उत्साहित करते हैं। वह आलस्य के कारण पेंच लड़ाने और मैंच बदने से कतराता है, कारण कि वह नौसिखिया है, पार्टीबाजी के बल पर 'नवाब कनकौवे' की उपाधि अपनाये हुए है; अतः मियाँ अगन—जो एक मशहूर पतंगबाज हैं—का सामना करने का साहस नहीं जुटा पाता। नवाब कनकौवा की तरह 'टेलीग्राम' के लालाजी भी आलसी हैं, सब कामों से जी चुराते हैं, पत्नी पर निर्भर हैं और उसकी डाँट-फटकार को प्यार-पुचकार समझ कर पी जाते हैं। घर पर लड़की को देखने लड़के वाले आ रहे हैं, फिर भी उनको इसकी चिन्ता नहीं है, जबकि उनकी पत्नी कल्याणी इसी चिन्ता में परेशानी है। कल्याणी मे हड़बड़ाहट परिस्थिति जन्य है, जो कम आयु में अधिक सन्तानों के पालन की चिन्ता में स्वभावतः आ ही जाती है। लाला जी भी अन्य पतियों की तरह यह सोच कर आलसी हो जाते हैं कि चाहे वे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनके

प्रयत्न इस महंगाई की सुरसा के लिए निरर्थक ही होंगे। और ये लड़के वाले, उनकी प्रसन्नता के लिए वे जितने ही साधन जुटायेंगे, वे सब सुरसा की तरह बढ़ने उनके सुख के लिए न्यून ही सिद्ध होंगे।

'गलतफहमी' का मनोहर आजकल के पढ़े-लिखे, पर बेकारी की पैंगों में झोलते ग्रेजुएट नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य युवकों की तरह, उसकी बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएँ हैं, ऊँचे-ऊँचे अरमान हैं, कलक्टर-डिप्टीकलक्टर होने के स्वप्न हैं, इसीलिए आई. ए. एस. से कम की सोचता ही नहीं, किन्तु, तीन साल तक सतत असफल होने पर उसकी कल्पनाओं के महल ढहढहा कर गिरने लगते हैं। फिर भी अपनी झूठी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए मनोहर अपने मित्र से मिलने के लिए मांगे का कोट पहन कर जाता है और गलतफहमी का शिकार हो जाता है।

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटक और एकांकियों के चरित्र अपने में एक 'टाइप' हैं, व्यक्तित्व पूर्ण हैं और अपने-अपने वर्गों का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं।

संस्कृत नाटकों के पात्रों की तरह डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटकों के पात्रों में स्थिरता नहीं है—उनका चरित्र देश और परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित होता रहता है। इसलिए उनके पात्र अधिक मानवीय, अधिक संवेदनशील और जीवन के अधिक निकट हैं। उनमें मोहकता है और पाठकों से साधारणीकरण की (Appealing power) शक्ति है।

२. संवाद

संवाद नाटक का वह तत्व है जो किसी कथा को नाटक का रूप प्रदान करता है। संवादों का माध्यम भाषा-शैली है। अतः भाषा-शैली के तत्व को संवाद तत्व में सहज ही समाहित किया जा सकता है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटक और एकांकियों के संवाद या कथोपकथनों में नाटकीयता, नाटकीय गतिशीलता, द्रुतगति और प्रवाह है। जयशंकर प्रसाद की तरह भाषा

की क्लिष्टता के कारण इनके संवाद दुरूह नहीं हैं। सच तो यह है कि उनके नाटक अभिनयात्मक हैं। इसीलिए उन्होंने रंगमंच और पात्रों की वेश-भूषा तथा स्वभाव का भी यथास्थान चित्रण कर दिया है। संवाद लम्बे न होकर छोटे-छोटे हैं, कहीं-कहीं स्वगत कथनों का भी प्रयोग किया गया है जो पात्रों के मानसिक आरोहावरोहों के प्रतीक हैं। पात्रों के कथोपकथन उनके व्यक्तित्व और स्वभाव के अनुरूप ही हैं, उनकी भाषा और प्रवाह, कवित्वमयी शैली और सारगर्भित कथन, सभी पात्रों के मानसिक विकास पर आधारित हैं। इन कथोपकथनों में भविष्य के लिए संकेत, तथा आगामी कथा की सूचना भी मिलती जाती है। यथा—

राजपुरोहित—महाराज सत्य यह है, कि राजवंश के किसी व्यक्ति का अनिष्ट होने की संभावना है।

माणिकराज—आचार्य यदि इस कथन से आपका तात्पर्य मुझसे है, तो मैं यह बात विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि अभी इस संसार में मेरा अहित करने वाला कोई जन्मा ही नहीं है। (खड्ग पर हाथ रख कर) अभी मेरी खड्ग अपने शत्रु को उसके दुस्साहस का दण्ड देने की शक्ति रखती है। अभी मेरी भुजाओं में...........।

राजपुरोहित—राजन् शतायु हों, गृहस्थिति यह स्पष्ट संकेत करती है कि आप पूर्णतया सुरक्षित एवं स्वस्थ रहेंगे........।

माणिकराज—फिर आचार्य ? आपका आशय क्या महारानी से है ?

राजपुरोहित—राजन् उन पर भी किसी प्रकार की कोई विपत्ति आने की संभावना नहीं है। वह भी,.......।

माणिकराज—तो क्या आपका तात्पर्य मेरी कन्या........?

राजपुरोहित—हाँ राजन्, गृह-स्थिति के अनुसार.......।*

इस संवाद में एक ओर राजकन्या कोडमदे पर विपत्ति आने की भविष्य-वाणी से आगामी घटना का संकेत किया गया है, तो दूसरी ओर पात्रों की मन:-स्थिति और चरित्र को भी अच्छा निखार दिया गया है। माणिकराज और राज-

* स्वर्णयात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २।

पुरोहित का आधी-आधी बातें कहना, बातें जल्दी से पूरी करने की भावना को यदि प्रकट करते हैं तो साथ ही इस विपत्ति से मानसिक अशान्ति का भी द्योतन करते हैं। यह कथोपकथन कथा गति प्रेरक भी है और पात्रों के चरित्रगत अन्तर्द्वन्द्व को प्रकाशित कर्ता भी।

इसी प्रकार का संवाद 'टेलीग्राम' एकांकी में है, जिसमें कल्याणी के मानसिक द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण हुआ है और उसके चरित्र पर—एक गुण हड़बड़ी और जल्दबाजी पर—प्रकाश पड़ता है। यथा—

कल्याणी—उंह........अरे नहीं आये तो अब आते होंगे। कम से कम यहाँ तो तैयारी रहनी चाहिये कि नहीं!

लाला जी—लेकिन काफी देर हो गई है, शायद आज वे लोग नहीं.......

(बाहर से सांकल खटखटाने की आवाज आती है)

कल्याणी—लो वे आ गये। अरे कमला, विमला, प्रमिला, सरला क्या कर रही हो तुम सब?

(लाला जी बाहर दौड़ते हैं, चारों बहनों का तेजी से प्रवेश)

कमला—मैं,.......

विमला—मां, मैं.......

सरला—मां, मैंने.......

प्रमिला—मां, मैंने सब— —

कल्याणी—म म म म क्या करती हो तुम सब? जरा इस बात का भी तो....

लाला जी—(प्रवेश करके) वे.......

कल्याणी—(बीच में ही) आये नहीं?

लाला जी—नहीं।

कल्याणी—कौन आया था?

लालाजी—दूध वाला।

(तभी बाहर धड़ाक से दरवाजा खुलता है)

कल्याणी—आ गये। (लाला जी बाहर जाते हैं)

कल्याणी—(अपनी ओर ताकती हुई चारों लड़कियों से) मेरा मुंह क्या ताक रही हो सबकी सब ? अभी तक चूल्हा नहीं जला, (आँगन की ओर देख कर) ओह बर्तन भी नहीं माँजे गये........

(लाला जी प्रवेश करते हैं, कल्याणी प्रश्नसूचक दृष्टि से उनकी ओर देखती है)

लालाजी—कोई नहीं आया।

कल्याणी—दरवाजा किसने खोला था ?

लाला जी—एक कुत्ता........

कल्याणी—(खीज कर) तुम कुत्ते को ही रोते रहना। (लड़कियों की तरफ घूमकर) अरे, कहाँ चली गईं। (तेज आवाज में) कमला, विमला, प्रमिला, सरला—कहां चली गईं तुम सब ? कम से कम चाय का पानी तो.......*

इस लम्बे संवाद में सभी गुण हैं। यह गृहणी के मानसिक संघर्ष और हड़बड़ाहट पर प्रकाश डालता है, तो उसी के अनुरूप इसकी भाषा भी है। भाषा में काफी लचीलापन है और साधारण बोलचाल की शब्दावली प्रयुक्त की गई है। इसमें क्षिप्रता है, कथानक को गति देने का गुण है और गृहणी की मानसिक स्थिति के अनुरूप अभिनय को रूप देने की क्षमता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के नाटक और एकांकियों के संवादों मे तीनों प्रकार के संवाद मिल जाते हैं।

१. स्वगत
२. कथा-गति प्रेरक
३. सूचक

स्वगत कथन प्रत्येक नाटक में प्राप्त होते हैं। एकांकियों में तो छोटे-छोटे स्वगत कथन हैं। एकांकियो में इनको स्वगत कथन न कहकर 'धीमी आवाज में' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, किन्तु 'स्वर्ग यात्रा' नाटक मे स्वगत कथन शब्द का ही प्रयोग किया गया है, यहाँ पर बहुत से स्वगत कथन बहुत

---

* नवाब कनकौवा (टेलीग्राम) डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ५३-५५

लम्बे भी कहीं-कहीं हो गये हैं। फिर भी घटना की तीव्रता के कारण वे खटकते नहीं हैं।

कथागति प्रेरक संवाद का उदाहरण ऊपर दिया ही जा चुका है। उपर्युक्त दोनों संवादों से कथा को विकास मिलता है और आगामी घटना के संकेत मिलते हैं। सूचक कथोपकथन वे होते हैं जिनमें उन घटनाओं की सूचना दी जाती है जो रंग मंच पर दिखाई नहीं जाती हैं, या कथा-सम्बन्धी किसी रहस्य का उदघाटन करने वाले हैं। स्वर्गयात्रा में दस्युराज मेहराज के निधन एवं उससे हुई लड़ाई को प्रत्यक्ष न दिखा कर सादूल द्वारा सूचित कराई गई है, अतः यह सवाद सूचक संवाद कहलायेगा। इसी प्रकार 'नौ हजार की बनन' मे नरेटर द्वारा जो घटना का आरम्भ दिया है उनमें कथा सम्बन्धी रहस्य का उद्घाटन है कि हरीश ने एम. ए. करने के बाद पी. एच. डी. की सोची थी और अपने साथियों द्वारा मूर्ख बनने पर पश्चाताप की अग्नि में झुलस रहा है। इसी प्रकार 'नवाब कनकौवा' में ऐलान करने वाले के कथन सूचक कथोप-कथन हैं *क्योंकि उसमें नई घटनाओं की सूचना मिलती है।*

डा० प्रतापनारायण टण्डन के यह कथोपकथन भाषा की दृष्टि से अनुकूल बैठते हैं। भाषा शैली की दृष्टि से ये कथोपकथन सरल हैं, पात्रानुकूल हैं, इनमें कथा के भावों को स्पष्ट करने की क्षमता है और नाटकीयता है, जिससे पाठक या दर्शक की आगे जानने की जिज्ञासा बनी रहती है। वीर रस प्रधान 'स्वर्ग यात्रा' नाटक के पात्र जोशीले हैं। जहाँ उनकी वीरता के प्रदर्शन का प्रश्न आता है, उनकी भाषा कवित्व पूर्ण और ओजस्वी शब्दों से परिपूर्ण हो जाती है। जोशीली भाषा का उदाहरण देखिये—

माणिकराज—कुमार! क्षत्रियों के लिए तो ऐसा ही *जीवन शोभनीय* भी है। उन्हें तलवारों की खनखनाहट, ढालों की झनझनाहट, और घोड़ों की हिनहिनाहट ही कर्णप्रिय लगती है। युद्ध भूमि में मृत्यु का कराल नर्तन ही उनके नेत्रों के लिए सुखकारी होता है। अनेक रक्त चूते घावों से आहत शत्रु का संहार करते हुए रणभूमि में ही वीरगति प्राप्त करने मे उन्हें अधिक शान्ति प्राप्त होती है। *

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

इस कथन की भाषा ओजपूर्ण है, प्रवाहमय है और इसमें स्वाभाविक मार्दव है, जो पाठकों के हृदय में अनायास ही वीररस का सचार कर देती है।

इसके विपरीत मुसलमान पात्रों के मुँह से शुद्ध उर्दू का प्रयोग कराने का प्रयास किया गया है। उर्दू भी, वह उर्दू नहीं जो अरबी-फारसी के क्लिष्ट शब्दों से संयुक्त हो, अपितु जन सामान्य में बोलचाल की भाषा को उन्होंने अपनाने की कोशिश की है। इसकी भी एक बानगी देखिये—

हाशमी—हां याद आया, नवाब कनकौवा साहब, वो अर्ज यह करना था कि मियाँ अग्गन साहब, ने यह कहलवाया है कि हमारे आपके क्लब के जो दो सदर हैं, वही हमारे मैच में जज बनेंगे। इनमें हमें या आपको कोई इतराज भी न होगा और न किसी को ही किसी तरह की शिकायत का कोई मौका मिलेगा।

नवाब कनकौवा—बहुत माकूल फरमाया है जनाब अग्गन साहब ने, उनसे आप हमारी तरफ से यह अर्ज कर दीजियेगा कि हमे उनकी किसी बात में किसी तरह का कोई ऐतराज नहीं है। जो बात वह कह दें वह बस हमारे लिये हुक्म के बराबर है। *

यहाँ पर भाषा चलती फिरती और प्रसाद गुण से ओतप्रोत है। वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टंडन के कथोपकथन और उनकी भाषा शैली मे नाट्य-टेक्नीक की वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो एक सफल नाटक के लिए आवश्यक हैं। हास्य नाटकों की भाषा न तो इतनी बचकानी है कि वह हास्यास्पद हो जाये और न सामाजिक या ऐतिहासिक नाटकों की इतनी प्रौढ़ या गम्भीर कि बहुत दुरूह हो जाये। अपितु दोनों मे एक सन्तुलन है, दोनों मे एक केन्द्र-बिन्दु है, जहाँ पाठक की रोचकता एव उसके मस्तिष्क की ग्रहणशीलता का ध्यान रखा गया है। यही कारण है, इनके कथोपकथन कथा को प्रवाह देने के साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों से ऐसे घुलमिल जाते हैं कि पाठक को बीच मे से निकलने का मार्ग ही नहीं मिलता और वह अनायास ही उसमे साधारणीकृत हो जाता है।

* नवाब कनकौवा : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३०-३१।

३. दृश्य विधान—

ऐतिहासिक नाटक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने कथानक, दृश्य विधान में प्रस्तुत वातावरण तथा भाषा की दृष्टि से ऐतिहासिक हो। कथानक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी सत्य ऐतिहासिक घटना पर आधारित हो, पर आवश्यक तो यह है कि वह जिस युग के वातावरण को चित्रित कर रहा है, उस युग का रहन सहन, मनोभावों, जीवन संघर्षों आदि की विशेषताएं उसमें मुखरित हों। किन्तु डा. प्रतापनारायण टण्डन के 'स्वर्गयात्रा' नाटक का कथानक इतिहास प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार के नाटकों की ऐतिहासिकता बहुत कुछ दृश्य विधानों में प्रस्तुत वातावरण तथा वेश भूषा पर निर्भर करती है। *

दृश्यविधान नाटक का वह तत्व है जो नाटक की कथाको कथानक के रूप मे गठन का मूल आधार प्रस्तुत करता है। नाटककार अपनी कथा को नाटक का रूप देने के लिए उसे अंकों (यदि अनेकांकी है तो) और दृश्यों में तथा यदि एकाकी है तो केवल दृश्यो मे बाँट कर उसे अभिनयात्मक रूप देता है। फिर रंग निर्देश के साथ पात्रों के स्वभाव, स्तर और स्थान का वर्णन करता है, फलतः दृश्य विधान के चित्रण में ही देशकाल और वातावरण के चित्रण को सम्मिलित किया जा सकता है। ‡

डा० प्रतापनारायण टण्डन का नाटक 'स्वर्गयात्रा' चार अंको में विभाजित है। प्रथम अंक मे सात दृश्य, द्वितीय अंक में तीन दृश्य, तृतीय अंक में तीन दृश्य, और चतुर्थ अंक मे सात दृश्य हैं। 'नवाब कनकौवा' तथा 'नौ हजार की चपत' ऐडियो एकाकी हैं, जिनमे दृश्य विधान संगीत लहारियों से परिवर्तित किये गये हैं। 'टेलीग्राम' में केवल एक ही दृश्य है और 'गलतफहमी' में दो दृश्यों का एफेक्ट है।

---

* हिन्दी नाटक; सिद्धान्त और समीक्षा: रामगोपालसिंह चौहान पृष्ठ १६३।

‡ वही, पृष्ठ १२४।

वर्जित दृश्य—डा. प्रतापनारायण टण्डन के नाटक 'स्वर्गयात्रा' में भारतीय नाटकों में वर्जित युद्ध हत्या आदि दृश्यों का भी पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव के कारण विधान किया गया है। भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार मंच पर उन्हीं दृश्यों का विधान होना चाहिये जो सरलता से अभिनीत हो सकें। प्रारम्भ में तो दुस्युराज मेहाराज के वध और उससे सादूल के संघर्ष को सूचक दृश्य द्वारा दिखाया गया है, किन्तु चतुर्थ अंक के चौथे और छठे दृश्य में सेनाओं के युद्ध और सादूल की तथा जोधा चौहान की मृत्यु के दृश्य दिखाये गये हैं। यथा—

जोधा चौहान भी आगे आ जाता है, जयतुंग उससे युद्ध करने लगता है। दोनों ओर की सेनाएँ भी अपने-अपने पक्ष वालों को प्रोत्साहित करती हैं। कुछ समय के युद्ध के पश्चात् जयतुंग के प्रबल आघात से जोधा चौहान के प्राण निकल जाते हैं। जयतुंग उसे मार कर जोर से हुंकारता हुआ राठौर सेना पर टूट पड़ता है। दोनों ओर के सैनिक एकदम से आपस में गुथ जाते हैं। 'मारो-काटो' की भयानक आवाजों के साथ युद्ध होता रहता है। *

इसी प्रकार 'गलत फहमी' एकांकी में प्लेटफार्म और ट्रेन का लाना भी वर्जित दृश्य के अन्तर्गत आयेगा। इस प्रकार का दृश्य विधान अरंगमंचीय है। इसको डा. प्रतापनारायण टण्डन पर सिनेमा और रेडियो नाटकों का प्रभाव भी कह सकते हैं। 'स्वर्गयात्रा' नाटक में यह दोष बहुत अखरता है, क्योंकि इन दृश्यों के कारण यह नाटक बिना हेर-फेर किये रंगमंच पर अभिनीत ही नहीं हो सकता।

रंगमंच की दृष्टि से 'स्वर्गयात्रा' नाटक प्रतिकूल है। जैसा कि अभी कह चुके हैं युद्ध के दो दृश्यों को यदि किसी प्रकार सूच्य बना भी दिया जाये तो अन्तिम दृश्य जिसमें चिता में बैठते समय गोडमदे अपने हाथों से अपनी भुजा काट कर देती है और रक्त से नहा उठती है, उसका विधान तो बहुत ही दुष्कर है। अतः रंगमंच के अनुसार यह नाटक अनुकूल नहीं है।

रंग निर्देश—इसपर भी डा. प्रतापनारायण टण्डन के इस नाटक 'स्वर्गयात्रा' में पात्रों के स्वभाव और दृश्य के रंगों की साज-सज्जा का पूर्ण वर्णन

* स्वर्गयात्रा: डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८१।

देने के साथ ही, पात्रों के वस्त्र-विन्यास का भी वर्णन मिलता है। लेखक ने कहीं-कहीं तो लम्बे रंग संकेतों का वर्णन भी किया है। साथ ही यह रंग संकेत ऐतिहासिक नाटक के वातावरण को मुखरित करने के प्रयास का फल भी हो सकते हैं। पात्रों की वेशभूषा में तत्कालीन समाज की वेशभूषा का निर्देश करके नाटक को मुगल कालीन वातावरण का रूप प्रदान करती है। राजकुमारी कोडमदे का वेश विन्यास राजमहलों में रहने वाली राजकन्या के अनुरूप ही है। यथा—

उद्यान में राजकुमारी कोडमदे अपनी कुछ सखियों के साथ गाना गाती हुई झूला-झूल रही है। वह झीने रेशम के हल्के हरे रंग के वस्त्र पहने है। एक ही रंग की ओढ़नी, कुर्ती और भारी लहंगा। हाथों में कई आभूषण हैं और गले में भी कुछ मालाएँ आदि पहने हुए है। उसके केश फूलों से गुथे हुए हैं। राजकुमारी की आयु अठारह वर्ष है। वह अत्यन्त रूपवती है। काली, चमकदार केशराशि, उन्नत ललाट, गहरी भौंहें, लम्बी पलकें, बड़ी आँखें, छोटी, उठी हुई नाक, पतले ओंठ, लम्बी गरदन, उभरा वक्ष, गोरा रंग, सुडौल शरीर, उसकी सखियाँ भी भड़कीले से रेशमी वस्त्र पहने हुए हैं। *

हरा रंग विलास का सूचक है। राजकुमारी का रूप और मुखावयव ऐसा है कि अनायास ही विलास को जाग्रत कर दे; उस पर भी हरे रंग के वस्त्र, यह रंग विन्यास एक ओर विलासिता के वातावरण का सृजन करता है तो दूसरी ओर राजकुमार सादूल की निर्दोषिता भी प्रकट कर देता है। यदि इस प्रकार की विलासिता की प्रतिमा—जिसके अंग-अंग में काम का सागर ठाठें मार रहा हो—को देखकर सादूल हक्काबक्का रह जाता है और विवेकहीन हो जाता है तो यह उसका दोष नहीं है, वातावरण का प्रभाव है। इसी तरह अर्डकमल जो पहले युद्ध करने करने जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर भी पसोपेश में पड़ा था, परिस्थितियों के कारण उत्पन्न वातावरण से प्रभावित होकर युद्ध की तैयारी में संलग्न हो जाता है। वृद्ध सांखला का क्षतविक्षतावस्था में उसके दरबार में प्रवेश और अपने पुत्र मेहराज की निर्मम हत्या का करुण और मार्मिक वर्णन, दरबार को स्तब्ध कर देता है, यहाँ अर्डकमल को उत्तेजित करने के लिए—

---

* स्वर्णरात्रा : डा. प्रभातनारायण टण्डन, पृष्ठ १९।

सादूल को दोषी सिद्ध करने के लिए उसी प्रकार के वातावरण की सृष्टि की गई है। दस्युराज वृद्ध सांकला कहता है—

"युवराज इस बुढ़ापे में मुझे जो दुख झेलना पड़ा, उसने मुझे पागल बना दिया है। मेरा हृदय पुत्रशोक से फटा जाता है। पूंगल के राजकुमार सादूल ने उसकी हत्या कर दी है।"

तो अर्डकमल स्पष्ट कह उठता है—

'तुम निश्चिन्त रहो सरदार! मैं स्वयं राजकुमार सादूल के बध की प्रतिज्ञा कर चुका हूं और शीघ्र ही वह प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।' *

किन्तु अब भी उसके हृदय में संशय है कि सादूल के साथ केवल सात सौ सैनिक हैं, अतः वह अपने चार हजार सैनिकों के साथ हमला करे यह उसके क्षत्रियत्व को स्वीकार नहीं है। उसका मन संशय मे पड़ा हुआ है। इस संशय को दूर करने के लिए पुनः उसी प्रकार के वातावरण की सृष्टि की जाती है और गुप्तचर आकर सूचना देता है कि संभवतः माणिकराज की चार सहस्र सेना भी सादूल के साथ है। तब उसका मन युद्ध के निश्चय पर दृढ़ हो जाता है और वह कहता है—

"......यह सूचना महत्वपूर्ण है। हमें सभी प्रकार की परिस्थितियों से सामना करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार रहना चाहिये।" †

रंग निर्देश से वातावरण का सर्जन करने का उपकरण उनके 'टेलीग्राम' एकांकी में भी पाया जाता है। इसमें कमरे की जिस प्रकार की स्थिति चित्रित की गई है, उससे स्पष्ट ही मध्यवर्गीय परिवार का अनुमान लग जाता है। * साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि यह आलसी परिवार है जिसका कोई भी व्यक्ति अपने कार्य के प्रति उत्तरदायी नहीं है ‡, यही कारण है कि आगे जब हम लाला जी को साढे आठ बजे तक सोते हुए और गृहणी को हड़बडी में

* स्वर्गयात्रा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ ६५।

† वही, पृष्ठ ६७।

‡ नवाब ननकौवा : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ४५।

झोंकते हुए देखते हैं तो एक दम परिवर्तित वातावरण नहीं लगता—पहचाना-सा वातावरण लगता है।

'नौ हजार की चपत' में नरेटर का कार्य पहले के नाटकों के सूत्रधार का सा कार्य है। नरेटर आगामी घटना की सूचना और प्रथम घटना की वर्तमान मे शृंखला जोड़ने का कार्य करता है। वस्तुतः प्राचीन नाटकों का सूत्रधार ही परिष्कृत रूप मे नरेटर का रूप ग्रहण कर बैठा है। यह नरेटर भी एकांकी के वातावरण को प्रभावशाली बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान देता है। 'नौ हजार की चपत' में आदि से अन्त तक Suspence का वातावरण है जो पग-पग पर इस एकांकी में मुखरित है।

'स्वर्गयात्रा' नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे लिखा गया है। अतः राजपूत कालीन संस्कृति का जाज्वल्यमान मूर्त चित्र सामने लाने के लिए डा० प्रताप-नारायण टण्डन ने इस नाटक में गीत योजना भी उसी वातावरण के अनुकूल की है। उन्होंने स्वयं कहा है–'गीत योजना का भी नाटक मे विशेष महत्व होता है। इस नाटक मे पृष्ठभूमि तथा वातावरण की विश्वसनीयता की दृष्टि से जिन गीतों की योजना की गई है, वे सभी राजस्थानी लोकगीतों मे से चयन किये गये हैं। *

इन गीतों से एक ओर यदि कथात्मक प्रवाह तथा रस-निर्वाह में सहायता मिली है तो दूसरी ओर राजस्थानी वातावरण के आकलन में भी सहायता मिली है। ये राजस्थानी गीत वातावरण उत्पन्न करने के साथ ही पात्रों की मनःस्थिति का भी अच्छा विवेचन कर देते हैं। गीत योजना, मात्र गीतों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए नहीं की गई है। अपितु इससे उनकी मानसिक विचारधारा का अच्छा परिचय मिल जाता है।

राजकुमारी कोडमदे के पिता मणिकराज उसका विवाह बिना उसकी अनुमति लिये अर्डकमल से करने को नारियल भेज चुके हैं। राजकुमारी को यह रिश्ता पसन्द नहीं है अतः वह शृंगार विहीना उतरे मुँह से पलंग पर लेटी है। नेपथ्य से उठता समूह गान, देखिये, उसके भावों के कितने अनुकूल है—

* स्वर्गयात्रा, : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ. (ii)

काची दाख बैठे बनड़ी पान चाबैं,
फूल सूंघें, करैं ए बाबा जी सूं बीनती।
बाबा ,जी देस देता परदेस- दीज्यो,
म्हारी जोड़ी रो वर हेरज्यो।
कालो मत हेरो, बाबाजी, कुल न लजावे,
गोरो मत हेरो, बाबाजी, अंज पसीजे।
लांबा मत हेरो, बाबा, सागर चूंटै,
ओछो मत हेरो बाबा, बावन्यूं बतावै।
ऐसो वर हेरो, कासी को वासी,
बाई रैमन भासी, हसती चढ आसी।

किशोरी कन्या के हृदय में अपने भावी पति के प्रति कैसी भावनायें और कल्पनाएं रहती हैं, इसका इस गीत में बडा मोहक चित्रण किया गया है। दाख की कोमल लता के नीचे बैठी कन्या पान चबा रही है और फूल सूंघ रही है। वह अपने पिता से विनती करती है—'हे पिता चाहे तुम मुझे स्वदेश में ब्याहो, चाहे विदेश में, परन्तु वर मेरी जोडी का ही ढूंढना। न तो वह काला हो, नहीं तो मेरा कुल लजावेगा, वह बहुत गोरा भी न हो अन्यथा उसका अंग पसीजेगा। हे पिता वह बहुत लम्बा भी न हो, नहीं तो सॉगर तोड़ेगा और बहुत ठिगना भी न हो, नहीं तो लोग उसे बौना कहेंगे। हे पिता तुम मेरे लिये ऐसा वर खोजो जो काशी (या उस जैसी किसी अन्य विशाल नगरी) का रहने वाला हो और हाथी पर चढ कर आवे (धनी हो)। हे पिता ऐसा ही वर मुझे पसन्द आवेगा।

यहाँ यह गीत योजना स्वाभाविक स्थितियों की ओर संकेत करती है और नाटक को सजीव बनाती है।

यहाँ एक बात यह भी कह देना आवश्यक है कि डा० प्रतापनारायण टंडन के नाटक और एकांकी यथार्थवादी धरातल पर अवतीर्ण हुए हैं। यही कारण है कि इस नाटक में कथावस्तु अपने सच्चे रूप में चित्रित हुई हैं। गीत योजना भी इसको यथार्थवादी रूप देने में सहायक ही सिद्ध हुई है। साथ ही पात्रों की वेश भूषा, रहन-सहन और वार्तालाप का ढंग भी पाठकों को राजपूती काल की

अनुभूति के बीच लाकर बैठा देता है। जिससे वह एक क्षण के लिये स्वयं को उस काल में अनुभव करता है।

एकांकियों का वातावरण भी यथार्थवादी है। उसके पात्र सजीव और प्रायः मध्यवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें समस्याएँ हैं पर केवल उन्हें छूती हुई, केवल एक झलक दिखा कर वे तिरोहित हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उनमें एकांगिता है—चित्रण सीमित वर्ग का है। दलित वर्ग और उच्च वर्ग की ओर ध्यान देने की बात तो दूर रही मध्य वर्ग के ही विभिन्न पहलुओं को इसमें छुआ तक भी नहीं गया है। यह पहलु उनके एकांकियों में अभाव रूप में बहुत खटकता है। फिर भी उनके कार्य-कलापों को देखते हुए—शिल्प कौशल एवं दृश्य प्रस्तुत करने के ढंग को देख कर आशा की जा सकती है कि यदि डा० प्रतापनारायण टण्डन ने अपने एकांकियों में जीवन के विभिन्न पक्षों को चित्रित करने का प्रयास किया तो वहाँ ऐसे अदम्य, शक्तिशाली तथा संघर्षशील पात्रों की उद्‌भावना भी करनी होगी, जो आज की परिवर्तित परिस्थितियों के कुहासे में, नये निर्माण के सूर्य का आलोक बिखेर कर, नयी डगर दिखा सकें और उस कण्टकाकीर्ण पथ को नवीन रूप दे सकें। डा० प्रतापनारायण टण्डन के एकांकी, आशा है, भविष्य मे हमारी इस आशा को पूर्ण करने में सफल सिद्ध हो सकते हैं और आगामी समाज के लिए नव दिशा दर्शन का सुकार्य कर सकेंगे।

अध्याय : ५

काव्य-सृजन की नयी प्रक्रिया

नयी कविता का विकास-क्रम

हिन्दी-साहित्य में पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षों से जो कविता लिखी जा रही है, उसे नई कविता के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यद्यपि यह बात ध्यान देने की है कि उसमें नयी या प्रयोगवादी कविता से अलग भी बहुत कुछ है। एक दृष्टि से हिन्दी की नयी कविता अपने में एक नयापन लिए हुए अपने से पहले की काव्य परम्पराओं से विद्रोह सा करती दिखाई देती है, तो दूसरी ओर वह उन्हीं को आगे बढ़ाती या उनकी सतत् चलती सांसों का प्रमाण देती दिखाई देती है। अतः इसकी प्रवृत्तियों के अध्ययन से पूर्व संक्षेप में इन परम्पराओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टपात कर लिया जाये।

छायावाद-युग में ही हिन्दी कविता दो भागों में विभक्त होती प्रतीत होने लगी थी, ये प्रवृत्तियां इससे पूर्ण भिन्न दिखाई देती थीं। इनमें से एक प्रवृत्ति मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित होकर छायावाद की घोर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आई, प्रगतिवाद की संज्ञा से अभिहित हुई और दूसरी काव्य प्रवृत्ति जो छायावाद के स्वस्थ सौन्दर्य और प्रेम की व्यजनाओ की स्थूल ध्वनि पकड़ कर निराशा और यौन विकृतियो मे प्रवृत्त हुई, 'प्रयोगवाद' कहलाई। किन्तु इन दोनों से भिन्न एक नवीन काव्य प्रवृत्ति भी छायावाद की मूल दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति के भीतर से प्रस्फुटित हो रही थी, जिसका प्रभाव पंत, विद्यापति कोकिल और नीरज आदि पर

दृष्टिगोचर हो रहा था ; इसका रूप नई कविता के शिशु रूप से मिलता जुलता था। छायावादी कविता की लहर १९४० तक कम होने लगी थी, जो कुछ बच रहा था वह द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न स्थितियों के कारण जाता रहा। यथार्थ-वादिता के प्रभाव से उसका बचे रहना संभव नहीं था, फलतः प्रगतिवादी कविता का जन्म हुआ। छायावादी कविता में स्वच्छन्दतावाद की बहुलता के साथ कल्पना का भी आधिक्य था, और कोमल तथा सुकुमार भावों का सार था, वहाँ उधर यथार्थ के प्रति आग्रह अधिक था। इस युग में 'कोमल भावनाओं के सुकुमार कवि पंत' यथार्थ रूप को पूर्ण रूपेण तो स्वीकार नहीं कर पाये, परन्तु काफी सीमा तक उससे समझौता करने को बाध्य हो गये। उनके 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' संग्रह इस तथ्य के परिचायक हैं कि उनकी कविता में एक नया मोड़ आया है। पंत की कविता का नवीनतम रूप उनकी 'अतिमा' में दिखाई देता है ; यद्यपि इनमें कहीं-कहीं दार्शनिक प्रवचनों के आधिक्य से किसी सीमा तक कविता बोझिल बन गई है, फिर भी अनेक कविताओं में बौद्धिकता का स्वर मुखरित हुआ है। उनकी उत्तरकालीन कविताएँ प्रयोगात्मकता, प्रौढ़ता, सजीवता तथा निखार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। दृष्टिकोण की नवीनता भी पंत की नयी कविता की विशेषता है। इस दृष्टि से 'निकष' में प्रकाशित उनकी कविता अवलोकनीय है। यथा–

> एक टाँग पर उचक खड़ी हो,
> मुग्धा वय से अधिक बड़ी हो
> पैर उठा, कृश पिंडुली पर धर
> घुटना मोड़ चित्र बन सुन्दर
> उठ अंगूठे के बल ऊपर
> उड़ने को अब छूने अंबर
> सोनजुही की बेल हठीली
> लटकी सधी अधर पर।

छायावाद के चार प्रमुख कवियों में से एक 'निराला' की कविताओं में में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीज भी विद्यमान हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि उनके प्रयोग—मुक्त छन्दों के क्षेत्रों में—नई पीढ़ी के मार्ग-दर्शन की क्षमता रखते हैं। 'निराला' की आस्था—भावना—उनकी 'परिमल' 'अना-

मिका' तथा 'तुलसीदास' में मिलती अवश्य है, पर नये प्रयोगों की दृष्टि से 'अर्चना' अधिक महत्वपूर्ण है। 'अर्चना' निराला के काव्य मे एक नई कड़ी का सृजन करती है। गेयत्व भी इसका प्रधान गुण है यथा—

> गयना न करा ।
> खाली पैरों रास्ता न चला ।
> कंकरीली राहें न कटेंगी,
> बेपर की बातें न पटेंगी,
> काली मेघनियाँ न फटेंगी,
> ऐसे-ऐसे तू डग न भरा ।

'कुकुर मुत्ता' मे यथार्थ का नग्न रूप सामने आता है, ऐसा रूप जो पुरानी परम्पराओं को छोड़कर नये रूपो को ग्रहण करना चाहता है। लेकिन उनकी ये रचनाएँ यथार्थ पर व्यंग के रूप मे लिखी गई थी, वह उससे समझौता नही कर सकी थी।

आज की हिन्दी कविता में छायावादी प्रवृत्ति, जैसा कि पहले कह चुके हैं, अवशेष रूप मे मिलती है। जानकीवल्लभ शास्त्री, सुमित्रा कुमारी सिन्हा और नरेन्द्र सिंह उत्तर छायावादी युग के कवियों में मुख्य हैं। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' भी इसी युग के कवि हैं। उनकी संवेदना रोमाण्टिक है। वे मूलत. यौवन, सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं जबकि नरेन्द्र शर्मा इसके साथ ही आध्यात्मिक भी। 'प्रवासी के गीत' में उनकी जो कविताएं हैं वे रूपविधान के क्षेत्र में नयेपन की परिचायिका हैं। उनकी कविता मे भाषा तथा छन्द आदि के क्षेत्र मे नये प्रयोगों के उदाहरण मिलेंगे; जैसे—

> तुम्हें याद है क्या उस दिन की
> नये कोट के बटन होल में
> हँस कर प्रिये लगा दी थी जब
> वह गुलाब की लाल कली।
> फिर कुछ शरमाकर, साहस कर
> बोली यों तुम, इसको यों ही
> खेल समझ कर फेंक न देना
> है यह प्रेम—भेंट पहली।

हिन्दी की नई कविता का जन्म छायावादी काल्पनिक, रोमानी तथा पालायन-वृत्ति के फलस्वरूप हुआ था, फलतः नई कविता को नित्य नये रूप देने का प्रयत्न किया गया। माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण कविता लिखने वाले कवि हैं। 'नवीन' जी के कविता संग्रह 'क्वासि' की कविताओं में नयी कविता-प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है, जो आस्थावादी दृष्टिकोण का परिचय देती है। कहीं-कहीं मानवतावादी स्वर भी लक्षित होती है; यथा—

> सपक चाटते जूठे पत्ते
> जिस मैंने देखा नर को,
> उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ
> आग आज इस दुनिया भर को।

'दिनकर' के 'इतिहास के आँसू' और 'धूप और धुँआ' आदि संग्रह प्रयोगात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कवि का दृष्टिकोण प्रगतिशील है और यथार्थ के नये रूपों की विविधता का चित्रण उनकी कविता में हुआ है। 'उर्वशी' इस दृष्टि से उनकी कविता-धारा का अभिनव सोपान है। 'दिनकर' की नई कविता का मोड़ और नया स्वर देखकर लगता है, उन्होंने युग की नई दिशा पहचान है, जैसे—

> लिख रहे गीत इस अंधकार में भी तुम
> रवि से काले बादल जब बरस रहे हैं,
> सरिताएँ जमकर बर्फ हुई जाती हैं,
> जब बहुत लोग पानी को तरस रहे हैं।

डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' की प्रारम्भिक कविताएँ प्रेम प्रधान थीं, किन्तु 'पर आँखें नहीं भरीं' से उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ के धरातल पर कही जा सकती हैं। नागार्जुन का कविता संग्रह 'युग धारा' की कविताओं से लगता है, उनमें एक प्रकार की कट्टरता सी है। फलतः उनकी स्वाभाविकता कम हो गई। लेकिन इनकी सबसे बड़ी विशेषता मार्मिकता है। एक उदाहरण देखिये—

> ऋतु बसन्त का सुप्रभात था।
> एक दूसरे से विच्छिन्न हो

अलग-अलग रह कर ही जिनको
सारी रात बितानी होती!
निशा काल के चिर अभिलाषित
बेबस उन चकवा-चकवी का
बन्द हुआ क्रन्दन फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय कलह छिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है।

डा० रांगेयराघव की मुक्त छन्द में लिखी गयी कविताओं का गुण—प्रवृत्ति की दृष्टि से—यथार्थानुकारिता कहा जायेगा। केदारनाथ अग्रवाल का नाम सामाजिक यथार्थ को अधिक मार्मिक बनाने वालों में उल्लेखनीय है। सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति की मुख्यता वाले अन्य कवियों में रामविलास शर्मा, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, शमशेरबहादुर सिंह, तथा भारतभूषण अग्रवाल का नाम भी महत्वपूर्ण है। भारतभूषण अग्रवाल की नई रचनाएँ विशेष प्रौढ़ता लिये हुये हैं और उसमे विश्वासी रूप अधिक मुखर हुआ है—

आज ही मैं जान पाया हूँ
कि मैं अकेला ही नहीं हूँ दुखी चिन्ता-ग्रस्त
वरन् आज समस्त जीवन स्रोत
रुद्ध हो इस विषय बाधा से विकल हैं फूटने
पथ खोजने के लिये···।

नयी कविता में, जिससे प्रायः प्रयोगशील कविता से तात्पर्य लिया जाता है, कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ ही देखी जाती है। कुछ में नये सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने का आग्रह रहता है और कुछ मे विभिन्न परिस्थियों के फलस्वरूप जीवन से विरक्ति या निराशा। अन्य में इसी पृष्ठभूमि पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से विचार और अनास्था का प्राबल्य रहता है। कुछ रचनायें रोमानियत लिए हैं।* प्रयोगवाद के अन्यतम कवि 'अज्ञेय' को 'तार सप्तक' में संग्रहीत

*हिन्दी साहित्य, पिछला दशक : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३६-३७।

हिन्दी की नई कविता का जन्म छायावादी काव्य पलायन-वृत्ति के फलस्वरूप हुआ था, फलतः नई कविता का प्रयत्न किया गया। माखनलाल चतुर्वेदी और ब राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण कविता लिखने वाले कवि हैं संग्रह 'क्वासि' की कविताओं में नयी कविता-प्रवृत्ति जो आस्थावादी दृष्टिकोण का परिचय देती है। न भी लक्षित होती है; यथा—

> लपक चाटते जूठे पत्ते
> जिस मैंने देखा नर को,
> उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं
> आग आज इस दुनिया भर को

'दिनकर' के 'इतिहास के आँसू' और 'ध प्रयोगात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कवि यथार्थ के नये रूपों की विविधता का चित्रण 'उर्वशी' इस दृष्टि से उनकी कविता-धारा क की नई कविता का मोड़ और नया स्वर दे नई दिशा पहचान है; जैसे—

'यथार्थ और कल्पना', 'युग दीप' तथा 'मुझमें जो शेष है' के रचयिता उदयशंकर भट्ट का दृष्टिकोण मानवतावादी रहा है। बालकृष्णराव की कविताओं में यथार्थ की तीव्र चेतना और अभिव्यक्ति दिखायी देती है, यद्यपि कहीं-कहीं दिखायी देता है कि कवि अपनी अनुभूतियों को समेट या एकत्र नहीं कर पाया है। कवि ने अपनी कविताओं में शिल्प की अपेक्षा संक्षिप्तता पर बल दिया है। डा० देवराज की कविताओं में आधुनिकता कम है। फिर भी उनसे यह स्पष्ट आभास मिलता है कि कवि ने मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई तक देखा है। 'नवीना' के रचयिता गंगाप्रसाद पांडेय की कविता में कोमल, मधुर प्रकृति के सहज सौंदर्य का स्वाभाविक चित्रण मिलता है। इन प्रकृति चित्रों में काफी नवीन रूप भी मिलते हैं—

ये भरे बादल,
भरी आँखों में जैसे हो लगा काजल
और यह शुभ रूप
जैसे प्राण पोषक धूप जाड़े की।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ सहज अभिव्यक्ति और सफलता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। जबकि शकुंत माथुर की कविताओं की विशेषता है,—सादगी और रागात्मकता। हरिनारायण व्यास की कविता में कल्पना का आधिक्य है; कहीं-कहीं आस्थावादी स्वर दृढ़ हो गया है, और सन्देह हीनता की भावना लक्षित होती है—

इस पुरानी जिन्दगी की जेल में
जन्म लेता है नया मन

० ० ०

जल रहीं प्राचीनताएँ बाँध छाती पर मरण का एक क्षण
इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को छोड़ कर
आ रही ऊपर नये युग की किरण।

रघुवीर सहाय की अभिव्यक्ति में मुखराव कम है। गद्यात्मकता की प्रवृत्ति भी उसमें बहुलता से मिलती है। यों इनकी भाषा सरल और चमत्कार युक्त है। इनकी कविता में कहीं-कहीं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की सूक्ष्म विवेचना लक्षित होती है तो कहीं आस्थावादी स्वर की गुंजरण सुनाई देती है। धर्मवीर भारती

की प्रारंभिक कविताओं में रोमानियत के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी मिलती है। उन पर उर्दू काव्य शैली का प्रभाव मिलता है। कुछ कविताओं में यथार्थ की कटु अनुभूति मिलती है; यथा—

> हरी घास में सिर्फ चिराग नहीं, चूल्हे सुलगे
> लेकिन फिर भी
>
> जाने कैसा सुनसान अन्धेरा
> रह-रह कर धुंधुआता है
> छप्पर से छनता हुआ धुआँ
> हर ओर
> हवा की पर्तों पर छा जाता है
> बढ़ जाती तकलीफ साँस तक लेने में
> हर घर में मचता हंगामा।
>
> दफ्तर के थके हुए बलकों की डाँट-डपट
> बच्चों की चीख पुकारें
> पत्नी की भुन-भुन।

नयी कविता का पहला आयाम भाषा से सम्बन्ध रखता है। तथाकथित यह नई कविता भाषा सम्बन्धी प्रयोगशीलता को बाद की सीमा तक नहीं ले जाती। इस कविता के कवि मानते हैं कि कोई शब्द किसी दूसरे शब्द का सम्पूर्ण पर्याय नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग-अलग लक्षणाएँ और व्यंजनाएँ होती हैं—अलग-अलग संस्कार और ध्वनियाँ।*
नयी कविता में विषय पुराना होते हुए भी वस्तु नयी है। क्योंकि विषय और वस्तु पर्याय नहीं अलग-अलग हैं। यद्यपि देशकाल की परिवर्तित परिस्थितियों में संवेदनशील व्यक्ति को कुछ नया देखने-सुनने को मिले, इसलिए विषय के नवेपन के विचार को भी इसमें प्रश्रय है; पर विषय केवल नये हो सकते हैं, मौलिक नहीं—मौलिकता वस्तु से ही सम्बन्ध रखती है।

---

* तीसरा सप्तक : सं० अज्ञेय, पृष्ठ, १६।

नयी कविता ने कभी अपने को शिल्प तक सीमित रखना नहीं चाहा, न वैसी सीमा ही स्वीकार की। नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं हुआ, नयी शिल्प दृष्टि से उसने काम लिया है। नयी कविता का कथ्य आज के यथार्थ के अतिरिक्त बीते कल के यथार्थ से भी सम्पृक्त हो सकता है और आने वाले कल की संभावनाओं से भी। आज का कवि आज के जीवन, चिन्तन, द्वन्द्व—सभी में जीता है, सभी को भोगता है ; कुछ शरीर द्वारा, कुछ संवेदित व्यक्तित्व द्वारा। इसी से आज के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही आज के कवि की प्रधान और सच्ची अभिव्यक्ति है। प्रयागनारायण त्रिपाठी की कविताओं में सर्वोपरि वह अभिव्यक्ति है जो पाठक को उद्वेलित कर आनन्दित भी करती है और क्षुब्ध भी। उनकी कविता का आधार तो यथार्थ का तलस्पर्शी, सुन्दर और प्रेषणीय चित्रण है। 'नयी बरसात' कविता में अनुभूति की तरलता अवर्णनीय है, तो 'साँसें' में यथार्थ के नये प्रयोग हैं। 'साँसें' कविता देखिये—

उत्तप्त धरती की गर्मीली, हल्की साँस
ऊपर उठी;
प्रोज्ज्वल गगन की सर्दीली, भरी साँस
नीचे झुकी,
यह हुआ फिर-फिर
जब जब आयी साँझ घिर-घिर
और नीचे-ऊपर की साँसें सम न हो गईं—
सम, शीतल और शान्त
जैसे—जैसे कि हम।

मदन वात्स्यायन की कविता में नये वातावरण में पुरानी कविता का प्रसार मात्र ही नहीं बल्कि एक नया संसार है। उनकी कविताएँ भावना के आधिपत्य को चेतना में रंजित करके चरण बढ़ाती हैं। अपनी कविता के विषय में वे स्वयं कहते हैं—'अनिचेतन और अवचेतन के द्वन्द्व के बीच भाव कुछ बिजली के धक्के की तरह आ जाते हैं। एक चित्र आया, और अनुभवों की पिटारी में से दूसरे चित्र सूत्र में गुथने लगे। × × जब बुलबुल गाने लगे तो उसी वक्त कारखाने का भोंपा भी बज उठे—काम पर जाने की तैयारी में कवि देह की 'व्याकुल पति के

साथ आकर्षण और विकर्षण के इन दो स्मृति-प्रवाहों की टक्कर के बाद बिखरा सा सामान पड़ा रह जावे; आगे फ़ुरसत के वक्त जब कुछ बनने लगे तो उनमें से छांट-बीनकर पुर्जे-पुर्जे नट बोल्ट के सहारे जोड़ लिए जायें।* मदन वात्स्यायन की 'उषा स्तवन' कविता, उनके इस कथन के उपयुक्त ही है। कुछ अंश देखिये—

> मेरे हाथ में जुए की एक और बाजी की तरह, उषे तुम फिर आ गयी हो!
> हारी हुई बाजियों ने जब मुझे परेशान कर रखा था।
> मुझे तबाह कर रखा था,
> खाये डाल रही थी मुझे,
> उस वक़्त मेरे हाथ में एक बार और ताश के पत्तों की तरह उषे,
> तुम फिर आ गयी हो। †

केदारनाथ सिंह की कविता में नित्य नये बिम्ब-विधानों पर बल दिया गया है तो कुंवरनारायण अग्रवाल की कविताओं में गद्यात्मकता काफ़ी लक्षित होती है। ऐसे स्थान पर अभिव्यक्ति में दुरूहता है, भाव अस्पष्ट हैं और एक विचित्र सा उलझाव है। फिर भी वे कविता को जीवन की आलोचना मानते हैं। उनके लिए कविता भावुकता की हाय-हाय न होकर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है। विजयदेव नारायण साही की कवितायें भाषा की सरलता और संगठन की चुस्ती की दृष्टि से उल्लेख्य हैं। वे धरती के गायक हैं और मानव-रागों में गाते हैं। उनकी कविताओं में यदि ऊपरी चटक है तो आन्तरिक अनुभूति भी। एक उदाहरण देखिये—

> फिर गया था सिर उमर खैयाम का, जिसने कहा,
> आज आओ मौज करलें, कल तो मरना है हमें,
> साथियों, इतिहास का सन्देश है बहुजनहिताय
> आज मरलें, मार ले, कल मौज करना है हमें!

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता मे विषयवस्तु को अधिक महत्व दिया

---

* तीसरा सप्तक: (मदन वात्स्यायन) पृष्ठ १३६।
† वही, पृष्ठ १४१।

गया है, कटु यथार्थ का वर्णन किया गया है और साधारण बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। उनकी कविता में अन्य कवियों की सी लय नहीं है, फिर भी वह पढ़ने की लय से अनुशासित है। कहीं-कहीं अनुभूति की व्यंजकता दर्शनीय है। यथा—

> तेज़ी से जाती हुई कार के पीछे
> पथ पर गिर पड़े
> निर्जीव सूखे पीले पड़े पत्तों ने भी
> कुछ दूर दौड़ कर गर्व से कहा—
> हममें भी गति है,
> सुनो, हममें भी जीवन है,
> रुको-रुको हम भी साथ चलते हैं
> हम भी प्रगतिशील हैं।
> लेकिन उनसे कौन कहे—
> प्रगति, विशृंखलापूर्ण नहीं है
> और जीवन, आगे बढ़ने के लिए
> दूसरों का मुंह नहीं ताकता।

आधुनिक काल में किसी भी कला की साधना साहस-कार्य है। काव्य रचना में तो यह साहस निहित है ही, क्योंकि आज वह एक वैचारिक साहसिकता भी मांगती है। नयी कविता के कवियों के लिए जन्मजात प्रतिभा कोई अर्थ नहीं रखती—उनमें बौद्धिकता का प्रबल प्रवाह है, भावजगत से स्थूल जगत की ओर दृष्टि है और मौलिक रूप से चिन्तन की अपेक्षा नवीनता के नाम पर चौंकाने या आकर्षित करने की प्रवृत्ति है। नये तरीके से अभिव्यक्ति के नमूने के तौर पर प्रायः कविताओं में बहुत भद्दे एक्सपेरिमेन्ट देखने में आते हैं, इसलिए कवि जो कहना चाहते हैं वह पाठकों के पल्ले नहीं पड़ता और जो कुछ पाठक उनसे आशा करता है, वह वे कह नहीं पाते।

यह सच है कि कुछ कवि नयी कविता के क्षेत्र में मात्र 'फैशन' में पड़ कर कविता (अकविता) लिख रहे हैं। वे अच्छा गाने की तरह—अच्छा कपड़ा पहनने की तरह ही कविता लिखना चाहते हैं; इसलिए धैर्य और प्रतिभा दोनों का उनमें अभाव है। इसी प्रकार नई कविता आलोचक—प्रबुद्ध समीक्षक—दुर्भाग्य

संस्कारों और परिणाम-गत पूर्वाग्रहों के कारण नयी कविता का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाता। कुछ आगन्तुक कृतिकारों ने भी 'फैशन' में पड़ कर पर्याप्त कूड़ा लिखा है और ऐसा समीक्षक इन्हीं रचनाओं को देखकर नई कविता को रागिहत जीवन दर्शनगत और फैशनगत उपलब्धि सिद्ध कर देते हैं।

जो व्यक्ति सदा पद्य को आदर्श समझते रहे, उन्होंने नई कविता पर गद्यात्मकता, गेयता का अभाव और लयहीनता का आरोप लगाया है। वस्तुतः लयात्मकता लोकगीतों की विशेषता है; फिर भी नयी कविता में लय है, किन्तु वह उसके भावबोध और शिल्प गठन से नियन्त्रित है। और यह लय पूर्ववर्ती कविता के 'लय पैटर्न' पर आधारित या अनुगमित नहीं है। इस लय को 'आन्तरिक लय' कहना अधिक बुद्धिसंगत होगा। नयी कविता की लय उसकी अन्तर प्रेरित स्थितियों से प्रवहमान होती है। *

यद्यपि अतिवैयक्तिता ने इसे जटिल और दुरूह बना दिया है फिर भी वैविध्य, और उत्तर परिप्रेक्ष्यों मे महती और प्रचुर सामग्री भी प्रदान की है। उपेक्षित सन्दर्भों को काव्य विषय बनाना, नये विम्ब, सर्वथा नये प्रतीक, नये छन्द, नया भाव बोध सम्प्रेषित करना, अति वैयक्तिकता द्वारा ही शक्य हो सका है। नयी कविता मे विभिन्न प्रकार के विम्बों के साथ शब्द विम्ब तथा विम्ब प्रतीकों का विशेष महत्व है। केदारनाथ सिंह में विम्ब के प्रति अत्यधिक मोह मिलता है, पर गिरिजाकुमार माथुर के' धूप के धान' [कविता संग्रह की सशक्त कविता 'ढाकबनी' में वायु उद्वेलित चटुल लहरियों का मदिर विम्ब उनकी विम्ब पकड़ के प्रति पाठक को आस्थावान बनाता है—

> गंध घोड़े पर चढ़ी
> दुलकी चली आती हवाएं
> टाप हलके पड़ें जल में
> गोल लहरें उछल आएँ।

नये कवि ने कविता को मनोरंजन का साधन नहीं माना है, यही कारण है कि नयी कविता मे बौद्धिकता का पर्याप्त समावेश हो गया है। कहीं-कहीं अधिक

---

* विश्व काव्य की रूप रेखा: डा. विजयेन्द्र स्नातक, पृष्ठ १७।

बौद्धिकता का पर्याप्त समावेश होने के कारण कविता गद्यात्मक हो जाती है जो उसकी प्रशंसनीय उपलब्धि नहीं मानी जा सकती, किन्तु डा. प्रतापनारायण टण्डन की कविताएँ इस नई कविता के क्षेत्र में एक नया चरण है। उनके कविता संग्रह 'पथरीले प्रतिरूप' की कविताएँ बौद्धिक भावनात्मकता से ओत-प्रोत हैं। इनमें 'पाश्चात्य सांस्कृतिक उपलब्धियों और वैज्ञानिक प्रगति के पार्थिव परन्तु जीवन्त रूपों को भाषाबद्ध किया गया है। मूर्त और अमूर्त आधारों के साथ अनुभूत्यात्मक सन्तुलन की जो सयोजित अभिव्यक्ति इस संग्रह की कविताओं में मिलती है, वह हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा अनछुई वस्तु है। डा. प्रतापनारायण टण्डन की विदेशयात्रा के दौरान मे प्रणीत ये काव्य रचनाएँ एक अभिनव परिवेश में सांस्कृतिक साक्ष्य के आयाम की बोधक हैं। अनुभूत क्षणों की सहजता और सरलता काव्य रसात्मकता के एक अधुनातन रूप की परिचायक है। जीवन की विराटता के मध्य आत्म बोध की स्वानुभूत सवेदनशीलता और भावात्मक प्रतिक्रियात्मकता के साथ सौन्दर्य भावना की सूक्ष्म विभूत्यात्मक निहृति ने इन पद्य रचनाओं को काव्य स्वरूपगत पूर्णता प्रदान की है। सहज कुण्ठाहीनता के साथ प्रबुद्ध स्तर पर शाश्वत आस्था की भावना ने इन कविताओं को असाधारण स्वर दिया है।' *

डा० प्रतापनारायण टण्डन की 'पथरीले प्रतिरूप' सग्रह की कविताएँ हिन्दी साहित्य की नवीनतम उपलब्धियों मे एक महान् उपलब्धि हैं। इस सग्रह की कविताओं ने आज के अधुनातन कवि को भी एक नई दिशा का दर्शन कराया है। अब तक के कवि काव्य को जीवन के पर्यवेक्षण का परिणाम मानते रहे हैं पर डा० प्रतापनारायण टण्डन उसे पर्यवेक्षण नही भोगा हुआ क्षण का परिणाम मानते हैं। † इसी कारण ये कविताएँ कवि के भोगे हुए क्षणों की अनुभूत्यात्मक उपलब्धियां हैं। गत वर्ष उन्हे विदेश जाने का अवसर मिला

* पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १

† 'सफल, पूर्ण और जीवंत अभिव्यञ्जनात्मकता जिस परिपक्वता और अनुभवपूर्णता की अपेक्षा रखती है, वह भी अन्ततः जीवन को जीने से ही आती है, पर्यवेक्षण से नहीं।

—पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ९।

था, फलतः वहाँ रोम, फ्लोरेंस, पीसा, पिस्टोइया आदि महत्वपूर्ण नगरों की भव्य मनाइनियों, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपलब्धियों ने प्रभावित किया तो अधुनातन वैज्ञानिक प्रगति से भौतिक सुखों की परिणति ने भी उन्हें एक नया दृष्टिकोण दिया। किन्तु इसके पीछे भी उनको भारतीय विचार धारा—यहाँ के आध्यात्मिक संस्कार किनारा न कर सके। इसमें भी उन्हें कुछ अभाव खटकता है। इन महत्तम आधुनिक साधनों ने भी उनके मन को शान्ति नहीं दी है—उनको मानव से गिरा कर प्रेत बना दिया है—मशीन बना दिया है, जो भौतिकता की मृगतृष्णा के पीछे पागल है। इसका सशक्त चित्रण 'अभाव' कविता में हुआ है। कुछ अंश देखिये—

> चौड़ी सड़कों पर शोर सी चलती कारें
> कर्ण कटुता के द्योतक स्कूटर
> व्यस्तता के क्षणों में बंधा हुआ मानव
> मानव नहीं लगता
> लगता है प्रेत जो जन्मा हो
> मिट गये अतीत जीवन की राख से
> एक कोई कमी
> जो अब भी खटकती है
> चुनौती देती है अब भी
> मानवीय उपलब्धियों को
> लगता है रोम, समूचा
> कहीं खो सा गया है। *

इसी प्रकार के विचार 'अतृप्ति' में व्यक्त हुए हैं। रोम संसार में भौतिक समृद्धि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, वह वर्तमान को सुखी बनाने पर तुला हुआ है। वहाँ की भव्य जगमगाहट, वासना का अनवरत नृत्य पान, मदहोश इच्छाएं क्या मानव को तृप्त कर सकीं! उनके अन्तर में अतृप्ति अब भी है, इसी कारण प्रतिदिन यह नाटक प्रारम्भ होकर आधी रात तक चलता है और फिर दूसरे दिन प्रारम्भ हो जाता है। शान्ति कहीं नहीं है, तृप्ति सम्भव नहीं

---

* पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २६–२७

लगती और जिन्दगी तथा शताब्दियां यों ही अतृप्त मानव को अपने कन्धे पर बिठाकर लीन हो जाती हैं। और यह अतृप्ति का चक्र अनवरत चलता ही रहता है ; यथा—

मदहोशी में डूबी हुई अतृप्तियाँ
हवा पर डोलती हुई
चमकीली परछाइयाँ
शून्य में खोती हुई, गहरी अंधियारियां
आकर्षक अंगो की थिरकन पर
छिटकती सुगंधियाँ
बाहु लताओं में लटकी
नृत्य रत रमणियां
हल्के आलिगनों में लिपटी
यौवन की अंगड़ाइयाँ
कोमल इच्छाओं को बिखरन
जैसे टूटें वायलन की लड़ियाँ
अतृप्ति, तृप्ति और फिर अतृप्ति
चिर तिष्णा में यों ही गुजर जातीं
जिन्दगियाँ, शताब्दियाँ ! *

यहाँ अमूर्त उपमानों को मूर्त करके लेखक ने अपनी सशक्त शिल्प कला का दर्शन कराया है। साथ ही उसकी अनुभूति भी जबर्दस्त है। श्री अरविन्द की आत्मा तो साधना द्वारा भौतिकता से संघर्ष करती हुई अपने अमर स्वरूप की बोध एक दिन प्राप्त कर ही लेती है और उसके द्वैत को ज्ञान एक दिन प्राप्त हो ही जाता है—† किन्तु प्रतापनारायण टण्डन की इस कविता में मानव

---

† पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ ८२–८३

* I have discovered my deathless being
Maked by my frant of mind, immense and sarie
It meets the world with an immartal's seeing
A god—spectator of the human scane.
—Sri Aurobindo; last poems, p. p. 25.

अभी भौतिकता में ही डूबा हुआ है, जिसके लिए कवि उद्बोधन के स्वर गुंजरित कर रहा है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की काव्य संबन्धी मान्यता वैयक्तिक और अनुभूतिपरक है। उन्होंने काव्य को न तो रुदन की प्रेरणा माना है और न ही उसे आह से उपजा गान माना है, वे लोक कल्याण की भावना इतिहास की वस्तु मानते हैं, प्राचीन कविता का शास्त्रीय रूप और छन्द अलंकार भी नई कविता के वाह्य रूप निर्माण मे अक्षम हैं। पंत की तरह मानववादी अथवा निराला की तरह आध्यात्मिक अन्तरबोध अब मिथ्या दावे लगते हैं। उनके अनुसार आज की कविता समाज सापेक्ष न हो कर व्यक्तिगत अनुभूतिपरक है। 'पथरीले प्रतिरूप' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है—'साहित्य और काव्य के उद्देश्य विषयक पुराने सिद्धान्त अब न केवल निष्प्राण हो गये हैं, वरन् युग जीवन के संदर्भ में निरर्थक भी लगते हैं। लोक कल्याण की भावना का प्रसार करने वाली साहित्यिक कसौटियाँ भी इतिहास युगों की प्रतीक मात्र बन कर रह गई हैं। विश्वजनीन स्तर पर काव्य की मानववादी व्याख्या अब महत्वपूर्ण नहीं रह गई है। आध्यात्मिक अन्तरबोध के मिथ्या दावे अब हल्के हो गये हैं। ....मेरे विचार से काव्य निश्चितनः अनुभूतिपरक होता है। और जीवनोन्नयन का प्रेरक होने के साथ ही चेतना का उद्बोधक भी होता है। इस कोटि के काव्य का प्रणेता अपने जीवन विवेक को कलात्मक माध्यम से अभिव्यक्तिगत परिणति दे सकता है। ....इस दृष्टिकोण से सामाजिक मूल्यों का इसमें एकात्म्य नहीं हो सकता और न ही उस रूप में वह सामाजिक मान्यता ही प्राप्त कर सकती है। इसलिए कोई कविता श्रेष्ठ होकर असुन्दर भी हो सकती है।'

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टंडन की कविता वैयक्तिक अनुभूतियों की परिणति है। सन् ६४ की विदेश-यात्रा ने उनकी बुद्धि को सहज अनुभूति दी, और वह अनुभूति कविता के माध्यम से व्यक्त हो उठी। कवि संघर्ष को मुक्त मानता है, फिर भी संघर्ष-केवल संघर्ष ही मानव-जीवन का ध्येय नहीं है। यद्यपि आधुनिक युग में विश्व की दूरियाँ निकट और सुगम हो जाने के कारण भी वही देश अधिक प्रगतिशील हो पाये जिन्होंने युद्ध की विभीषिकाओं का स्वानुभव किया। इसलिए सम्भवतः योरप में अधिकतम भौतिक समृद्धि हो

पायी है क्योंकि उसने दो-दो विश्वयुद्धों और उनके परिणामों को देखा और अनुभव किया। लेकिन इससे उनकी क्षुधा-तृप्ति नहीं हुई, उनकी भौतिकता की चाह बढ़ती ही गयी। रोम, विस्टोइया, फ्लोरेंस, पीसा आदि भव्य नगरियों मे प्राचीनता की प्रतीक प्रस्तर-मूर्तियाँ, आज भी अतीत के इतिहास को अपने में छिपाये हुए हैं। इतिहास के अनुसन्धित्सु वहाँ जाते है और उन्हें देखते हैं। किन्तु कोई भी उनके प्रति सहानुभूति नही जताता, उनको सुनता नही। कवि उनके प्रति संवेदना का प्रकटीकरण करकेसहानुभूति दर्शाता है, उसे अनुभव होता है कि मूर्तियाँ कह रही है; कुछ संकेत कर रही हैं, किन्तु वे प्रस्तर मात्र हैं; अतः उनका सकेत कोई सुन नही पाता। डा० प्रतापनारायण टंडन उनके सन्देश-को सुनाते हैं कि ये मूर्तियाँ केवल शिल्पी का कोरा शिल्प मात्र नही हैं, इतिहास की साक्षिणी है। ये शान्ति का सदेश देना चाहती है, पर कोई सुन नही रहा है। मूर्तियो का विकृत रूप मानो चीख-चीख कर कह रहा है कि जिस समय हमे बनाया गया था, उस समय हम बहुत सुन्दर थी, मात्र प्रस्तर प्रतिमा नहीं थी, और बनाने वाले का उद्देश्य युद्ध नही था—शान्ति था। किन्तु आगे आने वाली पीढ़ियो ने युद्ध की आग भभका कर हमारे रूप को विकृत कर दिया, और तुम इतिहास के अध्येता होकर भी इसे समझ नहीं पाते ;

इनके सूने आसन
दर्शनार्थियों का आकर्षण हैं
छात्रों, अध्येताओं के लिए
एकांतिक सत्तावान हैं।

इसलिए—
ये मर कर भी नहीं मरना चाहतीं
मिटकर भी नहीं मिटना मानतीं,
चाहती हैं देना अमर सन्देश
मानव को, मानव पुत्र को
जो अब भी अपने पूर्वजों के दर्शाए मार्ग पर
विनाश के लिए अग्रसर हो रहा है।

इन्हें देखो नहीं
प्रस्तर पुत्र—

गुणी। *

इसी प्रकार की अनुभूति लेखक को 'प्रस्तर मूर्ति' कविता में होती है; मूर्ति निर्जीव नहीं है, अपितु शोकाकुल है और बर्बर मानव जातियों के दुर्दम्य पाशविक कृत्यों पर मौन शोकाकुल रुदन कर रही है—हाहाकार कर रही है।

यहां कवि की अनुभूति में उसका अहं रूप अधिक विकसित है। वह कहता है—अन्य सब आ रहे हैं, देख रहे हैं, पर कोईउसके स्वरों को नहीं सुन पाता, 'पर मुझसे जरा भी नहीं छिपता, इस भग्नप्रस्तर मूर्ति का यह मौन शोकाकुल रुदन'। 'पथरीले प्रतिरूप' की कविताओं में कवि का अहं रूप अनेक स्थानों पर मुखरित हुआ है, इससे स्पष्ट होता है कि लेखक अहंवादी है, और उसका यह अहंवाद वैयक्तिक धरातल पर है, उसमें वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है-ऐसी वैयक्तिक अनुभूति, जो समष्टि से स्वयं को समन्वित किये हुये है। प्रारम्भ की कविता 'रोम की एक भग्न नारी मूर्ति से,' 'आवाहन', 'प्रस्तर मूर्ति', 'सम्बोधन', और 'आश्वासन' कवि के अहं रूप की परिचायकी हैं। आश्वासन कविता में कवि रोम से अपने देश वापिस आ रहा है; आते समय वहां के मूर्तियों और पीसा को देखता है। पीसा टेढ़ी है, लगता है वह वहां के भौतिक संघर्षों से बुरी तरह घबड़ायी हुई है और कवि शान्ति के पुजारी देश का निवासी है जो मानव मात्र से ही नहीं जड़ जंगम से भी संवेदना रखता है। उसके आने से मानों उन मूर्तियों और पीसा की मीनार आदि सभी को अपूर्व शान्ति मिली है, उसी प्रकार जैसे सीता को अशोक-वाटिका में पवन पुत्र के दर्शनों से मिली थी और नरक के दग्ध प्राणियों को क्षण भर के लिये मृत्योपरान्त युधिष्ठिर के जाने पर मिली थी। अब कवि वहां से विदा ले रहा है, तो लगता है पीसा की टेढ़ी मीनार मौन सीत्कार कर के उससे मिलने के लिए अधीरा होकर टेढ़ी हो गयी हैं और उसे जाने देना नहीं चाहती। सीता ने तो हनुमान के विदा मांगने पर कह दिया था 'तुम्हहिं देखि सीतल भई छाती। पुनि मों कहुं सोइ दिन सोइ राती।' पर मूक पीसा किस प्रकार अपनी व्याकुलता और अधीरता व्यक्त करे, अतः उसका मौन मर्मवेधी सीत्कार कवि स्वयं अनुभव करता है और उसे आश्वासता हुआ कहता है—

---

* पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३०—३१।

आह !
पीसा! जानता हूँ, बोध होता है मुझे
तेरी मर्मवेधी मौन सीत्कार यह
तेरी व्यथा की गाँठ
कितनी दुखदायिनी है
तप्ता दग्धा बनी है
विदा होता हूँ मगर यह ध्यान धर
यदि कभी भी
रुदन के व्याकुल पलों में
कम्पित हृदय हो तेरा
तो तू इस दिन की याद करना
अपनी स्मृति को पलटना
मेरी याद
तेरा अन्तर्दाह मिटावेगी।*

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविताओं में उनका अहंवादी रूप तो स्पष्ट है ही, भारतीय संस्कार भी उनके झीने आवरण से झांक रहे हैं। भारतीय संस्कार नग्न नारी को देखना 'पाप' मानते हैं। यहाँ नारी की ओर खुली दृष्टि से देखना भी घृण्य कृत्य माना जाता है, फिर नग्न देखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु पाश्चात्य देशों मे, जहाँ सेक्स को इतना महत्व नहीं दिया जाता, नारी का नग्न रूप इतना अग्राह्य अथवा अदर्शनीय नहीं है; यही कारण है कि वहाँ की मूर्तियों मे निरावृता नारी की मूर्तियाँ बहुत हैं। कवि ने जिस मूर्ति को देखा था, वह भग्न मूर्ति थी, और पूर्णरूपेण निरावृता थी, जो समय के प्रहारों से विरूप हो रही थी। कवि कल्पना करता है कि ये मूर्ति मानो अपने मूक कथन से सबसे अपनी ओर न देखने की प्रार्थना कर रही हों और अपने छिन्न-विच्छिन्न अंगों के कारण व्यथित हों; यथा—

हमारे हृदयों में छिपे
इतिहास के रहस्य

*पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८४

आग धधकाते हैं
हमारे जख्म
हमें सालते हैं

हमें मत देखो
मत घूरो
हमें मत स्पर्शित करो। *

आज की विश्व कविता का मूल कथ्य मानव का आन्तरिक द्वन्द्व चित्रण, आस्था-अनास्था का द्वन्द्व और फिर आस्था अथवा अनास्था का गहरा बोध है। डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता में आस्था-अनास्था का द्वन्द्व काफी प्रबल है। निरन्तर जटिल होती हुई जिन्दगी ने और युग बोध ने उनकी कविता के कथ्य को भी जटिल बना दिया है, पर ऐसा जटिल नहीं जो समझ से परे की वस्तु बन गया हो। 'मन के बन्धन' कविता में कवि का आन्तरिक द्वन्द्व अच्छा उभरा है। जहाज से उड़ते समय कवि के मस्तिष्क ने विचित्र अनुभूति दी, 'धरती से ऊपर' होकर उसका मन नई प्रेरणायें ग्रहण कर रहा है। 'भया-वह वातावरण में सूना आसमान' में मनुष्य की 'अजनबी परछाइयाँ' लगती हैं 'सृष्टि को बाँधती जा रही है और मन जकड़ा हुआ लगता है।' पथरीली मूर्तियों को देखकर कवि के हृदय में जो भावनाएँ जन्मीं, उनमें उसकी जीवन के प्रति आस्था के गहरे संकेत मिलते हैं। 'विरोध' कविता में इसका रूप स्पष्ट है; यथा—

विस्मृत अतीत के पार्थिव विग्रह
पथरीली आत्माओं की
दबी हुई आवाजें
मार्मिक चीत्कार सी लगतीं
ये अजन्मे आत्मिक जीवन
काल की अग्नि में तपाये हुए
इनके प्रस्तर शरीर
ईश्वरीय छाया से जीवन्त

---

* पथरीले प्रतिबिम्ब : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ [illegible]।

स्पष्ट नहीं है, अपितु मृत्यु की दिशा का बोध है। 'भित्ति चित्र' कविता में दीवारों की चित्रकारियां जो अतीत के गौरव की बोधक होने के साथ ही काल के कराल पंजों का विकृतपन, युद्धों की भयंकर] विभिषिका—जो सतत् मृत्यु के भयंकर रूपों का बोध कराती है, का स्पष्ट चित्र है; यथा—

> महायुद्धों के परिणाम
> अमर सर्जन पलों के
> ध्वस्त कला रूप
> जो अपना जन्मा सौन्दर्य खो चुके हैं
>
> अग्नि काण्डों
> युद्धों द्वारा विनष्ट
> कीड़े खाये बदशकल
> भित्ति चित्र ।।

यहाँ चित्रों के माध्यम से मृत्यु बोध, यान्त्रिकता, परिवेशगत जीवन पीड़ा तथा अन्तर्विरोधों की सुस्पष्ट विवेचना की गई है। इसमें युद्ध-विनाश के प्रति तीखा व्यंग है। प्रत्येक कवि जीवन की तलखाहट को व्यंग की तल्ली में घूम जाना चाहता है। वह समाज पर व्यंग करता है, रूढ़ियों और परम्पराओं पर व्यंग करता है और कभी-कभी भौतिक जीवन पर ही व्यंग करने लगता है। ऐड्रियन मिचेल की तरह डा० प्रभातनारायण टण्डन की कविता में भी व्यंग की दृष्टि देखी जा सकती है। 'सिस्टीइया का एक भवन' में कवि ने वर्तमान पर व्यंग किया है जो अतीत से मुखरित होता है—

> ——और भित्तियां, रहस्यमयी सी हम सब पर हंसती
> खिलखिलाती, मौन कटाक्ष करती
> संभवतः विधि की किसी अदृश्य प्रेरणा से
> हमारे भाग्य विधान पर।

'कोठरी में' कविता में योरप की औपनिवेशिक नीति पर व्यंग है तो 'दीवार के प्रहरी' में उन शिल्पकारों और अन्य छोटी-बड़ी इमारतों पर व्यंग है जो [illegible] के चारों ओर स्थित होकर मानो उनकी रक्षा [illegible] का [illegible] में। 'अंतर्यात्रा' कविता उनकी सशक्त कविता है, इसमें मृत्यु पर [illegible]

ध्वंस है। सब कुछ मृत्यु के कराल पाश में बंधता जाता है, उसके भयानक जबड़ों में धँसता जाता है; पर वर्तमान सदैव अमर है, मानो मृत्यु पर व्यंग्य की हँसी हँस रहा हो और अपनी शाश्वत सत्ता के आश्वासन संकेत दे रहा हो; यथा—

> ………जीवन से बंधा
> मृत्यु के द्वार पर रक्त टपकाता सा
> आरक्त
> लेकिन जो मरेगा नहीं
> कभी नहीं !
> जो कभी भी इतिहास नहीं बनेगा
> कभी भी नहीं।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता में यदि जबर्दस्त अनुभूति-चित्रण है तो कुछ हल्के-फुल्के चित्र भी है, जिनमें केवल एक जिये हुए—पर्यवेक्षित क्षण का विवरण मात्र है। 'चर्च की घण्टियां', 'आश्चर्य', 'कौतूहल' और 'प्रतीक्षा' आदि कवितायें इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। किन्तु इस प्रकार की कवितायें भी मात्र मनोरजन के लिए नहीं हैं; हमारे कथन के प्रमाण में उनकी 'प्रतीक्षा' कविता रखी जा सकती है।

> बहुदेशीय जन समूह में भी
> अकेली हो पोसा
> किसी ऐसे की प्रतीक्षा में
> जो उसके युग-युग से ब्याये हुए
> एकाकीपन के कुहासे को
> बाँट ले हो साथ में।

एक ओर यदि इसमें हल्के-फुल्के चित्र हैं तो दूसरी ओर पौराणिक चित्र भी प्राप्त होते हैं। रोम नगर की प्राचीन-दन्त कथाओं को लेकर इन शब्द चित्रों का अंकन किया गया है। 'शरणदान' और 'अभागिनी' एवं 'ऐनियास' इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'संकेत' में ऐनियास को उसकी कायरता पर, युद्ध से भीत होने पर, संघर्ष के लिए जागरूक किया गया है। इस पौराणिक कविता के शब्दों में भावों की गहराई है; शब्द कम हैं, पर अर्थ गहरा है। जिस प्रकार अर्जुन युद्ध से

परांमुख होकर बीच मैदान में कायर की तरह बैठ गया था और भगवान कृष्ण ने उसे उद्बोधन दिया था, उसी प्रकार जल देवता, युद्ध से भयभीत ऐनियास को जय यात्रा के लिए प्रवृत्त करते हैं; यथा—

> मैं जल देवता
> टाइबर नदी का देवता
> उठो वीर ऐनियास
> तुम्हारी प्रतीक्षा में लैटियम की भूमि
> चिरकाल से रत
>
> मत भीत हो युद्ध से
> तुम हो निर्माता यहाँ के भावी गृह के........*

यहाँ कवि ने पौराणिक आख्यान के द्वारा वर्तमान को भी संकेत दिया है। आख्यान विदेशी है, कवितायें भी 'विदेश की कवितायें' हैं, पर लिखी कवि के अपने देश—भारत—में गई हैं, इसलिए उसके देशवासियों के लिए भी उद्बोधन के स्वर हैं—साधर्म्य के जागरण के, शत्रु से लिए गए मोर्चे पर सन्नद्ध रहने के। इस कविता में युग जीवन बोल रहा है—कवि की राष्ट्रीय भावना मुखरित हो रही है।

कवि की वैयक्तिक चेतना न तो पूँजीवाद के फलस्वरूप उपजी कही जा सकती है और न ही साम्राज्यवाद के द्वारा पोषित ही कही जा सकती है, अपितु आधुनिक युगीन हिन्दी कविता छायावादी कविता—जो उपर्युक्त चेतना की वाहक है—से भी भिन्न है और तथाकथित प्रयोगवादी अथवा प्रगतिशील काव्य चेतना से भी अभिन्नता नहीं रखती। प्रयोगवादी कवि नये-नये प्रयोगों के पीछे दीवाना था, उसकी कविता मात्र नवीन उपमानों और लय, छन्द, शब्द आदि के सम्बन्ध में नवीन प्रयोगों का एक संकलन थी, किन्तु नई कविता जिसके स्वर डा० प्रकाशनारायण टण्डन की कविता में झंकृत हो रहे हैं,—सर्वदा इन सब कारों से अछूती है। छायावाद ने भी युग-युग से वर्जित वैयक्तिक चेतना को स्वच्छन्दतावादी आत्मा का नवीन जीवन मूल्यों से सम्बन्ध

* वसन्तों के प्रतिबिम्ब : डा० प्रकाशनारायण टण्डन, पृष्ठ ३४।

स्थापित कर लिया था, किन्तु आज का कवि ऐसा नहीं कर पाता। इसलिए डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता में तीसरे सप्तक के कवियों की तरह सिर्फ वैयक्तिक अनुभूति से उत्पन्न नयी चेतना के स्वर प्राप्त होते हैं। इनके स्वरों में प्रखरता है, और आधुनिक अनुचिन्तन है। युग सत्य का बोध परम्पराजन्य परिपाटी पर न होकर सहज रूपों को (आधुनिकतम युग के) प्रकट करता है। यही कारण है कि सस्ती रोमांटिक प्रेम सम्बन्धी भावनाएं उनकी कविता में न केवल निष्प्राण हो गयी हैं, अपितु उनका शव भी सड़ चुका है, प्राण प्रतिष्ठा का प्रश्न ही नहीं उठता। हां जो भी प्रेम की कोमल भावनाओं का अभिव्यंजन करने वाली कविताएँ हैं, वे अन्ततः वैयक्तिक चेतना का ही उद्‌बोधन करती हैं। यही कारण है कि प्रेम सम्बन्धी इनकी कविताएं सामाजिक मूल्यों से एकात्म्य नहीं कर पातीं और आज का पाठक भी इन कविताओं में रस नहीं ले पाता, क्योंकि अपने संस्कारों के वशीभूत होने के कारण वह इस नयी वैयक्तिक चेतना की उस प्रखरता को सहन नहीं कर पाता, जो आधुनिक बुद्धिवादी कवि का अनुचिन्तन है।* डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता समझने के लिए पूर्व संस्कारों की बलि देकर नवीन प्रबुद्ध दिशा पर खड़े होकर खुले मस्तिष्क से सोचना होगा, तभी उसको भाव भीनी सुगन्ध से मन आप्लावित हो पायेगा, अन्यथा सारा परिश्रम निष्फल होने पर व्यर्थ ही मन की थोथी घृणा बरस पड़ेगी। कवि की रचनाओं में प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है, किन्तु उसका प्रेम कोमल, मसृण नारी के प्रति नहीं है, प्रस्तर प्रतिमाओं के प्रति है, पीसा की 'अधीरा' मीनार की तरफ है और भग्न नारी की प्रस्तर मूर्ति के प्रति सहानुभूति है। 'सोफी से' कविता नारी-युवती-नारी के प्रति लिखी गयी है, पर उसमें वह चटपटापन नहीं है, जिसे रीतिकाल के कवियों का पाठक खोजना चाहता है।

सी० एच० सिसन तो अपनी 'युवती' कविता में नारी के मसृण सौन्दर्य को ही देखता है, पर यह सौन्दर्य, ऐसा सौन्दर्य है जो सुहाग-शैया पर अनेक रातें व्यतीत करने के बाद आंखों के आगे रेखाएँ खिंचा बैठा है, और अब सीटीबाज लड़कों के अनाकर्षण का सौन्दर्य है। पर डा० प्रतापनारायण टण्डन

---

* पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११

की मुखती मारी आकर्षण का उद्दाम प्रवाह है, और उसकी आँखों की नीली चमत्कार गहराई यौवन का मौन आमन्त्रण है; फिर भी कवि उसे बंधन ही मानता है, उसमें डूबना ही जानता है; यथा—

> हे गुकेशिनी !
> तुम्हारा आकर्षण एक बन्धन है,
> गहराई में सोया गुनगुना सागर
> चमकीले फेन का उद्दाम यौवन
> एक मौन आमन्त्रण
> एक निश्चल कम्पन
> दिव्य मौलिकता का प्रतीक
> मैं इसमें डूब रहा हूँ
> जैसे बिना पतवार की नाव । *

'पन्त' भी 'बाला' के यौवन को बन्धन ही मानते हैं, और प्रकृति प्रेम के आगे उसे त्याज्य समझते हैं †, पर वे अभी बचे हुए हैं उससे अलग हैं और 'द्रुमों की मृदु छाया' में बैठ कर आनन्द लीन है, अतः तटस्थ रूप से उसके गुण-अवगुण को समझ कर उससे किनारा काट लेते हैं, पर डा० प्रतापनारायण टण्डन तो उसमें डूब रहे हैं, उसी प्रकार जैसे भयंकर झंझाओं में बिना पतवार की नाव गहरे सागर में डूब रही हो । 'पन्त' की इस कविता में केवल पर्यवेक्षण है, जबकि डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता में भोगे हुए क्षण की अनुभूति है, ऐसा भोगा हुआ क्षण जो जीवन को जीने से मिलता है, पर्यवेक्षण से नहीं; इसीलिए इनकी अनुभूति 'पंत' से अधिक तीव्र है अधिक व्यञ्जनात्मक है, और पाठकों के हृदय से अधिक साधारणीकृत है । इसमें नये-नये उपमानों और प्रतीकों का चयन है, पर अनुभूति की गहनता के कारण वे इधर-उधर बिखरे दिखाई नहीं देते, अनुभूति के स्वच्छ जल में मोती बनकर चमक रहे हैं ।

---

* पपरीले प्रतिरूप : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २५

† छोड़ द्रुम की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया ।
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ।
भूल अभी से इस जग को ।
—सुमित्रानन्दन पंत

किन्तु कवि इस डूबने से भयभीत नहीं है, वह इस में डूबना चाहता है क्योंकि 'युवती' मौलिकता का प्रतीक है, ऐसी मौलिकता का प्रतीक है जो दिव्य है और शाश्वत है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता अबुद्ध पाठकों के लिए न होकर ऐसे प्रबुद्ध पाठकों के लिये है जो सार्वभौम स्तर पर साहित्यिक कृतियों को मान्यता देकर रचनात्मक दृष्टिकोण को विशदता प्रदान करते हैं। इनकी कविता न तो केवल शब्द-जाल ही है और न ही अर्थहीनता और दुरूहता (जो आज का कवि अपनी बपौती समझता है) का अलंकरण मात्र है, अपितु उनकी कविता में भोगे हुए क्षणों में मस्तिष्क में उत्पन्न अनुभूतियों का सीधे-सादे शब्दों में चित्रात्मक अथवा वर्णनात्मक रूप में अभिव्यञ्जन मात्र है। 'आश्चर्य' कविता इसी प्रकार के एक भोगे हुए क्षण में उत्पन्न अनुभूति की चित्रात्मक अभिव्यक्ति मात्र है; यथा—

ऊँची मीनार पर
चढ़ते भ्रमणार्थी
आश्चर्यानुभूति
सत्य
पीसा
खड़ी
तटस्थ।

कवि पीसा की मीनार पर 'भ्रमणार्थियों' को चढ़ने-उतरते और आश्चर्य से उसे घूरते हुए देखता है। सहसा उसके मस्तिष्क में एक विचार कौंध जाता है कि इतनी अजनबी निगाहों वाले यात्रियों के बीच पीसा तटस्थ कैसे रह पाती है। क्या सत्य ही वह तटस्थ है, यदि ऐसा है तो फिर टेढ़ी कैसे, अवश्य ही वह आँखें फाड़-फाड़ कर उन सबको देखना चाहती है।

इसी प्रकार का एक शब्द चित्र 'अपूर्व' कविता में देखिये—

नीची गहराइयाँ
ऊँची ऊँचाइयाँ
विराटता की प्रतीक
अनन्तता की सूचक

शून्य में खोयी सी
अन्धकार में चमकतीं
अपनी मृत्यु पर सिर धुनतीं
भविष्य को समर्पिता
अभिनन्दनों से पीड़िता
नष्ट सभ्यता में संवरीं
विलक्षण प्रस्तर मूर्तियां ।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की इस कविता में यदि मृत्युबोध है तो उन मूर्तियों के दमित आक्रोश का भी वर्णन है। पालजिन्सन की 'अस्थियों का मसिया' कविता में सबकुछ नष्ट हो गया है। राष्ट्रों की श्मशान भूमि में पत्थर भी शेष नहीं हैं। सबकुछ मृत्यु की गोद में जा चुका है, पर डा० प्रतापनारायण टण्डन की इस कविता में मूर्तियां मृत्यु पर सिर धुन रही हैं, पूर्णतया नष्ट नहीं हुई हैं। इनकी मूर्तियां अब भी अन्धकार में चमक रही हैं। पालजिन्सन तो मृत्यु से पराजित हो चुके हैं, अतः उनमें एक करुण क्रन्दन—मसिया (मातम) मात्र रह गया है। जबकि डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता में मृत्यु पर आक्रोश है, और उस पर विजय पाने की कामना है। मूर्तियां मरी नहीं हैं, अब भी विराटता की प्रतीक और अनन्तता की सूचक हैं।

पालजिन्सन तो भौतिकता के नष्ट हो जाने से, राष्ट्रों के ध्वंस हो जाने से, उस शान्ति को मौन बताते हुए कहते हैं—

सारी दुनिया पूरी तरह
जाने कहां खो चुकी है।

पर डा० प्रतापनारायण टण्डन भयंकर भौतिकता के बीच जिन्दगी की सांसें जीते रोम को देखकर—आध्यात्मिकता न होने के कारण कह उठते हैं—

एक कोई कमी
जो अब भी खटकती है
चुनौती देती है अब भी
मानवीय उपलब्धियों को
लगता है रोम, समूचा
कहीं खो सा गया है।

विश्व कविता में नयी चेतना के प्रति अटूट आस्था नये कवियों के विश्वास का प्रतीक है। नयी कविता की नयी चेतना के प्रतीक रूप सूर्य का प्रयोग प्रायः विश्व के सभी नवीन कवियों की कविता में प्राप्त होता है। किसी-किसी कवि ने सूर्य को (अस्त होते सूर्य को) पुरानी परम्परा और आस्था का प्रतीक माना है। उपमान के रूप में सूर्य का प्रयोग इस युग की कविता में बहुत हुआ है। पहले चाँद का प्रयोग बहुत हुआ था, लगता है सूर्य का प्रयोग उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ हो। डच कवि गैरिट आखटेवर्ग अपनी 'सन' कविता में सूर्य के माध्यम से बन्धनहीन नयी कविता का संकेत करता है कि जैसे सूर्य निरंकुश होकर ऊपर चढ़ता जाता है, नयी कविता भी उसी प्रकार बन्धनहीन बढ़ रही है—

> 'हमारे रक्त कोषों से उठ कर ......ओ वसन्त सूर्य
> नदी में दूर दौड़ता है बन्धन मुक्त।'

सुरेन्द्र ने 'कौन से संदर्भ दे दूँ' कविता-संग्रह की 'सूर्यास्थिया' कविता में मन्त्रकारों के चेतना-सूर्य के 'नकारो' को व्यक्त किया है।

> पंख लटके बकों ने
> ठूंठ डालों पर बैठ
> मुंह बाये
> भौचक, सूर्य देखा
> गर्दनें झुका लीं
> सूर्य को नकारा। *

किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सूर्य को आस्था और उत्साह के रूप में व्यक्त किया है। आस्था के जन्म और उत्साह के साथ आगे कदम बढ़ाने के भाव, सूर्य के तीन रूपों के माध्यम से चित्रित हुए हैं। 'तीन सूरज' कविता में उत्साह (सूर्य) के तीन रूप देखिये—

> ऊँचे पहाड़ों के पीछे से झांकता
> झुकता, छिपता, उगता,
> पीला सूरज

---

* विश्वकाव्य की रूपरेखा : भूमिका, विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ११६।

झीने बादलों की ओट में
रंग बिरंगे मखमली झरनों से
टकराता, लड़खड़ाता
गुलाबी सूरज
बर्फीली नदियों से खेलता
समुद्री तूफानों से अठखेलियाँ करता
अदम्य उत्साह का प्रतीक
सृजन का आधार
लाल सूरज। *

प्रकृति चित्रण—

भौतिकता की बौद्धिक कुण्ठा से ऊब कर मनुष्य जब शान्ति की खोज में आगे बढ़ता है तो प्रकृति ही उसे अपनी पावन गोद में विश्राम देकर, दुलार करती है। आधुनिक वैज्ञानिक जगत में भटकता हुआ मनुष्य का अकेलापन प्रकृति की विराटता में भी तब सूनापन ही महसूस करता है और उसकी प्रतिच्छाया मे भी अपनी अनुभूतियाँ खोजने लगता है। वह प्रकृति को देखता है, वहाँ शान्ति पाता है, पर अपने भटकते मन को सदा के लिए उसमें लिप्त नहीं कर पाता! बौद्धिक जगत की विकृतियाँ वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़तीं, फलतः प्रकृति भी उन्हीं का प्रतिबिम्ब लगती है। नयी कविता का कवि प्रकृति के विविध रूपों से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके भी उनसे तादात्म्य नहीं हो पाता—बौद्धिक कुण्ठा उसे वहाँ भी आ घेरती है। कवि का भावुक मन प्रकृति के क्रोड़ में क्रीड़ा करता है, पर फिर भटक कर वहीं पहुँच जाता है। कीर्ति चौधरी की 'पंख फैलाए' कविता इसका प्रमाण है, कुछ अंश देखिये—

यह अजब सौन्दर्य
केवल एक क्षण का
उन्हें शायद

* पथरीले प्रतिरूप : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २८।

वे कि जो हैं कर्मरत
चलते सतत्
इस यात्रा में एक
नहीं जो आंख भर कर देख पाये
धरा पर बिखरा विपुल सौन्दर्य *

किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता के प्रकृति चित्र इस प्रका के स्तर से काफी सीमा तक अनछुए हैं। इनमे प्रकृति के प्रति राग भी है औ अनुराग भी है। उसके स्वच्छ और निर्मल चित्र भी उतरे हैं और उनमे उनक वैयक्तिक अनुभूतियाँ—व्यष्टि मे समग्रता के दर्शन करने वाली भावनाएँ—अ तीव्रता के साथ चित्रित हुई हैं। अपनी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के विषय उन्होने स्वयं कहा है—"इस संग्रह में प्रकृति के विविध रूपात्मक चित्र भी हैं देश-प्रदेश की विशेषता के कारण इनमे एक प्रकार का विषयगत अनछुआप भी मिलेगा। प्रकृति के प्रति अनुराग और तादात्म्य की नयी भाव-भूमि इन अभिव्यक्त है। दुरूह वाग्जाल प्रकृति की रहस्यमयता का सूचन करता है। आ निक बौद्धिकता का नवीन भाव-बोध इनके सन्दर्भ में भी स्पष्ट है। प्रकृति अचेतन सत्ता चेतना की जिन सतहों को खोलती है, वह उसकी सोद्देश्यता अस्तित्ववान प्रमाण है..........।"†

डा० प्रतापनारायण टण्डन की प्रकृति उनकी विशेष मनःस्थिति की प्रति भी है। कवि उदास है, उसकी मनोदशा प्रातःकालीन वैभव में भी उदासी वातावरण का ही अनुभव करती है; इस उदास मनःस्थिति का एक चि देखिये—

ठण्डी ओस बरसती
चुप-चुप आंसू पी लो

दूर छिपता सूर्य, उगता चांद
नक्षत्र गण

---

* तीसरा सप्तक : सं० अज्ञेय, पृष्ठ ११३
† पथरीले प्रतिरूप (भूमिका) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १५

इस पल
मैं एकाकी मौन हो।*

इसी प्रकार सन्ध्या का चित्र देखिये, जिसमें रात्रि को एक अभिसारिका के रूप में सन्ध्या के वातावरण में चित्रित किया गया है, जो रीतिकालीन परम्परा की याद को अनायास ही ताजा कर देती है ; यथा—

दिन ढलने की आभा
डूबते सूर्य की रंगीन किरणें
सतरंगी छाया छवि सुहानी
• • •
अनजान काली छाया जैसी
प्रस्तुत होती निशा, रहस्यमयी अभिसारिका
छोटी कोमल टहनियों पर झूलती
सरसरी भरी धीमी आवाजें
जैसे निशिगन्धा की लहरियाँ
वायु जल पर बिखरतीं

प्रकृति के माध्यम से वातावरण का सशक्त चित्रण देखिये—

सूना एकान्त
मौन चेतना के स्वर
छाया रूप
स्थिर।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की प्रकृति चुलबुली अथवा आह्लादमयी नहीं है, उसमें जीवन है, पर मौन, शान्त, स्तब्ध असीम आनन्द में मग्न उस रहस्यात्मक सत्य के अवबोधन में लीन जो सदा से सभी के द्वारा अनुसन्धेय रहा है। बसन्त सबमें आल्हाद लाता है, रोमांचित कर देता है और प्रकृति भी झूम-झूम कर कोयल के माध्यम से गा उठती है। उनकी प्रकृति भी बसन्त में रोमांचित होती अवश्य है, पर वातावरण ऐसा है कि उसका रोमांच

* पथरीले प्रतिरूप: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २०।

ध्यान्त में खो जाता है। 'पीलिमा' कविता में वासन्ती प्रकृति का एक सहज शब्द-चित्र देखिये—

पीलिमा
स्वर्णिम वासन्ती

नये पौंधे सी लहराती
अधखिली कोंपल सी मुस्कुराती
कोमल त्वचा पंखों को सहलाती
पीलिमा वासन्ती

हिम जड़ित सरिता का सान्निध्य
रुपहली हवा के अलमस्त झोंकों से रोमांचित
अनावृत किरणों से रंजित
पीलिमा वासन्ती।

कहीं-कहीं शुद्ध प्रकृति-चित्र बहुत ही जबर्दस्त बन गये हैं, जो थोड़े ही शब्दों में अनेक भावों और अर्थों को व्यक्त करते हैं और एक सुस्पष्ट चित्र आँखों के सामने ला देते हैं—ऐसे चित्र जो आकार क्षण भर को झलक दिखाकर तिरोहित होने वाले नहीं होते, अपने मे अनुभूति और बौद्धिक अनुगूंज को संजोये रहते हैं। 'आग्नेय स्वप्न' कविता में इसी प्रकार का एक जबर्दस्त प्रकृति चित्र है—

टेसुई सूर्यास्त
कोमल पुष्पावलियाँ
सुनहली धूप को
निचोड़ती हुई

अन्तरिक्षीय सीमाओं को नापते
पंक्तिबद्ध पक्षी दल
शून्य के प्रेतों को चीरते हुए
अनन्त की ओर अग्रसरित

(रोम बाई माइट, फ्लोरेंस) को कविता के नाम पर नयी और समृद्ध उपलब्धि कहने मे हिचक पैदा कराती हैं।

किन्तु सत्य तो यह है कि डा० प्रतापनारायण टण्डन ने कविता को मनोरंजन का साधन नहीं माना है, यही कारण है कि उनकी कविता मे बौद्धिकता का पार्याप्त समावेश हो गया है। फलतः सन्तुलन समाप्त होकर कविता में नीरसता, दुरूहता और खुरदरापन बिना प्रयत्न किये ही आ जाता है। अति *वैयक्तिक अनुभूतियों की भारवाहक होने के कारण कविता अतिरिक्त रूप से* बोझिल लगती है (पदार्थ मे नहीं)।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता, कविता के क्षेत्र में नई प्रक्रिया का सर्जन करती है। इसके रूपात्मक बोध नवीन है और भावानुभूतियों मे अनछुआपन है। नयी कविता ने तो शब्दो को नये वस्त्र ही पहनाये, पर डा० प्रतापनारायण टण्डन ने शब्दों के संस्कार ही बदल दिये हैं। शब्द नये न होने पर भी नये लगते हैं—शरीर पुराना है, पर भाव, अर्थ और चेतना सर्वथा नवीन है। उन्होंने न तो नये कवियो की तरह शब्दों का अपव्यय किया है और न भाषा पर किसी अन्य भाषा के प्रभाव को चढाया है, उनकी भाषा स्वच्छन्द गति से बहती जाती है और अनायास ही जो शब्द उससे मित्रता कर लेते हैं, उन्हे वह अपने साथ ले चलने मे लज्जान्वित नहीं होती। उनकी कविता में शब्द मित्र हैं, स्वामी नहीं। वैयक्तिक अनुभूतियों की तरलता ही मुख्य है। रैमी दे गूरमां की तरह उन्होंने भी शब्दों का परम्परा निहित छिलका उतार कर उसे सद्यता से भावित कर दिया है। यही कारण है कि उनकी कविता मे सहज जीवन की अनुभूतिया हैं, संगीत, लय, छन्द और दर्शन की महिमामयी गरिमा से रहित। बौद्धिक युग की संवेदनहीनता, जो पाठकों मे आक्रोश और वितृष्णा को जन्म देती है, इनमे नही है। उनकी कविता में यथार्थ अधिक सजीव, अधिक उदात्त और अधिक काव्योपलब्धि परक है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविता ने अपनी उपलब्धियों से हिन्दी साहित्य की नई कविता को नये भाव, नयी चेतना, नयी शिल्प कला, नया बोध नये बिम्ब एवं नवीन रचना-प्रक्रियागत आयाम दिये हैं। जिससे नयी कविता का रूप न केवल समुन्नत ही हुआ है, अपितु परिष्कृत भी हुआ है।

अध्याय : ६

समालोचना साहित्य का नवीन आलोक

आधुनिक हिन्दी समीक्षा-पद्धति

पिछले अध्यायों में उपन्यास, कहानी, नाटक और कविता के क्षेत्र में डा॰ प्रतापनारायण टण्डन की उपलब्धियाँ देखने पर सहज ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा का अनुमान हो सकता है। उपर्युक्त साहित्यिक विधाएँ सर्जनात्मक साहित्य (Creative writing) की श्रेणी में आती हैं, अतः इनकी पूर्णताः तब तक अपूर्ण ही समझी जायगी, जब तक सर्जनात्मक साहित्य की अन्तिम मुख्य विधा—निबन्ध अथवा समालोचना सम्बन्धी उनके साहित्य का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर लिया जाता। समालोचना साहित्य-विधा के अन्तर्गत अब तक डा॰ प्रतापनारायण टण्डन की चार पुस्तकें (१) भूषण—टीका (२) आधुनिक साहित्य (३) हिन्दी साहित्यः पिछला दशक और (४) हिन्दी उपन्यास कला प्रकाशित हो चुकी है। 'आधुनिक साहित्य' और 'हिन्दी साहित्यः पिछला दशक' में यद्यपि निबन्ध हैं, किन्तु उनका विषय आलोचना से सम्बद्ध होने के कारण उन्हें समालोचना के अन्तर्गत ही रखा गया है किन्तु यह समालोचना, सिद्धान्त रूप में नवीन स्थापनाओं की धोषक है, एतदर्थ इसे सर्जनात्मक साहित्य की कोटि के अन्तर्गत रखा गया है। हिन्दी उपन्यास कला तो उपन्यास-कला का सैद्धान्तिक विवेचन ही है, अतः इनके स्वरूप संगठन में ऐसे अन्तः सूत्र विद्यमान हैं, जिनके कारण इनकी उदात्त 'सुस्थिति पारस्परिक एकता में ही संग्रथित रहती है। इससे पूर्व, कि हम डा॰ प्रतापनारायण टण्डन की उपर्युक्त पुस्तकों

की समीक्षा करें, हिन्दी समालोचना साहित्य के विकास पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाल देना उचित समझते हैं, जिससे पृष्ठभूमि की अवधारणा हो सके।

आधुनिक हिन्दी समालोचना का विकास—

हिन्दी समालोचना का आविर्भाव यों तो रीतिकाल से माना जाता है, परन्तु आधुनिक युग में इसके सम्वाहकों में जिन लोगों के नाम विशेष उल्लेख्य हैं, वे मुन्शी सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदलमिश्र, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह, और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य के क्षेत्र में जो प्रयत्न किये, उससे हिन्दी के खड़ी बोली रूप को स्थिरता प्राप्त हुई। प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, और बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों ने भी इस गद्य प्रवर्तन के युग में उल्लेखनीय योग दिया। यद्यपि इस प्रारम्भिक काल में क्रियात्मक साहित्य के क्षेत्र में नाटक, निबन्ध, उपन्यासादि सर्जित हुए, पर हिन्दी-समालोचना का इनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है; दूसरे शब्दों में विस्तृत आलोचना इस युग का विषय नहीं रही। इसका आरम्भ वस्तुतः द्विवेदी युग में ही हुआ।

द्विवेदी युग मे भी यद्यपि समालोचना में वह प्रौढ़ि नहीं आ सकी, जो उसके उत्तरवर्ती शुक्ल युग में स्वभावतः प्रदर्शित हुई, किन्तु यह भी सत्य है कि इस युग में आधुनिक हिन्दी समालोचना के संवर्धन के सभी लक्षण क्रमशः संगठित होने लगे थे। समालोचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग की सृजनात्मक प्रेरणा संजीवन शील विधि के द्वारा देश में राष्ट्रीय जागरण की स्वर लहरी का प्रसार कर उसे एक निश्चित मार्गदर्शन कराना चाहती थी, तो समालोचनात्मक प्रवृत्ति भी भारतीय काव्य शास्त्र के अधिक अनुरूप बन कर साहित्य के सदुद्देश्य को अधिक से अधिक निकटवर्ती भावना से व्यक्त करने की आकां- [illegible] थी। इस युग में समालोचना की अनेक प्रवृतियां संवर्धित हुईं, किन्तु हम [illegible] अनुकूल केवल दो प्रवृतियों—ऐतिहासिक समालोचना की प्रवृत्ति और [illegible] (शास्त्रीय) समालोचना पद्धति—के विकास पर दृष्टिपात करेंगे।

हिन्दी में ऐतिहासिक समालोचना पद्धति के विकस में योग देने वालों में गार्सा द तासी, ठाकुर शिवसिंह सेंगर, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० उदयनारायण तिवारी, डा० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, और प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि हैं। इनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे समीक्षकों की है, जिन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य, उसके किसी अंग अथवा प्रवृत्ति के इतिहासों में एक सुनिश्चित दृष्टिकोण का अभाव था, किन्तु बाद में यह अभाव तो दूर हुआ ही वर्गीकरण और विश्लेषण की की दृष्टि से भी वैज्ञानिकता का समावेश होता गया।

गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ला लितेराच्यूर एन्दुई ऐन्दुस्तानी' शीर्षक से हिन्दी साहित्य के इतिहास में योग देने वाले लगभग ८० कवियों की वर्ण क्रम से सूची दी है। इसी की प्रेरणा पर शिवसिंह 'सेंगर ने शिव सिंह सरोज, एक ऐतिहासिक विवरण–मे ऐसे एक हजार कवियो का परिचय दिया, जिनकी पहले कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नही थी। इसी से मिलता जुलता सन् १८८६ मे डा० ग्रियर्सन को 'माडर्न वरनाक्यूलर लिट्रेचर आफ नार्दन हिन्दुस्तान' निकला, इसमे भी अन्य पूर्व इतिहासो की तरह ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का कोई पुष्ट रूप नही मिलता। काशी नागरी प्रचारणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्टों (आठ भागों में प्रकाशित) में बहुत से परिचित-अपरिचित कवियों के विषय मे प्रामाणिक जानकारी दी गई, किन्तु मिश्रबन्धुओं (पं० गणेशबिहारी मिश्र, पं० श्यामबिहारी मिश्र और पं० शुकदेवबिहारी मिश्र) के 'मिश्रबन्धु विनोद' में पहली बार साहित्यिक इतिहास मिलता है।

ऐतिहासिक समीक्षा क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि पं० रामचन्द्र शुक्ल की है। इनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' केवल एक कवि या लेखक-वृत्त-संग्रह मात्र ही नहीं है, हिन्दी साहित्य के इतिहास का व्यवस्थित काल विभाजन भी है। काल विभाजन मे यथा सम्भव प्रवृत्तियों और साहित्यांगों का ध्यान रखा गया है। साथ ही उन्होंने यह भी निर्देश किया कि साहित्य का कौन सा स्वरूप समाज के लिए कल्याणकारी है। 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (डा० श्यामसुन्दर दास), 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' (डा० सूर्यकान्त

लिया है * डा० श्यामसुन्दर दास की समीक्षा में न तो शास्त्रीय अनुगमन के प्रति ही पूर्ण आग्रह दिखायी देता है और न नवीनता को पूर्ण ग्राह्य बताया गया है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि डा० दास ने न केवल सैद्धांतिक क्षेत्र में ही, वरन् व्यावहारिक समीक्षा क्षेत्र में भी अपने इसी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यद्यपि इनकी कृतियों में संकलन की मात्रा भी कम नहीं रही, फिर भी हिन्दी समीक्षा की दरिद्रता को दूर करने में 'साहित्यालोचन' सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से हिन्दी समालोचना का विकास-काल प्रारम्भ होता है। जब तक महावीरप्रसाद द्विवेदी जी सरस्वती का संपादन करते रहे, उनसे साहित्य का नेतृत्व निर्भीकता पूर्वक होता गया, पर सन् १६२० से संपादन कार्य से विराम लेने पर साहित्य समालोचना के क्षेत्र में उनका प्रभाव शनैः शनैः शिथिल पड़ने लगा। शुक्ल जी ने तब अपने नवीन चिन्तन और गम्भीर अध्ययन से साहित्य परीक्षण को नयी दृष्टि दी। उन्होंने सैद्धान्तिक समीक्षा के क्षेत्र में भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के अनेक सिद्धान्तों की व्यवस्था के साथ व्यावहारिक समीक्षा क्षेत्र में भी एक आदर्श प्रस्तुत किया। उनकी समीक्षा 'लोक कल्याण' की उपयोगितावादी आधार भूमि पर संस्थित है। रस सिद्धान्त के हिन्दी पोषकों में सबसे उल्लेख्य नाम पं० रामचन्द्र शुक्ल का है। उन्होंने न केवल हिन्दी साहित्य शास्त्र की परम्परा में रस सिद्धांत का विकास किया वरन् रस सिद्धांत की नवीन मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से व्याख्या करके काव्य और साहित्य के एक व्यापक परीक्षक मानदण्ड के विभिन्न रूप में, विभिन्न रसदशाओं आदि की प्रासंगिक विवेचना करते हुए, इसका सम्पूर्णता के साथ पुष्टिकरण भी किया है। शुक्ल जी रस को काव्य का सर्वस्व मानते थे। पूर्ण रसबोध के लिये उन्होंने अभिव्यञ्जित भाव में लीनता की स्थिति को आवश्यक बनाया है। †

पं० रामचन्द्र शुक्ल का महत्व हिन्दी समीक्षा के इतिहास में इस कारण है कि उन्होंने प्राचीन भारतीय समीक्षात्मक सिद्धान्तों को आधुनिक चिन्तन से

---

* साहित्यलोचन : डा० श्यामसुन्दर दास, भूमिका।

† काव्य में रहस्यवाद : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १०१।

संयुक्त करके उनका निरूपण किया तथा व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उनका प्रयोग किया। *

शुक्ल युग के प्रमुख आलोचक डा० गुलाबराय ने अपने जीवन काल में द्विवेदी युग से अद्यावधि चलने वाली साहित्य-धाराओं का अत्यधिक मनस्विता से अवगाहन किया है और आधुनिक युग की प्रायः समस्त साहित्य-प्रवृत्तियों पर एक तटस्थ नीतिपरक अध्येता के रूप में अपनी गम्भीर गवेषणाएं प्रस्तुत की हैं। † डा० गुलाबराय ने काव्य की पूर्णता के लिए पाठक को भी कवि के समान ही आवश्यक माना है। कवि कथन की सार्थकता पाठक द्वारा उसके भावात्मक साम्य में ही है। कवि कार्य में कल्पना का प्रयोग उनके अनुसार स्वाभाविक और अनिवार्य है। स्वर्ग के कल्प वृक्ष की भाँति कल्पना मनचाही परिस्थिति उत्पन्न कर देती है। कल्पना द्वारा उपस्थित किये हुए चित्र भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल के हो सकते हैं। ‡

पं० सीताराम चतुर्वेदी कृत 'समीक्षा शास्त्र' नामक वृहत् ग्रन्थ का उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है, जिसमें संसार भर के साहित्य रूपों, समीक्षा सिद्धान्तों प्रवृत्तियों, प्रयोगों और वादों का सविस्तार ऐतिहासिक तथा विवेचनात्मक निरूपण, परीक्षण और प्रतिपादन किया गया है। एक ही ग्रंथ में (विषय विस्तार की दृष्टि से) इतनी अधिक जानकारी हिन्दी में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। लक्ष्मीनारायण सुधांशु कृत 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', तथा 'जीवन के तत्व तथा काव्य के सिद्धान्त' के प्रकाशन से संस्कृत साहित्य शास्त्रीय सहजानुभूति का तत्व, अभिव्यञ्जना और कला, रसानुभूति, अलंकार और प्रभाव, प्रतीक और उपमान अमूर्त का मूर्त विधान तथा विशिष्ट अभिव्यञ्जना प्रवृत्तियों का विवेचन तथा भाव विन्यास और जीवन का वातावरण और

---

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ (द्वितीय खण्ड) : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८१३।

† आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास : डा० वेंकट शर्मा पृष्ठ २९४।

‡ सिद्धान्त और अध्ययन : डा० गुलाबराय पृष्ठ, १०७।

काव्य प्रवृत्ति, आत्मभाव और काव्य विधान, मन का बोध और रस काव्य का अर्थ बोध, काव्य की प्रेरणा-शक्ति लय और छन्द, ग्राम्य गीत का मर्म, कला गीत की प्रवृत्तियाँ तथा अन्तःदर्शन आदि पर विचार हो गया है, जो सुधांशु जी की गंभीर और उद्भावना प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यद्यपि समीक्षा में शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाया है, परन्तु उसमें किसी प्रकार की रूढ़िवादिता नहीं है। इनकी वैचारिक पद्धति बहुत विस्तृत है। द्विवेदी जी ने वैचारिक वाद-विवाद से परे स्वस्थ और गम्भीर साहित्य चिन्तन की धारा को वेग दिया। इनकी समीक्षा पद्धति गवेषणात्मक है। द्विवेदी जी की कुछ पुस्तकें उनके वैचारिक और वैयक्तिक कोटि के निबन्धों का संग्रह हैं। इन निबन्धों से उनके साहित्य और समीक्षा विषयक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है। वे मानवतावादी विचारधारा के हैं। उन्होंने किसी भी विषय पर लिखते समय साहित्यकार के दायित्व पर सदैव दृष्टि रखी है। द्विवेदी जी का यह विचार है कि साहित्य का विकास मानव समाज का विकास है। अतः उसका प्रमुख दायित्व भी मानव समाज के प्रति ही है, और इसका निर्वाह साहित्यकार का प्राथमिक कर्त्तव्य है।*

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की समीक्षा-शैली पर पूर्ववर्ती समीक्षकों, विशेष रूप से लाला भगवानदीन तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। स्वतंत्र समीक्षात्मक कृतियों में 'बिहारी की वाग्विभूति', 'वाङ्मय विमर्श', 'बिहारी', 'समसामयिक साहित्य' तथा 'भूषण' आदि है। इनसे उनकी उच्चकोटि की अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

इसी समालोचना परम्परा में डा० केशरीनारायण शुक्ल, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० कन्हैयालाल सहल, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० श्रीकृष्णलाल, डा० भगीरथ मिश्र, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, डा० सोमनाथ गुप्त, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० विजयेन्द्र स्नातक, पं० रामदहिन मिश्र आदि प्रमुख

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, (द्वितीय खण्ड) डा० प्रतापनारायण टण्डन पृष्ठ ८१९ से उद्धृत।

है। डा० दीनदयालु जी गुप्त के 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में अष्टछाप पर समीक्षा है; जिसमें उनका समीक्षक रूप प्रबुद्ध स्तर पर झांक रहा है।

शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग में समालोचना का प्रसार काव्य क्षेत्र तक ही रहा था; दूसरे शब्दों में मूल प्रेरक काव्य शास्त्र ही रहा जिसका उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों पर पूर्ण प्रभाव है। किन्तु प्रसारकाल में उपन्यास, नाटक, कहानी पर भी सैद्धान्तिक निरूपण हुआ। महादेवी वर्मा ने सौन्दर्य मूलक दृष्टि विधान और तत्व चिन्तन पद्धति को लेकर साहित्य समालोचना की। वैसे तो इनका प्रमुख क्षेत्र काव्य सृजन है, पर अपने काव्य ग्रंथो की भूमिकाओं मे उन्होंने साहित्य के सनातन और चिरन्तन सत्यों का विवेचन आधुनिक युग प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए अत्यन्त भाव प्रवण और गम्भीर शैली मे किया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी को आधुनिक हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कराने मे उनकी महत्व पूर्ण कृति 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' को सर्व प्रथम स्थान दिया जा सकता है। इससे उनकी सुलझी हुई दृष्टि और स्वच्छन्दतावादी विचारणा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। 'नया साहित्य : नये प्रश्न' तक की रचनाओं से उनकी विकासमान प्रतिभा और तत्वाभिनिवेशी विवेक शक्ति सहज ग्राह्य हो जाती है। यद्यपि उन्होंने हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा, फिर भी उनकी कृतियों में इसके उपकरण इतने अधिक गुण और परिमाण में व्याप्त हैं कि एक तत्वान्वेषी पाठक को उनके अन्तर्गत इतिहास के कलेवर में आने वाली लगभग समस्त सामग्री का विवेचनात्मक स्वरूप उपलब्ध हो जाता है।

सौन्दर्य मूलक स्वच्छन्दतावादी विचारधारा तथा रसवादी परम्परा के समन्वयकारी समालोचक डा० नगेन्द्र का क्षेत्र मुख्यतः आधुनिक साहित्य ही रहा है, पर उन्होंने 'रीतिकाल की भूमिका' प्रस्तुत करके 'देव' की कविता का समीक्षण भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया है। उनका गम्भीर से गम्भीर विषय का विवेचन भी स्पष्ट और शास्त्र सम्मत प्रणाली मे होता है।

वस्तुतः सौन्दर्यमूलक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से हिन्दी साहित्य एक प्रकार की समन्वयपूर्ण दृष्टि उपलब्ध कर सका है। इसमें उसका विशुद्ध रसात्मक रूप सुचारु रूप से विवेचित हुआ है। प्रसार काल के द्वितीय (आधुनिक) विकास

से मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का विशेष प्रयोग रहा है। इलाचन्द्र
और अज्ञेय तक ने इसका समर्थन किया। वैज्ञानिक विषयों के
कहानी, कला, सौन्दर्य और मनोविज्ञान पर ही अधिक विवे
पर इनका समालोचना क्षेत्र में योगदान साहित्यालोचन को प्र
में असमर्थ रहा।* इलाचन्द्र जोशी कथाकार होने के नाते
भी मानव-मनोविश्लेषण की अन्तरन्वेषणा की प्रवृत्ति को नहीं
समालोचनात्मक निबन्धों के संग्रह 'साहित्य सर्जना', 'विवे
'साहित्य संतरण', 'साहित्य-चिन्तन' और 'देखा-परखा' आ
विषय वाद-विश्लेषण और उपन्यास साहित्य है, जिसमें
भारतीय भाषाओं तथा पाश्चात्य साहित्य के लेखकों का भी
हुआ है। उन्होंने यथार्थवाद को उपन्यास कला के सौष्ठव
समालोचनात्मक निबन्धों के संकलन–'त्रिशंकु' के
हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय भी जोशी जी की तरह
के शुरू से ही यह मान कर चलते हैं कि 'आलोचना में
अतः उनके निबन्धों में अपेक्षित मौलिकता की न्यूनता
लेखक की स्वीकृति के अनुसार स्वाभाविक ही है। कि
इन निबन्धों के द्वारा अज्ञेय ने हिन्दी के साहित्यकारों
मनन और चिन्तन करने योग्य प्रचुर सामग्री दी है।
प्रगतिवादी समालोचकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते
की समस्याएँ, 'प्रगति और परम्परा' तथा 'संस्कृति
का उद्देश्य और उसकी परम्परा आदि का विवेचन उ
से किया है। निबन्धों में खंडन-मंडन और वाद-विवा
साहित्य समीक्षा की अनुभूति पूर्ण व्यञ्जना नहीं है।
की 'हिन्दी नई कहानी की कहानी' में हिन्दी कहानी
उसका वैज्ञानिक आधार सुनिश्चित एवं संयोजित

* आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना

पाल, इलाचन्द्र जोशी आदि के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। डा० विनयमोहन शर्मा और नलिन विलोचन शर्मा की समालोचना-शैली संयत और विवेकपूर्ण है। डा० देवराज के समीक्षात्मक निबन्ध प्रसारकाल के उत्तरवर्ती समालोचकों की तुलना में अधिक सयमित, गम्भीर, सुस्पष्ट और विवेकपूर्ण हैं। परन्तु इनके निबन्ध अल्पमात्री होने के कारण समालोचना क्षेत्र पर अधिक प्रकाश नहीं डालते, फिर भी इनमें 'वाद' की मान्यताओं के संकीर्ण क्षेत्र को छोड़कर समालोचना को वास्तविक अर्थों में यथोचित प्रसार मिला है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना के विकास को औपचारिक दृष्टि से देखने से यह स्पष्ट है कि प्रायः अर्ध-शताब्दि में उसने जो प्रगति की है, वह यथेष्ट सन्तोषजनक है; किन्तु अब भी इसके ऊपर बहुत कुछ कहना बाकी है। प्रगति के मार्ग की बाधाएँ, जिन्होंने समय-समय पर गतिरोध को उत्पन्न किया, यद्यपि हमारे सुधी समालोचकों ने उनका निष्क्रमण किया, फिर भी उनकी गति साहित्य की एक विधा काव्य तक मूल रूप में बढ़ती गयी। इस पिछले दशक में साहित्य की अन्य विधाओं—कहानी, नाटक, एकांकी, और उपन्यास आदि पर भी लिखा गया, पर उस रूप में नहीं लिखा गया, जिसकी हिन्दी साहित्य—समालोचना को अपेक्षा थी। निबन्धों के रूप में तो यह आलोचना काफी प्राप्त होती है, किन्तु प्रबन्ध रूप में उपन्यास अथवा कहानी कला का शास्त्रीय विवेचन अनुपलब्ध ही रहा। डा० सुरेश सिन्हा ने 'हिन्दी उपन्यासों का विकासात्मक अध्ययन' अथवा डा० रणवीर रांग्रा कृत 'उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण का विकास' आदि पुस्तकें आयी अवश्य, किंतु इनमें उपन्यास के विकासात्मक रूप पर ही विशेष बल दिया गया है। इसी प्रकार डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'हिन्दी नई कहानी की कहानी' और 'हिन्दी कहानी की शिल्प विधि का विकास' समालोचना-ग्रंथ भी उस अभाव की पूर्ति नहीं करते—इनमें भी विकास को प्रमुखता दी गई है।

समालोचना साहित्य की नवीन उपलब्धियाँ—

इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम डा० प्रतापनारायण टण्डन द्वारा 'हिन्दी उपन्यास कला' पुस्तक प्रस्तुत कर उठाया गया है। 'हिन्दी उपन्यास कला' ने

आधुनिक हिन्दी में शास्त्रीय समालोचना क्षेत्र के एक अभाव (उपन्यास पर शास्त्रीय विवेचन) को पूर्ण किया है। यह पुस्तक लेखक की हिन्दी समीक्षा क्षेत्र में अनुपम उपलब्धि है।

अब हम डा० प्रतापनारायण टण्डन की समालोचना क्षेत्रीय उपलब्धियों पर एक दृष्टि डाल कर हिन्दी समालोचना के इतिहास को देन और मूल्यांकन का अवलोकन करेंगे।

हिन्दी में गतिरोध और सृजनात्मक ह्रास पर विचार—

डा० प्रतापनारायण टण्डन के 'आधुनिक साहित्य' में हिन्दी साहित्य में गतिरोध के प्रश्न और साहित्यकार के सर्जनात्मक ह्रास के कारणों पर विचार किया गया है। विद्वान लेखक ने निवेदन में स्पष्ट कर दिया है कि उसने अपनी कतिपय साहित्यिक मान्यताएँ स्थापित की हैं, जो साहित्य सम्बन्धी उसके दृष्टिकोण का परिचय देती हैं। * साहित्य किसी साहित्यकार-विशेष की नहीं बपौती है, अतः उस पर यदि कोई अपना पुस्तैनी अधिकार समझ कर अपने ही राग अलापता है और जब कोई उस पर ध्यान नहीं देता तो 'गतिरोध' की आवाज उठाई जाती है। लेखक ने पहले कुछ प्रश्न उठा लिये हैं फिर उनका उत्तर दिया है। डा० प्रतापनारायण टण्डन के अनुसार गतिरोध हिन्दी साहित्य में आया नहीं है, केवल इसकी आवाज बुलन्द कर दी गयी है। वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रत्येक विकासशील युग का मनुष्य साहित्य में अपने युग का प्रतिबिम्ब देखना चाहता है। यदि युगानुकूल तथ्यों का तत्कालीन साहित्य दर्पण नहीं बन पाता, तो उसे अतिरंजना की कहानी समझा जाने लगता है। संस्कृत भाषा को 'मृत भाषा' घोषित किये जाने के भी यही कारण थे। उसके ठेकेदारों (साहित्यकारों) ने संस्कृत को व्याकरण के नियमों में इतना जकड़ दिया था कि आगामी समय की विकसित मान्यताएँ उसमें स्थान नहीं पा सकीं, फलतः उसके नवीन रूपों में नई भाषाएँ उद्भूत हो गयीं। यही दशा हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा के क्षेत्र में हुई। काव्य में छायावादी युग अपनी पूर्ण प्रभावी

---

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, निवेदन।

और रंग-रंगीले वातवरण को लेकर प्रकाशवान हो रहा था, किन्तु एक समय आया, जब उसे हटा कर नवीन प्रगतिवादी काव्य की सर्जना होने लगी। कारण "छायावादी कविता मे स्थायित्व के गुणों का अभाव था, यदि छायावादी कवि अपनी कविता को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने में सतत् प्रयत्न शील रहते तो इसके 'आउट आफ डेट' होने का कोई कारण नही था। दूसरे, आज के संघर्षमय संसार का मनुष्य छायावादी विचारधारा से सन्तुष्ट नहीं होता। विपत्तियों से जीवन घिरा रहने पर भी उसे मात्र पलायनवाद नही सूझता, वह कष्टों से जूझना चाहता है और उसे इसके लिए प्रेरणा देने को एक स्वस्थ ठोस जीवन, दर्शन की आवश्यकता है। छायावादी कवि मानव समाज की आधुनिक समस्याओं के लिए कोई भी मार्ग निकालने को सचेष्ट नही हुआ, उसकी चेतना इस दिशा मे सुप्त ही रही, फलत: साहित्य के क्षेत्र में ऐसे लोगों का आगमन हुआ जो मार्क्स के भौतिकवाद से प्रभावित थे—और प्रगतिवाद का जन्म हुआ।"*

यही कारण प्रेमचन्द के साहित्य पर भी खोजा जा सकता है। उपन्यास क्षेत्र में उन्होंने अपने उपन्यासों मे एक विशेष प्रकार की कथावस्तु का प्रयोग किया—जो राजनीति एवं तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित थी। फलत: अब उसके पैर उखड़ रहे हैं।

लेखक पर विदेशी साहित्य का प्रभाव सीमा से अधिक है, यही कारण है कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कृतियों का मूल्यांकन प्रारम्भ कर दिया है। उपन्यास के सम्बन्ध में ई० एम० फार्स्टर के विचारों† और हेनरी जेम्स के विचारों‡ को, एक-एक निबन्ध के रूप मे उद्धृत करना हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। गतिरोध के प्रश्न पर विचार करते समय भी डा० प्रताप-नारायण टण्डन कहते हैं—'हिन्दी साहित्य में गतिरोध का एक और कारण है। हमारे आधुनिक युग की कोई भी कृति उस स्टैण्डर्ड तक नहीं पहुँच पाई, जो

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ९०७।
† आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १८
‡ वही, पृष्ठ ३१

अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के मापदण्ड के अनुसार प्रथम श्रेणी की हो। × × आज जब विश्व की अनेक भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन तथा रशियन आदि—के साहित्य अत्यन्त समृद्धावस्था में हैं, तब जो पिछड़ी भाषाएं—हिन्दी भी इससे मुक्त नहीं है—वे इन भाषाओं के साहित्यकारों की मान्यताएँ ज्यों का त्यों स्वीकार करती हैं, यह एक प्रकार का 'इनफीरियारिटी कांप्लेक्स' है, हीनता बुद्धि का साहित्यिक निदर्शन है।*

किसी साहित्यकार की सृजन-शक्ति कुण्ठित पड़ने के कारणों पर विचार करते समय डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उन प्रश्नों को उठाया है जो साहित्यकार अथवा पाठकों की बुद्धि एवं रुचि से सम्बन्ध रखते हैं। एक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह सामयिक, परिवर्तित, जन-मनोवृत्तियों या पाठकों के टेस्ट से परिचित होता रहे और उसके अनुसार अपने साहित्य को भी वैसे ही मोड़ देता रहे, अन्यथा वह जल्दी ही आउट आफ डेट घोषित कर दिया जाता है। यहाँ पर यह मान्यता लेखक की अन्य कृति 'पथरीले प्रतिरूप' में निर्धारित मान्यताओं के विपरीत है। यहाँ पर तो लेखक पाठकों की रुचि के धरातल से सम्पर्क स्थापित करता हुआ वार्तालाप कर रहा है, किन्तु 'पथरीले प्रतिरूप' कविता संग्रह की भूमिका में उसने स्पष्ट ही रचना के श्रेष्ठ होने पर पाठकों की रुचि को अस्वीकारा है। यथा—प्रबुद्ध कवियों और अबुद्ध पाठकों के मध्य इतना बड़ा अन्तराल है, कि कविता (वैयक्तिक अनुभूति परक) का प्रचार एवं प्रसार दिन-दिन कम होता जा रहा है ० ० ० उपर्युक्त कथन का यह आशय कदापि नहीं है कि जन-मानस का संस्पर्श करने में असम काव्य कभी भी सम्भावनायुक्त नहीं हो सकता। सार्वभौम स्तर पर साहित्यिक मूल्यों की मान्यता भी रचनात्मक दृष्टिकोण को विशदता प्रदान करती है। ० ० ० इस दृष्टिकोण से सामाजिक मूल्यों का इससे एकात्म्य नहीं हो सकता और न ही उस रूप में वह सामाजिक मान्यता ही प्राप्त कर सकती है। इसीलिए कोई कविता श्रेष्ठ होकर भी अनुपयुक्त हो सकती है।†

---

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ८।

† पथरीले प्रतिरूप : डा० प्रतापनारायण टण्डन, भूमिका।

यहाँ पर लेखक पाठकों की रुचि को कोई महत्व न देकर कवि की स्वानुभूति को विशिष्टता प्रदान कर रहा है। युग बोध की संस्थिति को उसने पूर्णरूपेण अस्वीकार कर दिया है। यहाँ कवि मे बौद्धिकता सीमा का अतिरेक कर गयी है, फलतः वह प्रबुद्धता और अबुद्धता के झगड़ों में फंस गया है। प्रबुद्ध पाठक की सीमा स्थिति क्या है, यह वही स्पष्ट नहीं होता; लगता है जो कवि—कथन को उचितानुचित का विवेक किये बिना स्वीकारता रहे, प्रबुद्ध पाठक है। अज्ञेय, माथुर, धर्मवीर भारती आदि में भी यह प्रवृत्ति—आत्म प्रशंसा की भावना—डा० प्रतापनारायण टण्डन की तरह काफी पायी जाती है। किन्तु यहाँ पर (आधुनिक साहित्य में साहित्यकारों की सृजन शक्ति के ह्रास के कारणों पर विचार करते समय) उसकी प्रबुद्ध बुद्धि सामान्य एवं सयत स्तर पर बोल रही है। इसीलिए वे लिखते हैं कि साहित्यकार का साहित्य आउट आफ डेट, किसी वाद विशेष के विरोधी अथवा समर्थक होने के नाते नहीं होता, वरन् उसकी लोकप्रियता के आधार पर होता है। यह लोकप्रियता चाहे अनुभूति की हो या अधिक गहराई की, अधिक व्यापकता की हो या सुस्पष्टता की। * सर्जनात्मक ह्रास के कारणों पर विचार करते समय डा० प्रतापनारायण टण्डन ने साहित्यकारों के विषय मे बताया है—साहित्यकारो की दृष्टि का परिष्कार न होना, उनकी दृष्टि मे सूक्ष्मता न होना, साहित्य के मानदण्डो मे परिवर्तन और उसमे अपनी अनुभूतियों को सहज अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य न होना। जहाँ तक पाठको का सम्बन्ध है—उनमें अध्ययन शीलता की कमी, उनका जन-रुचि से परिचित न होना और कठिन साधना न होना। †

व्यावहारिक समीक्षा और उसके विषय—

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, डा० प्रतापनारायण टण्डन केवल आधुनिक युगीन साहित्य के ही समालोचक हैं, अतः उन्होंने आधुनिक साहित्य-

---

* आधुनिक साहित्य : : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०।

† आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १२।

कारों की ही कुछ कृतियों का मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन सम्बन्धी उनके निबन्धों का संकलन भी 'आधुनिक साहित्य' में है। वृन्दावनलाल वर्मा के तीन उपन्यास—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी और अमर बेल, जैनेन्द्र त्यागपत्र, रेणु के मैला आँचल और कवि जानकी वल्लभ शास्त्री आदि विवेच्य विषयों को उन्होंने प्रधानता दी है। इस प्रकार की समीक्षाओं में जहाँ एक ओर विवेच्य विषय के अंतरंग और बहिरंग पक्षों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण हुआ है, वहाँ रचनाकार के मानसिक विकास का विश्लेषण और उसकी रचना पर की गयी दूसरी समालोचनाओं का भी आकलन किया गया है। इनमें तुलनात्मक पद्धति का पूर्ण प्रयोग तो नहीं है, किन्तु उसकी झलक अवश्य दिखायी देती है। फलतः समालोचना का स्तर अधिक प्रमाण सम्मत और व्यापक बन गया है। कहीं-कहीं लेखक अपना मत पहले देकर—शुक्ल जी की तरह सूत्र रूप में व्यक्त कर—फिर उसकी व्याख्या करता है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' का मूल्यांकन करते समय लेखक की यही पद्धति रही है। उसने प्रारम्भ में ही लिख दिया 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' श्री वृन्दावनलाल वर्मा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। फिर कथानक, चरित्र-चित्रण और शैली की परिवद्ध परम्परा के आधार पर उसका अति संक्षिप्त मूल्यांकन किया है। इसको वर्मा जी के 'उपन्यास' की सम्यक् व्याख्या तो नहीं कह सकते, पर हाँ इससे पाठक को इस उपन्यास का संक्षेप में ही, कथानक, चरित्र और भाषा शैली की दृष्टि से परिचय हो जाता है; और यही समालोचक की महान सफलता है कि उसने थोड़े में ही बहुत कह दिया है—गागर में सागर भर दिया है। 'मृगनयनी' और 'अमर बेल' का मूल्यांकन भी इन्हीं परिपाटियों पर हुआ है, अमर बेल में समालोचक प्रवर डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उद्धरण देकर भी अपने कथन और उपन्यास के शीर्षक की व्याख्या और सार्थकता सिद्ध की है। शीर्षक के सम्बन्ध में उन्होंने उद्धरण दिया है—'उपन्यास का नामकरण—अमर बेल—उन तरह-तरह की अमर बेलों के प्रतीक के रूप में रखा गया है, जो समाज के वृक्ष को डसे जा रही हैं। वृक्ष अपने नये जीवन के लिए इन अमर बेलों के मारे कानून कहाँ बन पाता है ? अमर बेलें तो शोषण के अपने मतलब के कानून बनाती हैं।.... वृक्षों की अमर बेलें दिखायी पड़ती हैं; उनका काट-फेंकना सहज है, पर समाज और व्यक्ति की अनेक अमर बेलें दिखलाई ही नहीं पड़तीं। इन अमर बेलों को नष्ट करने के साथ कहीं ऐसा न हो कि व्यक्ति और समाज भी काट कर गिरा

दिये जायें।*

'त्यागपत्र'—जैनेंद्र कुमार रचित—का मूल्यांकन करते समय डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उसकी समाजिकता के प्रश्न को भी उठाया है और तुलनात्मक शैली मे प्रेमचंद से तुलना भी की है। अन्त में जैनेंद्र के त्यागपत्र को सर्वश्रेष्ठ ठहराते हुए उन्होंने लिखा है—'त्यागपत्र हमारी सम्मति में जैनेंद्र जी का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है—बहुत से अर्थों मे 'सुनीता' से भी श्रेष्ठतर। हमारा विचार है कि शायद जैनेन्द्र जी अपने बाद के उपन्यासों—'सुखदा', 'विवर्त' आदि—मे भी वैसी प्रभावात्मकता नही ला पाये जो 'त्यागपत्र' मे मिलती है।†

'मैला आँचल'—फणीश्वर नाथ रेणु—के उपन्यास का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय डा० प्रतापनारायण टण्डन विषयवस्तु की दृष्टि से उसका मूल्यांकन नही करते, उसके सम्बन्ध मे प्राप्त आलोचना-प्रत्यालोचनाओं का उत्तर देते हुए अपना मत स्थापन करते हैं। 'आलोचना', 'आजकल' और 'अवन्तिका' आदि पत्रिकाओं मे रेणु के इस उपन्यास—मैला आँचल—पर प्रकाशित समालोचनाओ की उन्होने समालोचना की है। इन 'समालोचनाओं' का जो उत्तर डा० प्रतापनारायण टण्डन ने दिया है, वह हमारे मत से भी ठीक ही दिया है। वस्तुतः मैला आँचल, मात्र आंचलिक होने के कारण, विषय विस्तार, सूक्ष्म दृष्टि और गहन पर्यवेक्षण शक्ति के अभाव को पराङ्मुख कर दिया जावे, यह उचित नही लगता। रेणु जी का 'मैला आँचल' न तो हिन्दी साहित्य में मील पत्थर है, न ही गोदान के बाद दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास और न ही यह कहा जा सकता है कि इसी उपन्यास के कारण उनकी दूसरी कृति विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण होगी। इसके सन् १९५४ के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास होने पर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन को सदेह है।‡ और उनकी दृष्टि में केवल यही उपन्यास रेणु जी को स्थायी प्रसिद्धि दिला सकता है। वे लिखते हैं—० ० अभी हमें यही देखना है कि क्या 'मैला आँचल' लेखक की स्थायी प्रसिद्धि के लिये पर्याप्त

---

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ७३ :

† वही पृष्ठ ७९

‡ वही, पृष्ठ ८२

है या इसके लिए समर्थ है। हम समझते हैं, कि अपने आप में यह कृति इतनी सशक्त नहीं है। अपनी इस बात को हम एक उदाहरण देकर स्पष्ट करें। टॉलस्टाय ने यदि सिर्फ 'एन्ना केटेनिना' या 'वार ऐण्ड पीस' ही लिखा होता, तो वह उनकी स्थायी प्रसिद्धि के लिए पर्याप्त था, किन्तु प्रेमचंद के उपन्यासों मे अकेला 'गोदान' या 'रंगभूमि' या शरत् के उपन्यासों में अकेला 'शेष प्रश्न' या 'चरित्रहीन' उन्हें महत्व की इस सीमा तक नही पहुँचा सकता।*

यहाँ हम एक बात स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि डा० प्रतापनारायण टण्डन (जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं) विदेशी साहित्य के प्रति सीमा से अधिक मोहित हैं, यही कारण है कि टॉलस्टाय (यह तो उन्होंने प्रसंग रूप में केवल एक ही नाम दिया है) की जो प्रसिद्धि है, वह एक ही उपन्यास से मिल जाती बताते हैं। पर वे यह भूल गये हैं कि 'गुलेरी' जी की भी प्रसिद्धि उनकी एक कहानी 'उसने कहा था' के आधार पर ही मिली थी। टॉलस्टाय यदि केवल एक उपन्यास 'वार ऐण्ड पीस' अथवा 'ऐन्ना केरेनिना' ही लिखता तो यह निश्चित था कि उसकी महत्ता का वर्तमान स्वरूप नही होता। फिर भी जहाँ तक फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास से उनके कथन का सम्बन्ध है, वह पूर्ण-रूपेण सत्य है।

कवि जानकीवल्लभ शास्त्री के काव्य की आलोचना करते हुए डा० टण्डन जी उनके काव्य मे छायावादेतर प्रवृत्तियाँ पाते हुए भी पंत, प्रसाद, निराला तथा महादेवी के बाद उनका स्थान निर्धारित करते हैं। प्रारम्भ में उन्होंने छायावाद की प्रवृत्तियों का अति सूक्ष्म अध्ययन दिया है, फिर काव्य संगीत की दृष्टि से उनके काव्य का मूल्यांकन किया है। यहाँ पर लेखक की दृष्टि विवेच्य विषय पर ही अधिक रही है। लेखक की प्रारम्भिक रचनाएँ होने के कारण इन समीक्षाओं में वह बौद्धिकता नहीं है, चिन्तन के वे स्वर नहीं उभरे हैं, जो बाद की रचनाओं में ध्वनित होते हैं। इन आलोचनाओं में, अन्त में सार कथ्य प्रवृत्ति भी दिखायी देती है; ऐसा प्रायः लेखक के इस काल के सभी निबन्धों में दिखायी देता है। कवि जानकीवल्लभ शास्त्री पर सब विस्तार व्याख्या देने के बाद डा० टण्डन जी लिखते हैं—

*आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १८।

"जहाँ तक हमारा विचार है, हम समझते हैं कि एक मिटती हुई काव्य प्रवृत्ति के होते हुए भी शास्त्री जी में एक नवीन दृष्टि है। पुरातनता के साथ ही, नवीनता युक्त दृष्टिकोण उनकी कविता की मुख्य विशेषता है। उनकी कविता उनके ठोस और परिपुष्ट ज्ञान की दिग्दर्शक है। उनके जैसा सुदृढ़ ,साहित्यिक आधार और सांस्कृतिक परम्परा तथा साथ ही संस्कृत का पांडित्य कम कवियों में देखने को मिलता है।"*

प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने कवि माथुर की कविताओं पर भी व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। कवि गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के प्रारम्भिक कवि हैं। अज्ञेय द्वारा सन् १९४१ में सम्पादित तार सप्तक में उनको सप्त कवियों में एक स्थान दिया गया है। डा० टण्डन जी उन्हें मुक्त छन्द के सशक्त कवि मानते हैं। प्रकृति चित्र प्रयोगात्मक हैं और इनकी कविता में केवल शिल्प के क्षेत्र में ही नहीं, वस्तु के क्षेत्र में भी नये प्रयोग मिलते हैं। इसी कारण इनको प्रयोगवादी कवियों से असमान कह सकते हैं। अन्त में लेखक लिखता है कि 'तार सप्तक के कवियों में श्री गिरिजाकुमार ही शायद ऐसे कवि हैं, जिनकी चित्रात्मक प्रतीक शैली को दूसरे सप्तक में आगे बढ़ाया गया है। यही नहीं, बल्कि दूसरे सप्तक के बाहर के कवियों की पीढ़ी भी उनके शिल्प प्रयोगों को लेकर आगे बढ़ी है।'* यहाँ पर भी लेखक की दृष्टि परिचयात्मक ही अधिक रही है।

प्रगतिवाद का स्वरूप--

छायावाद के सम्बन्ध में तो डा० प्रतापनारायण टण्डन का सैद्धान्तिक विवेचन अधिक नहीं मिलता। राष्ट्रवाणी, अवन्तिका, आजकल आदि में प्रकाशित रचनाओं तथा 'युग-चेतना' के अग्रलेखों में, हाँ, प्रगतिवाद का स्वरूप विषयक विचार अवश्य प्राप्त होते हैं। छायावाद के सम्बन्ध में भी एक-दो लेख हैं, किन्तु उनमें छायावाद के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन न करके व्यावहारिक पक्ष--कवि समीक्षा पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। एक का उदाहरण

---

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०७।

अभी पहले अनुच्छेद (कवि जानकी वल्लभ शास्त्री) में दे ही चुके हैं। प्रगतिवाद सम्बन्धी विचार डा० प्रतापनारायण टण्डन के निबन्धों में स्फुट रूप से अवश्य प्राप्त हो जाते हैं। लेखक प्रगतिवाद के सम्बन्ध में केवल अपने दृष्टिकोण को ही नहीं देता, आधुनिक विद्वानों के दृष्टिकोणों से भी परिचय कराता है ऐसा परिचय जिसमें से प्रत्येक के दृष्टिकोण में मौलिक विषमता है। डा० टण्डन जी कहते हैं, कि उनका पारस्परिक मतभेद या सिद्धान्त विषमता इस कारण भी हो सकती है कि वे विभिन्न कारणों अथवा प्रेरणाओं से इस मत विशेष के समर्थक हुए हैं। इसलिये उनमें मतैक्य न होना अनावश्यक या अस्वाभाविक नहीं। लेखक प्रगतिवाद के जन्म के समय की परिस्थितियों का आकलन कर इस प्रश्न पर भी विचार करता है कि इन परिस्थितियों में क्या वास्तव में नये वाद के जन्म की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी ? लेकिन डा० प्रतापनारायण टण्डन केवल इस प्रश्न को उठा कर ही रह गये हैं, कोई उत्तर या इसकी व्याख्या नहीं दे पाये। प्रगतिवाद विषयक कोई अपना दृष्टिकोण लेखक ने प्रस्तुत नहीं किया है। विद्वानों के उदाहरणों को मात्र भर दिया है। अन्त में अपनी सफाई देते हुए ये कहते हैं कि 'इन उदाहरणों' के देने का कारण यही है कि पाठकों को प्रगतिवाद के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का परिचय मिल सके। उपर्युक्त किसी मत के पक्ष या विपक्ष में कोई तर्क देना हमारा यहाँ उद्देश्य नहीं है। लेकिन बाद में बड़ी सफाई से संक्षेप-सार कहते हुए 'अपनी बात' कह देते हैं—

"आज प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख विचार-धाराओं में अपना स्थान रखता है। प्रगतिशील चिन्तन साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से ही रहा है। प्रगतिवादी साहित्य आज केवल समाज के शोषित अथवा निम्न वर्ग की ही चित्रण प्रस्तुत न करके सम्पूर्ण समाज के लिए एक व्यापक जीवन दर्शन प्रस्तुत कर रहा है। उसका क्षेत्र संकुचित न होकर समाज व्यापी है—समाज के प्रत्येक अंग पर, जीवन के हर पहलू पर वह समान रूप से लागू होता है। वह संघर्ष को नयी दिशाएं प्रदान करने वाला एक नाया जीवन दर्शन है।"*

* आधुनिक साहित्य : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११३।

प्रयोगवाद पर विचार—

प्रगतिवाद के बाद जिस प्रयोगवादी धारा ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया, उसके प्रति डा॰ प्रतापनारायण टण्डन ने अपनी धारणाएँ व्यक्त करने से पूर्व उस पर व्यक्त की गयी धारणाओं का मूल्यांकन किया है। प्रयोगवाद पर उनके विचार कवि माथुर की कविताओं का मूल्यांकन करते समय यत्र-तत्र सूत्र रूप में प्राप्त होते हैं। लेखक प्रयोगवाद को प्रगतिवाद से समुत्पन्न न मान कर छायावाद से उत्पन्न मानता है साथ ही वह प्रयोगवाद पर किये गये तर्क-वितर्कों की निराधारता केवल एक इसी कथन में कह देता है कि— इसके (प्रयोगवाद के) जन्मकाल से लेकर अब तक इस कविता के पक्ष या विपक्ष में जो तर्क-वितर्क किये गये हैं, अथवा जो वाद-विवाद हुआ है, वह शायद इसकी उपयोगिता—अनुपयोगिता सिद्ध करने में सफल नहीं हो सका। ० ०" *

प्रारम्भ में यह कोई वाद विशेष नहीं था। अज्ञेय † तथा गिरिजाकुमार माथुर ‡ ने इस बात को स्वीकार किया है, किन्तु बाद में जब 'तारसप्तक' की कविता प्रयोगवादी कविता कही जाने लगी, तो इस—कविता विशेष— के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत करने की आवश्यकता समझी गयी और हिन्दी में प्रयोगवाद का उदय हुआ। डा॰ प्रतानारायण टण्डन ने इस कविता के प्रारम्भ और विकास पर भी काल-क्रम की दृष्टि से अति संक्षेप में विचार किया है। किन्तु यह कालक्रम उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं दिया—कवियों के दृष्टिकोण से दिया है। लेखक ने प्रयोगवादी कविता के स्वरूप, उद्देश्य आदि पर भी संक्षेप में विचार किया है। लेखक ने आत्म-सत्य-अन्वेषण (कलाकार के आत्म-सत्य) को प्रयोगवादी मानता है। इस दृष्टि से लेखक की पथरीले प्रतिरूप की कविता भी प्रयोगवादी सिद्ध होती है, क्योंकि उसमें स्वानुभूतियों—आत्म-सत्य-अन्वेषण का ही व्यक्तीकरण है। प्रगतिवाद की तरह प्रयोगवाद में भी उसके कवियों के दृष्टिकोणों में काफी विभिन्नताएँ हैं।

---

* आधुनिक साहित्य : डा॰ प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११४।

† आलोचना, १२

‡ दूसरा सप्तक, (भूमिका)।

डा॰ प्रतापनारायण टण्डन प्रयोगवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप उपजा मानते हैं। छायावादी युग के अन्तिम चरण में, छायावादी शैली और व्यंजना से अपनी जो रूढ़ि स्थापित की थी उसमें विभिन्न भावनाओं या परिवर्तित अवस्थाओं के प्रभावों की अभिव्यक्ति एक ही ढंग की थी, इसी कारण प्रयोगवादी कवियों के दृष्टिकोणों में अनेकरूपता होते हुए भी एकरूपता दिखायी देती है। लेखक का प्रयोगवाद विषयक यह विवेचन अत्यन्त व्यापक और युक्ति-संगत है। फिर भी प्रयोगवाद पर उनके वे पुष्ट विचार प्राप्त नहीं होते, जिनसे प्रयोगवाद का सम्यक् रूप सामने आ जाये। संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति से किसी भी वाद-विशेष पर उनकी सांगोपांग व्याख्या या व्यवस्था प्राप्त नहीं होती। इस सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य लेखक के भविष्य की ओर आशान्वित नेत्रों से देख रहा है। संभवतः आगामी निबन्धों में लेखक के तद्विषयक दृष्टिकोण का विशिष्ट परिचय मिल सकेगा।

ऐतिहासिक आलोचना--

डा॰ प्रतापनारायण टण्डन की ऐतिहासिक समालोचनाएँ 'हिन्दी साहित्य : पिछला दशक' और 'आधुनिक साहित्य' में संगृहीत हैं। उन्होंने पिछले वर्षों में हिन्दी साहित्य में हुई प्रगति का साहित्यकार-काल-क्रम से विवेचन किया है। यह समालोचन समग्र रूप में नहीं है, अपितु साहित्य की प्रत्येक विधा पर उनके विचार हैं—हिन्दी कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध और आलोचना। लगभग पिछले २०-२५ वर्षों का हिन्दी साहित्य विषयक दृष्टिकोण और उसकी प्रगति पर यह विवेचन बहुत उपादेय है। लेखक की वर्णन शैली इसमें अद्भुत है और थोड़े में बहुत कहने की—सार ग्राहिणी प्रवृत्ति—अपनायी गयी है। परम्पराओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लेखक ने साहित्य धाराओं की वर्तमान प्रवृत्तियों का प्रत्येक साहित्य-विधा के अनुसार अलग-अलग विवेचन किया है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि डा॰ प्रतापनारायण टण्डन ने पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रह की भावना से दूर रह कर एक निर्णायक समीक्षक के रूप में समालोच्य साहित्यकारों के सम्बन्ध में अपनी विवेकपूर्ण सम्मति निस्संकोच भाव से व्यक्त की है।

'हिन्दी साहित्य : पिछला दशक' देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि

उन्होंने किसी एक प्रवृत्ति को ही विवेच्य विषय नहीं बनाया है, अपितु उसमें हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा की प्रत्येक प्रवृत्ति का विवेचन मिल जाता है। जिससे लेखक के विशद ज्ञान का पता तो चलता ही है गहन एवं सूक्ष्म साहित्यी दृष्टि का भी परिज्ञान होता है। काव्य विधा में छायावादी कवियों, प्रगतिवादी कवियों और प्रयोगवादी कवियों में सबका तो यथोचित वर्णन नहीं किया, किन्तु जिनका वर्णन मिलता है, उन पर पर्याप्त प्रकाश (कम शब्दों में ही) डाला है। बीच-बीच में वे प्रत्येक नवीन प्रवृत्ति के स्वरूप पर भी विचार करते गये हैं। उपन्यास साहित्य के विकासक्रम में—क्योंकि लेखक स्वयं एक प्रबुद्ध उपन्यासकार है—इसमें उनकी सूक्ष्म दृष्टि का पर्याप्त समावेश मिलता है। आज से दस वर्ष पूर्व रचित इन आलोचनाओं से उनकी सतत् विकसित और प्रवाहमान विचारधारा तथा मौलिक प्रतिभा को उन्होंने जो दिया, वह आधुनिक रूप को पोषित करने के लिए पर्याप्त सामग्री लिए हुए है। सन् ५५ तक के युग की समस्त साहित्य कृतियों (पैंतालीस से पचास तक) का वर्णात्मक समीक्षण आधुनिक युग के साहित्यकारों में उनका विशिष्ट स्थान निर्धारित करता है। नयी कविता विषयक उनके विचार सर्वथा मौलिक हैं और हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकासात्मक अध्ययन में प्रवृत्तिगत विशेषताएं हैं। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की उपलब्धियों का आकलन करते समय लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतया निष्पक्ष एवं तटस्थ है, लेकिन विदेशी साहित्य का प्रभाव यहां भी उन पर छाया हुआ है, जो आगे चल कर कम होने की अपेक्षा और बढ़ता ही प्रतीत होता है लेकिन यह 'विदेशीपन' इस प्रकार का नहीं है कि उसकी बयार में बहते हुए लेखक को अपने भारतीय कपड़ों की सुध हो न हो, वरन् वह उनको भी बटोरता-सहेजता चलता है। अलबत्ता यह अवश्य है कि वह इस विदेशियत का भारतीयकरण नहीं कर पाया है, यही कारण है कि अज्ञेय आदि में इस प्रकार का प्रभाव आत्मसयित हो गया है, जबकि डा० प्रतापनारायण टण्डन पर स्पष्ट अलग लक्षित होता है।

हिन्दी नयी कहानी के विषय में डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने हमें बाद में जो विशेषताएँ बतायी हैं उनका विवेचन डा० प्रतापनारायण टण्डन पूर्व ही कर चुके हैं। हिन्दी की नयी कहानी के विषय में उनके जो विचार हैं, उनको संक्षेप में देने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं। उनकी

महत्ता इस कारण भी है, कि इनमें नयी कहानी की समस्त पूर्वपीठिका प्राप्त हो जाती है; यथा—

—प्रेमचन्दोत्तर कहानी ने रचना दृष्टि, या विषय निर्वाचन की दृष्टि से उन्नति की है।

—नये कहानीकारों में सामाजिक चेतना न्यूनाधिक है अवश्य, जो सामान्य ही है।

—कहानी के क्षेत्र में नये प्रयोगों का यह फल हुआ है कि उसने शैली की दृष्टि से काफी उन्नति की है।

—प्रेमचन्द युगीन कहानी मे कथानक की प्रमुखता होती थी, अब थोड़े ही समय का जीवन विवरण या मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण तक पर्याप्त समझा जाता है।

—हिन्दी की नयी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी की अपेक्षा नवीनतम तत्वों का आभास देती है।

—नयी हिन्दी कहानी में शिल्पपक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया ज्ञात होता है।

—नयी कहानी रचना की आधारभूमि मनोविश्लेषणात्मक कही जा सकती है। *

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नयी कहानी हिन्दी साहित्य को सर्वथा मौलिक देन है, जिसकी यही प्रवृत्तियाँ बाद में विकसित हुईं। यों तो अब इनका विवेचन विशेष महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु जिस समय में इनका विवेचन किया गया (आज से दस वर्ष पूर्व) उस समय हिन्दी की नयी कहानी जन्म ही ले रही थी, उस समय इसका निष्कर्षात्मक विवेचन जो आज भी उन्हीं मापदण्डों पर आधारित है, अवश्य ही लेखक को विशिष्टता प्रदान करता है।

---

* ... : पिछला दशक : डा. प्रतापनारायण टण्डन,
- १०२

सैद्धान्तिक समालोचना—

डा० प्रतापनारायण टण्डन की सैद्धान्तिक समालोचना सम्बंधी विचारधारा की हिन्दी साहित्य को अनुपम देन 'हिन्दी उपन्यास कला' है। इसकी रचना करते समय लेखक का उद्देश्य उपन्यास कला का सैद्धान्तिक विश्लेषण करना रहा है। यह अध्ययन विशेषतः हिन्दी उपन्यासो के सिद्धान्तों और व्यावहारिक रूपों के विकास के सन्दर्भ में किया गया है। विविध स्थलों पर जो व्याख्यात्मक उदाहरण दिये गये हैं, वे इसी कारण से हिन्दी उपन्यासों के हैं। यद्यपि विविध पाश्चात्य कृतियों तथा अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रशियन भाषाओं के उपन्यासों की प्रवृत्तियों की भी यथावसर मौलिक विवेचना की गयी है। क्योंकि भिन्न-भिन्न युगों में पाश्चात्य उपन्यास साहित्य का जो प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर पड़ता रहा है, वह भी इसके वर्तमान रूप निर्धारण में योग की दृष्टि से लेखक ने उल्लेखनीय समझा है। हिन्दी उपन्यास मे *सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण तथा व्यावहारिक निदर्शन की पूर्णता की दृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य उपन्यास साहित्य दोनो को समाविष्ट कर लिया है।

इस पुस्तक में डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यास कला सम्बन्धी सैद्धान्तिक स्वरूप और व्यावहारिक विकास सम्बन्धी विचार दिये गये हैं। हिन्दी साहित्य में उपन्यास कला सम्बन्धी यह पहली पुस्तक है जिसमें उपन्यास कला का इतना व्यापक और सम्यक् निरूपण प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि, जैसा हम अभी कह चुके हैं, इसे लिखते समय लेखक का यह दृष्टिकोण रहा है कि उपन्यास के स्वरूप और कला से सम्बन्धित शास्त्रीय सिद्धातों की परिचयात्मक व्याख्या के साथ-साथ उपन्यास के मूल उपकरणों से सम्बन्धित भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के चिन्तन और सामान्य सैद्धान्तिक विचारों का भी सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत किया जाये। इसी कारण से आवश्यक स्थलों पर तात्विक विवेचन के सन्दर्भ में तुलनात्मक परिचय के उद्देश्य से इन

---

* हिन्दी साहित्य : पिछला दशक ; डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०२।

कदाचित इस कारण भी है, कि इसमें नयी कहानी की समस्त पूर्वपीठि
हो जाती है; यथा—

—प्रेमचन्दोत्तर कहानी ने रचना दृष्टि, या विषय निर्वाचन की
उन्नति की है।

—नये कहानीकारों में सामाजिक चेतना न्यूनाधिक है अवश्य
सामान्य ही है।

—कहानी के क्षेत्र में नये प्रयोगों का यह फल हुआ है कि उसने शैल
दृष्टि से काफी उन्नति की है।

—प्रेमचन्द युगीन कहानी में कथानक की प्रमुखता होती थी, अब पा
जीवन का जीवन विवरण या मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण तक पर्याप्त स
जाता है।

—हिन्दी की नयी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी की अपेक्षा नवीन
तत्वों का आभास देती है।

—नयी हिन्दी कहानी में शिल्पपक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया
ज्ञात होता है।

—नयी कहानी रचना की आधारभूमि मनोविश्लेषणात्मक कही
सकती है। *

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नयी कहानी हिन्दी साहित्य
सर्वथा मौलिक देन है, जिसकी यही प्रवृत्तियाँ बाद में विकसित हुईं। दोन
अब इनका विवेचन विशेष महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु जिस समय में इन
विवेचन किया गया (आज से दस वर्ष पूर्व) उस समय हिन्दी की नयी कहान
जन्म ही ले रही थी, उस समय इसका निष्कर्षात्मक विवेचन जो आज भी उन्हीं
मापदण्डों पर आधारित है, अवश्य ही लेखक को विशिष्टता प्रदान करता है।

---

* हिन्दी साहित्य : विद्वला वल्लभ : डा.

जो नितांत मौलिक हैं, निर्धारित करता है। यथा—ऐतिहासिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास; सामाजिक उपन्यास; समस्या प्रधान उपन्यास; भाव प्रधान उपन्यास; आदर्शवादी उपन्यास; नीति प्रधान उपन्यास; यथार्थवादी उपन्यास; आदर्शपरक यथार्थवादी उपन्यास; सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास प्रगतिवादी उपन्यास; अति यथार्थवादी उपन्यास; प्रकृतवादी उपन्यास; मनोवैज्ञानिक उपन्यास; राजनीतिक उपन्यास; प्रयोगात्मक उपन्यास; तिलस्मी उपन्यास; जादुई उपन्यास; जासूसी उपन्यास; वैज्ञानिक उपन्यास, लोककथात्मक उपन्यास; आंचलिक उपन्यास। इन कोटियों को देखकर कोई 'नये गांव में बावंदा ऊँट' छोड़ने वाली कहावत न समझ बैठे इसलिए विद्वान लेखक इनकी सम्यक् विवेचना देते हुए कहता है।

"आधुनिक उपन्यास का रूप विस्तार बहुत अधिक है। सर्वप्रथम इसके अंतर्गत ऐतिहासिक उपन्यास की व्याख्या की गई है। इस परम्परा का प्रत्यक्ष सम्बंध पाश्चात्य साहित्य के मध्ययुगीन रोमांसों से है। सांस्कृतिक उपन्यासों की गणना भी ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ की जा सकती है, यद्यपि हिंदी में इनकी भी एक परम्परा स्वतंत्र रूप से निर्मित हो चुकी है, जो तीव्रगति से प्रगतिशील है। परन्तु प्रचलन की दृष्टि से सामाजिक उपन्यास का क्षेत्र विशिष्ट है। ० ० इसमें समस्या प्रधान, भाव प्रधान, आदर्शवादी तथा नीति प्रधान उपन्यास की प्रवृत्ति बहुलता से मिलती है। इसी प्रकार से आधुनिक युग में यथार्थवादी उपन्यास की प्रवृत्ति भी बहुलता से मिलती है, जिसके अन्तर्गत आदर्शपरक यथार्थवादी उपन्यास, सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास, प्रगतिवादी उपन्यास, अति यथार्थवादी उपन्यास तथा प्रकृतवादी उपन्यास आदि आते हैं। ० ० ० तिलस्मी, जासूसी, जादुई आदि प्रवृत्तियाँ जहाँ आधुनिक उपन्यास की परम्परानुगामिता की सूचक हैं, वहाँ प्रयोगात्मक, वैज्ञानिक, आंचलिक तथा अन्य प्रवृत्तियाँ हिंदी उपन्यास के नवीनतम रूपों का निदर्शन करने में समर्थ हैं।"*

'हिंदी उपन्यास कला' के तीसरे अध्याय में उपन्यास के सर्व प्रधान तत्त्व

---

* हिंदी उपन्यास कला, डा० प्रतापनारायण टंडन, भूमिका, पृष्ठ ७–८

कथानक की विवेचना की गयी है। इसमें कथानक के स्वरूप के सैद्धांतिक विश्लेषण के साथ-साथ उपन्यास में कथानक के समावेश पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी विचार किया गया है। कथानक तत्व की प्रधानता प्राचीनकाल के उपन्यासो से लेकर आज तक के उपन्यासो में समान रूप से बनी रही है, बेशक विन्यास भले ही परिवर्तित होता रहा हो। और इसका प्राथमिक महत्व भी देशी-विदेशी प्रायः सभी विचारकों द्वारा स्वीकार किया गया है। कुछ तो भ्रमवश कथानक को ही उपन्यास मान बैठे हैं। आधुनिक युग में भी, जबकि उपन्यास के अन्य तत्वो का आपेक्षिक महत्व बढ़ गया है, कथानक का परम्परागत महत्व निर्विवाद रूप से बना हुआ है—आकार-प्रकार का परिवर्तन गौण बात है। लेखक ने वैचारिक मौलिकता, पारस्परिक सम्बद्धता, घटनात्मक सरसता, शैलीगत निर्माण कौशल, तथा वर्णनात्मक रोचकता आदि गुणों को कथानक की सफलता का कारण माना है। कथानक मानव जीवन की विविध क्षेत्रीय समस्याओं की व्याख्या करता है तथा युग समाज और जीवन के प्रतिनिधित्व का भी संकेत देता है, अतः जीवन मूल्यों का मूल्यांकन कथानक द्वारा ही हो सकता है, अतः उपन्यास रचना का आधार कथानक ही होता है। परिच्छेद योजना पर विचार करते समय लेखक का ध्यान उसके शिल्प विधान पर भी गया है, जिसके कारण आज के युग मे परम्परागत परिच्छेद योजना का वह महत्व नहीं रह गया है जो भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द युग, और प्रेमचन्दोत्तर युग में भी मिलता है।

दूसरे मूलतत्व पात्र अथवा चरित्र-चित्रण की व्याख्या इस पुस्तक के चौथे अध्याय में प्रस्तुत की गयी है। मानव और मानव जीवन के उपन्यास का मूलाधार होने के कारण उसकी सम्यक् व्याख्या चरित्रों की कुशल अवतारणा पर ही हो सकती है। इसीलिए एक उपन्यासकार अपनी कृति में मनुष्य के बाह्य रूप और चरित्र की विविध क्षेत्रीय प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का [illegible] चित्रण उद्घाटित करता है। अतः उपन्यास के चरित्र चित्रण तत्व में वास्तविकता रहती है। इसके अतिरिक्त उपन्यास के इस तत्व के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि नाटक आदि साहित्यिक विधाओं के विपरीत उपन्यास में चरित्र-चित्रण की प्रणाली नाटक आदि साहित्यिक विधाओं से [illegible], [illegible] न होकर [illegible] और [illegible] होती है। यहाँ [illegible]

प्रधान उपन्यासों में इस तत्व की दृष्टि से अधिक सजग रहा जाता है, किंतु चरित्र प्रधान उपन्यासों में यह प्रणाली और भी दुरूह हो जाती है। लेखक ने पात्र और चरित्र-चित्रण तथा कथानक के संतुलित समन्वय के लिए कुछ गुणों को चरित्र-चित्रण में आवश्यक बताया है; इनसे पात्र और चरित्र-चित्रण तत्व का उपन्यास मे कलात्मक समावेश हो जाता है। ये गुण पात्रों की कथात्मक अनुकूलता, व्यावहारिक स्वाभाविकता, चारित्रिक संप्राणता, आधारिक यथार्थता, भावात्मक सहृदयता, रचनात्मक मौलिकता, अन्तर्द्वंद्वता, बौद्धिकता, तथा कलात्मक परिपूर्णता आदि हैं।

लेखक ने पात्रों का वर्गीकरण कई दृष्टियो से किया है। सामान्यतः पात्रो का प्रथम वर्गीकरण प्रमुख तथा सहायक पात्रों के रूप में किया जाता हैं। दूसरे प्रकार के वर्गीकरण के अन्तर्गत पुरुष पात्र, स्त्री पात्र, खल पात्र, यथार्थवादी पात्र, व्यक्तिवादी पात्र, मनोवैज्ञानिक पात्र, मानसिक असन्तुलन वाले पात्र, प्रतीकात्मक पात्र, ऐतिहासिक पात्र, राजनैतिक पात्र, सामाजिक पात्र, धार्मिक पात्र, पौराणिक पात्र, तथा बुद्धिजीवी पात्र आदि को रखा जा सकता है। इन सभी प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण किसी विशेष प्रणाली या पद्धति से होता है जिससे लेखक की सुप्रतिभा कौशल के दर्शन होते हैं। इस प्रकार की चरित्र-चित्रण सम्बधी जो प्रणालियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, उनमें विश्लेषणात्मक विधि, अभिनयात्मक विधि, स्वगतकथनात्मक विधि, आत्मकथनात्मक एवं कथात्मक विधि, संवादात्मक विधि, विवरणात्मक विधि, संकेतात्मक विधि तथा मनोवैज्ञानिक विधि का लेखक ने प्रमुख रूप से विवेचन किया है। लेखक अपने पात्रों के सम्बन्ध में कहता है कि पूर्वयुगीन उपन्यास साहित्य के पात्र जहाँ केवल औपचारिक पूर्ति करते से प्रतीत होते थे, वहाँ वर्तमान युग के औपन्यासिक पात्र समाज के विविध वर्गों का उत्तरदायित्व पूर्ण प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ वैयक्तिक और समाजिक चेतना के वाहक भी होते हैं।*

कथानक तथा पात्रो की सांगोपांग विवेचना करने के बाद डा० प्रतापनारायण टण्डन ने पाँचवें अध्याय मे उपन्यास के तीसरे मूलतत्व कथोपकथन अथवा

* हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०।

संवाद का स्वरूप विवेचन किया है। इसके स्वरूप में भी काफी विविधता रहने के कारण आरम्भिक युग से एक प्रकार की क्रमिक विकास शीलता लक्षित की जा सकती है। किसी उपन्यास में कथोपकथन के समावेश का उद्देश्य कथानक का विकास करना पात्रों की व्याख्या करना और लेखक के मन्तव्य को स्पष्ट करना होता है। लेखक ने इस दृष्टि से कथोपकथनों के उपयुक्तता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, सम्बद्धता, अनुकूलता, मनोवैज्ञानिकता, तथा भावात्मकता आदि गुण माने हैं। लेखक के मतानुसार कथोपकथन का प्रारम्भिक रूप मुख्यतः विचार प्रधान रहा है। अतः इसका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व निर्धारित करते हुए लेखक ने इसी अध्याय के अन्त में कथोपकथन तत्व के महत्व के सम्बन्ध में यह संकेत स्पष्ट रूप से दिया है कि कथोपकथन उपन्यास का एक अनिवार्य और नाटकीय तत्व है। इसकी रचना उपन्यास में सोद्देश्य होना चाहिये, क्योंकि तभी यह स्वाभाविक और यथार्थ प्रतीत होता है।*

किसी भी रचना का लिखित अथवा कथ्य माध्यम भाव होता है, जिसके आधार पर मस्तिष्क में उद्भूत विचार अभिव्यक्ति पाकर पुस्तक रूप में सामने आते हैं। इस आधार भूत तत्व का विवेचन लेखक ने इस पुस्तक के छठे अध्याय मे किया है। इस तत्व की व्याख्या करते समय लेखक ने बताया है कि व्यापक अर्थ में उपन्यास के कई महत्वपूर्ण तत्व भी इसी के अन्तर्गत परिगणित कर लिये जाते हैं। पूर्व युग में भाषा के व्यावहारिक रूप का भली प्रकार विकास न होने के कारण उपन्यास मे यह तत्व उपेक्षित रहा, परन्तु आगे चल कर उसकी परिपक्वता स्पष्टतर होती गयी। इस अध्याय में भाषा के सैद्धान्तिक व्याकरण का पक्ष, भाषा के क्षेत्रीय विस्तार तथा औपन्यासिक भाषा की समस्याओं पर भी इसी सन्दर्भ में विचार किया गया है। औपन्यासिक भाषा के रूप विकास के अन्तर्गत, समन्वित भाषा, सामान्य प्रयोग की भाषा, ग्राम्य भाषा, उर्दू प्रधान भाषा, अंग्रेजी प्रधान भाषा, मिश्रित भाषा तथा लोक भाषा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये हिन्दी उपन्यास में भाषा गत प्रयोगों की बहुरूपता के परिचायक हैं।

* हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११

इसी अध्याय में लेखक ने भाषा गत प्राप्त रूपों का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया है कि भाषा की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के प्रथम रूप के दर्शन प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य में होते हैं। इसके पहले जो उपन्यास साहित्य प्राप्त होता है, उसमें औपन्यासिक प्रयत्न विशेषतः भाषा के क्षेत्र में किये गये थे, उनका उद्देश्य भाषा के व्यावहारिक रूपों को उपन्यासोचित बनाना था। उपन्यास के बहुरूपी विकास के समानान्तर ही आगे चलकर खड़ी बोली के परिष्कृत रूपों का परिष्कार होता रहा उपन्यासकारों के अपने संस्कार और विचारों के अनुसार खड़ी बोली के संस्कृत प्रधान, उर्दू प्रधान, अंग्रेजी प्रधान अथवा सामान्य रूप प्रचलित होते रहे। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से औपन्यासिक भाषा ने स्वयं अपनी विषयगत अनुकूलता का परिचय दिया है। वस्तुतः संस्कृत-गर्भित भाषा जहाँ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा व्यक्तिवादी उपन्यासों में सफलता पूर्वक प्रयुक्त हुई, वहाँ उर्दू प्रधान और सामान्य भाषा आदर्शवादी और यथार्थवादी उपन्यासों में विशेष रूप से ग्राह्य हो सकी। यथार्थ की ही दिशा में भाषा का एक अन्य प्रयोग आंचलिक अथवा प्रादेशिक उपन्यासों में भी सफलतापूर्वक किया गया। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि क्षेत्रीय व्यावहारिक समस्याओं का निदान एक भाषा शास्त्री के साथ ही रचनात्मक साहित्यकार भी निकाल सकता है, यही बात भाषा के रचनात्मक निर्माण के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है।

शैली भी उपन्यास का प्रमुख तत्व होने के कारण डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उसकी व्याख्या सातवें अध्याय में की है। यह तत्व यद्यपि प्रारम्भ में उपेक्षित रहा और अधिकांश उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखे जाते रहे, किन्तु बाद में इसका काफी विकास होता रहा। यहां लेखक शाब्दिक रूप जाल में कुछ उलझा हुआ प्रतीत होता है। उसका यह कहना कि शैली तत्व प्रारम्भ में उपेक्षित रहा, नितांत गलत बैठता है। शैली का प्रयोग होता था; और अवश्य होता था, क्योंकि कोई भी बात लिखने के लिए किसी न किसी शैली की आवश्यकता अवश्य पड़ती है। बिना किसी शैली प्रयोग के न तो कोई बात कही जा सकती है और न ही लिखी जा सकती है। अतः शैली का प्रयोग था अवश्य; एतदर्थ उपेक्षित नहीं कहा जा सकता; हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि शैली विषयक विभिन्न प्रयोग उपन्यासों के प्रारम्भिक युग में नहीं हुए। नवीन शैली के अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, इसके अनु-

संधान में साहित्यकार उदासीन रहे और केवल वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग करते रहे। इसीलिए लेखक लिखता है कि व्यापक अर्थ में शैली के रूप पर विचारा जाय तो ज्ञात होगा कि अपने मूल रूप में प्रत्येक भिन्न साहित्यिक विधा वाङ्मय की एक विशिष्ट शैली होती ही है। यों उपन्यास में भी शैली का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न उपकरणों से होता है। यद्यपि वह प्रथम रूप में कथानक तथा द्वितीयतः पात्रों से अन्तःसम्बन्धित होती है। इस अध्याय में लेखक ने जिन शैलियों का सोदाहरण विवेचन किया है उनमें वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्रात्मक शैली, नाटकीय शैली, फ्लैशबैक शैली, कथोपकथनात्मक या संवाद शैली, काव्यात्मक या भावात्मक शैली, लोककथात्मक शैली, आंचलिक शैली तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली, आदि प्रमुख हैं।

'हिंदी उपन्यास कला' के आठवें अध्याय में देशकाल अथवा वातावरण के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूपों पर विचार किया गया है। उपन्यास रचना में यह उपकरण पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है। इस तत्व के क्रमबद्ध विकास के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए विद्वान लेखक वातावरण के उचित पृष्ठभूमि निर्माण में सफल होने के लिए कुछ गुणों को आवश्यक मानता है, जिनसे इस तत्व चित्रण में अभिव्यक्तिगत पूर्णता आती है। ये गुण वर्णनात्मक सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पनात्मकता उपकरणात्मक एवं संतुलन है। देशकाल के सामान्य भेद सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी, प्राकृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक, तथा ऐतिहासिक हैं। इस संदर्भ में लेखक ने आंचलिक उपन्यासों की चर्चा भी की है। आधुनिक उपन्यास में देशकाल अथवा वातावरण के अंतर्गत आंचलिक उपन्यास चित्रण का स्वरूप उसके पूर्ववर्ती रूपों से भिन्न रहा है। आज का उपन्यासकार आंचलिक चित्रण प्रधान कृति में उपन्यास के कथा क्षेत्र की इतनी प्राणवान तस्वीर खींचता है कि उसकी पूर्णता में कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु बहुधा इस प्रकार के उपन्यास वैचारिक स्पष्टीकरण अथवा प्रेरणा की दृष्टि से अशक्त रह जाते हैं।

नवें अध्याय में लेखक ने उद्देश्य के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप का विश्लेषण किया है। इसमें लेखक ने स्पष्ट किया है कि उपन्यास के विकास के साथ ही उपन्यासकार के दायित्व भी बढ़े हैं, और इसलिए इस

तत्व का आपेक्षिक महत्व भी क्रमशः बढ़ रहा है। प्रारम्भ के उपन्यास न तो उपदेशात्मक थे और न ही मनोरंजक; केवल कल्पना प्रधान भी इसी कारण होते थे कि जिससे लेखक की अभीष्ट पूर्ति मे सुविधा हो। आगे चलकर नीति शिक्षा, कौतूहल सृष्टि, सुधार भावना, हास्य सृष्टि, समस्या चित्रण राजनीतिक चित्रण, तथा जीवन दर्शन आदि का प्रकटीकरण भी उपन्यास का उद्देश्य हो गया।

अन्तिम दसवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में हिंदी उपन्यास कला के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विकास की पृष्टभूमि मे हिंदी उपन्यास की भावी संभावनाओं पर विचार है। आज हिंदी साहित्य मे सबसे अधिक उपन्यास साहित्य का बोलबाला है, इसलिए लेखक की दृष्टि मे उपन्यास साहित्य का भविष्य अन्य सभी विधाओ की तुलना मे अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल है। उपन्यास ने उपकरणात्मक सयोजन की दृष्टि से [जो उल्लेखनीय प्रगति की है, वह भी उसके भावी स्वरूप की विशदता की परिचायक है।

इन सभी अध्यायों के अन्त मे आवश्यकतानुसार सकेत और टिप्पणियाँ दी गयी हैं। इसमें वे ही सदर्भ दिये गये हैं, जो विविध क्षेत्रीय विस्तृत अध्ययन के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सस्कृत तथा हिंदी के अनेक उल्लेख आवश्यक समझे जाने के कारण इसमें नहीं दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इन भाषाओं के श्रेष्ठ लेखको और उनकी प्रसिद्ध कृतियो से परिचित होने के नाते विश्व उपन्यास साहित्य की अवगति की दृष्टि से अनेक स्थलों पर परिचयात्मक सकेत बहुत आवश्यक न होते हुए भी उपयोगिता की दृष्टि से इसमे समाविष्ट कर दिये गये हैं।

'हिंदी उपन्यास कला' पर सम्यक् दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि डा० टण्डन ने अपनी इस कृति में न केवल हिंदी उपन्यास कला की विवेचना की है, अपितु इसी सदर्भ मे विश्व की अन्य भाषाओं की उपन्यास कला का भी यथा-तथ्य निरूपण कर दिया है। उपन्यास जैसी साहित्य विधा पर इतना गहन अध्ययन, सूक्ष्म अंतर्ग्राहिणी दृष्टि और विचार मौलिकता उन्हें न केवल हिंदी उपन्यासों के क्षेत्र मे विशिष्ट स्थान प्रदान करती है, अपितु विश्व उपन्यास साहित्य मे महत्व देती है। उन्होंने विवेच्य विषयों का अनुशीलन अत्यंत विवेकशील प्रज्ञा से किया है और वे पहले इनका यथासभव पूर्ण आकलन करने के

पश्चात् ही उनके विश्लेषण पर उद्यत हुए हैं। यह निःसंदेह है कि इस प्रका उपन्यासों के शास्त्रीय विवेचन जैसे दुरूह विषय को बोधगम्य बनाने के लि उसमें अभिरुचि रखने वाले पाठक को भी विशेष मानसिक संतुलन स्थापि करना पड़ता, किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन जी की शैली विशेष का ही परि णाम है कि विषय सुगम और सुबोध लगता है। जैसे वे उसके उपचेतन की मूल वृत्ति को पहचान लेते हैं; और ऐसे स्थलों पर जहाँ प्रबुद्ध पाठक को भी बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता पड़ती, आंशिक हल्के-फुल्के वर्णनों में विश्रान्ति देकर, पुनः अपनी बौद्धिक यात्रा पर निकल पड़ते हैं; साथ में हिंदी उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियों के साथ पाश्चात्य उपन्यास प्रणालियों का आँचल भी नहीं छोड़ते, पर इस प्रकार कि पाठकों को बौद्धिक थकान का अनुभव न हो।

उपन्यास का स्वरूप—

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उपन्यास के स्वरूप का विवेचन अपनी प्रौढ़ एवं प्रबुद्ध प्रतिभा के बल पर सहज ग्राह्य और सुबोध बना दिया है। अब तक उपन्यासों के स्वरूप गत जितनी—देशी-विदेशी धारणायें प्रचलित थीं, उन सबमें एकांगिता थी। वे उपन्यास के समूचे रूप के निर्धारण में अक्षम थीं। किसी चरण विशेष का चिन्तन उनमें प्रबुद्ध स्तर पर होता हुआ भी, समग्रता को समादिष्ट करने में अक्षम ही थी। डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उपन्यास विषयक स्वरूप निर्धारण में न तो किसी पक्ष विशेष पर ही बल दिया है और न ही उसके समग्र रूप निर्धारण में दी गयी अपनी परिभाषा के फेर में पड़कर पहले विद्वानों द्वारा दी गयी एकांगी परिभाषाओं को अनुपयुक्त ही ठहराया है और न ही उनकी मौलिकता पर आघात किया है तथा न ही उनके शब्दों को मिला कर एक परिभाषा बनाई है। ये सब कार्य प्रबुद्ध चिंतन स्तर का परिचय देते हैं, उनकी प्रौढ़ बुद्धि तटस्थ भाव से सभी परिभाषाओं को सामने रख देती है; यह प्रस्तुतीकरण भी उलझाव की सीमा से बाहर है। उपन्यास के स्वरूप का विश्लेषण करने वाली परिभाषाओं को उन्होंने अनेक विभागों में विभाजित करके विद्वद्जन के विचार उन विभागों के अंतर्गत संजो दिये हैं। इससे लाभ यह हुआ तत्र बिखरे-विचार एक वर्ग विशेष के अन्तर्गत आ जाने से दूसरे विद्वानों

मे साम्य-वैषम्य के स्पष्ट परिचायक हो गये, और उपन्यास के विषय में मान निर्धारण की समस्या स्वयं ही हल हो गयी। इन परिभाषाओं का संक्षिप्त आकलन करने के बाद प्रत्येक को श्रेय देते हुए (पर इस प्रकार कि सत्य का गला भी न घोटा जाये) वे कहते हैं—

'० ० किसी भी साहित्यिक विधा की पूर्णतः सतोषप्रद परिभाषा कर सकना सदैव कठिन रहा है। लेकिन उसे परिभाषाबद्ध करने के प्रयत्नों ने विधा विशेष के स्वरूप को स्पष्ट करने में अवश्य महत्वपूर्ण सहायता की है। उपन्यास क्या है, इसे लेकर भी दर्जनों परिभाषाएँ देश और विदेश मे प्रस्तुत की गयी हैं और बावजूद इसके कि उनमें से कोई एक परिभाषा ऐसी नहीं कही जा सकती, जो उपन्यास के सभी रूपों को समेटती हो, किंतु वे सब मिलकर उपन्यास के महत्वपूर्ण गुणों और विकास क्रम पर समुचित प्रकाश डालती हैं।"*

यह समस्या ठीक ही है, किसी उपन्यास विशेष को देख कर समस्त उपन्यासों को उसके क्रम पर नहीं बाँधा जा सकता। अंग्रेजी साहित्य के प्रारंभिक उपन्यासों को देखते हुए अनेक कृतियों को उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। बनियन का 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस', डेफो का 'राबिन्सन क्रूसो', रिचर्डसन का 'पमेला' आदि उपन्यास सजित होते हुए भी किसी भी परिभाषा के रूप से तारतम्य स्थापित नहीं कर पाते। "जब हम पढ़ते हैं कि मनुष्य और उसके आचार-विचार का निकट अनुकरण · समाज का छाया और बनावट, जैसा कि व । वस्तुतः है और हमारे व्यवहार में आता है। मानवता के चरित्र और प्रेरक प्रवृत्तियों का घनिष्ठ परिचय तथा अच्छे बुरे के प्रति हमारे दृष्टिकोणों का यथार्थ आधार..........रोमास का कल्पना प्रधान माध्यम, जिसमें वास्तविक जीवन का अनुभव है........"तो सहसा के कई ऐसे गुण स्पष्टतः हमारे सामने आते हैं जिनसे उपन्यास का स्वरूप निर्देशित और निर्धारित होता है।" †

---

* हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ १८

† वही, पृष्ठ १८-१९

हिन्दी उपन्यास की भावी संभावनाओं पर विचार—

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उपन्यास के भविष्य के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, वे नितांत मौलिक और उसके उज्ज्वल भविष्य द्योतक हैं। यदा-कदा वार्तालाप में भी वे यहीं कहते हैं कि निकट भविष्य उपन्यास का स्थान अन्य साहित्यिक विधाओं से ऊपर होगा। और जो कहते हैं कि उपन्यास का युग समाप्त हो रहा है, वे अपनी अपरिपक्व बुद्धि का परिचय देते हैं। हिंदी उपन्यास की भावी संभावनाओं पर उनके विचार-अध्य करने पर यह बात सत्य ही लगती है। उसमें जो प्रबल तर्क उन्होंने दिये हैं, वे सर्व अकाट्य हैं। वे कहते हैं—'विश्व की अनेक उन्नतिशील भाषाओं के साथ, हि उपन्यास की भावी संभावनाएं भी निश्चित और स्पष्ट हैं। उपन्यास के विधि तत्वों के क्षेत्रमें जो आशातीत सफलता और प्रगति हुई है, वह हिन्दी त भाषा के संदर्भ में अधिक स्पष्ट है। इनमें से उपन्यास के शिल्प विधान की दृ से भी उसकी प्रगति विशिष्ट है।' *

वस्तुतः हिन्दी उन्यास में शिल्प सम्बंधी रूपों का विकास विविध युगों लिखी गयी कृतियों की कथात्मक विभिन्नता और नवीनता के समानान्तर ही होता रहा है। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासों मे कथावस्तु में घटनात्मकता के लिए जो विशेष बल दिया जाता था, वह परवर्ती युग में क्रमशः ह्रसित हो रही है, फलतः रचना क्षेत्र मे नवीन प्रयोग हो रहे हैं। जैसे कि डा० प्रता- नारायण टण्डन ने अपने निबंध 'सृजनात्मक ह्रास के कारण' में स्पष्ट किया था कि जो कृतिकार अथवा साहित्य युगीन परिवर्तित मान्यताओं के साथ कदम से कदम मिला कर नहीं चल पायेगा, उसका ह्रास अवश्यंभावी है। †और उपन्यास इस प्रकार से परिवर्तित युगीन मान्यताओं का सहचर हो रहा है, अ उसकी प्रगति में किसी प्रकार का संशय ही नहीं है। 'औपन्यासिक कथानक की ह्रासात्मक वृत्ति ने उपन्यास में अन्य उपेक्षित तत्वों को प्रमुखता प्रदान की थी। उपन्यास के विविध उपकरणों में जो पारस्परिक सन्तुलन दिखाई पड़ता था,

---

* हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ११६।

† आधुनिक साहित्य : : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १०।

वह धीरे-धीरे कम होने लगा। उपन्यासकार केवल कथानक की चमत्कारपूर्ण योजना में ही अपने कर्तव्य की इति न समझ कर चरित्र चित्रण तथा भाषा आदि पर भी गौरव देने लगा। नवीन उपन्यासों में प्राचीन की अपेक्षा कथा-वस्तु, पात्र, भाषा, तथा शैली आदि की दृष्टि से जो वैभिन्नय मिलता है, और जो परिवर्तनशीलता लक्षित होती है, इसका मूल कारण यही है। *

हिंदी उपन्यास साहित्य की प्रगति न केवल साहित्यिक विकास की द्योतक है, वरन् वह मानवीय चेतना और उसके विविध परिवेश के अन्तर्गत होने वाले भिन्न-भिन्न उन्नत तत्वों की ओर भी संकेत करती है। उपन्यास परम्परागत अर्थविकास के अतिरिक्त प्राचीन उपन्यास से जितना भिन्न हो गया है, उतना ही अब अन्य साहित्यांगों से भी अंतर रखता है क्योंकि आधुनिक जीवन के विविध क्षेत्रों तथा संभावनाओं का जितना सम्यक् चित्रण उपन्यास में संभव है उतना साहित्य की किसी दूसरी विधा में संभव नहीं है अतः मानव जीवन का कुशल चितेरा होने के नाते—क्योंकि साहित्य समय का प्रगतिशील प्रतिबिम्ब है और मानव साहित्य से तथा साहित्य मानव से प्रेरणा ग्रहण करता है—इसका समृद्ध विकास अवश्यंभावी है। इस दृष्टि से आधुनिक उपन्यास सांस्कृतिक विकास और उपलब्धियों का साहित्यिक प्रतीक कहा जा सकता है।

साहित्य के अन्य रूप आज भी अपनी पूर्व निर्धारित परिधि में संकुचित हैं। वहां उपन्यास ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक विधा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति के समानान्तर ही अपनी गतिशीलता का प्रमाण दे रहा है। इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, मनोविज्ञान, दर्शन तथा यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्रों में होने वाली उपलब्धियों का परिचय उपन्यास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

हिंदी उपन्यासों का यह सैद्धान्तिक विवेचन भावी उपन्यास की सफलता के साथ ही साथ उसके स्वरूप का भी एक स्पष्ट चित्र दे देता है। इस चित्र में निर्भीकता है, भावी संभावनाओं के प्रति दृढ़ आस्था है और मौलिकता के साथ ही अपनी बात कहने में दृढ़ता है। इससे डा० प्रतापनारायण टण्डन की विषय प्रतिपादन की क्षमता का परिज्ञान हो जाता है। अन्य साहित्यकारों की तरह वे अपने निर्णयों में अस्थिर नहीं हैं—उन निर्णयों के धुंधले चित्र सामने नहीं हैं

* हिन्दी उपन्यास कला : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३५७

जो अस्पष्ट से संकेत मात्र कर देते हों, अपितु उनमें एक स्थिरता है अ
भविष्य के रूपों को वर्तमान की तरह—प्रत्यक्षीकरण की क्षमता। इसका
भी स्पष्ट है—उनकी ये धारणाएँ केवल वाणी विलास, अथवा कल्पना
अतिशयता मे बौद्धिक कुहासा मात्र नहीं हैं, उनके पीछे यथार्थ और स
धरातल है। उपन्यासो की अब तक की ऐतिहासिक प्रगति इस तथ्य का स
विवेचन कर देती है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर भी पता चलेगा कि सं
की अन्य चिन्तन धाराओं से उपन्यास का अन्तर स्पष्ट है। बौद्धिक वि
और दर्शन क्षेत्रीय विविध आन्दोलन अपने सैद्धान्तिक रूप में भले ही अदि
कोटि के तथा उच्च-स्तरीय हों, परन्तु सामान्य जीवन में वे शुष्क, अरो
तथा अनुपयोगी से समझे जाते हैं। इन्हीं को जब व्यावहारिक आधार पर
औपन्यासिक कृति मे प्रतिष्ठित कर दिया जाता है, तब उनमें एक प्रकार
विलक्षण प्रभावात्मकता सी परिलक्षित होने लगती है। इस दृष्टि से उपन्या
विशिष्ट चिन्तन धाराओं को अपने में समाविष्ट करके उनको सुगम
सुबोध बनाकर प्रबुद्ध पाठकों तथा जन-सामन्य—दोनों की ही अभिरुचि
केन्द्र विन्दु बन रहा है, फलतः अब उपन्यास कल्पना की अतिशयता अथ
मनोरंजन की फुलझड़ी मात्र नही रहा, उसका दामन यथार्थ से बंधा है,—ऐ
यथार्थ से जो मानव सापेक्ष्य होने के साथ ही उसके बौद्धिक संतुलन को भ
केन्द्रित किये हुए है।

हिंदी उपन्यास के भावी स्वरूप की भविष्यवाणी करते हुए डा० प्रताप
नारायण टण्डन लिखते हैं कि हिंदी उपन्यास का भावी रूप वर्तमान मान
जीवन में मूल्यगत ह्रासात्मक की परिणति का परिचायक होगा। आधुनिक
जीवन वैचारिक संकुलता तथा गत्यवरोध के ऐसे जटिल रूपों का साक्षात्कार
करता है, जो कभी-कभी भविष्य के उपलब्धयात्मक बिन्दुओं को अस्पष्ट
कर देते हैं। उपन्यास अपने बहुक्षेत्रीय रूप विस्तार के साथ जीवन के इन
यथार्थात्मक वैषम्य और उसकी विडम्बनात्मक परिणति के संभाव्य रूप का
दृढ़ता से सामना करता हुआ, जीवन को अर्थपूर्णता देने के प्रत्येक व्यावहारिक
प्रयत्न का प्रयोग कर रहा है। *

*हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १९।

डा० प्रतापनारायण टण्डन उपन्यास और जीवन का सम्बन्ध अत्यन्त व्यापक अर्थ में मानते हैं। उन्होंने उन विचारकों से अपना मतभेद प्रकट किया है जो उपन्यास को केवल मानव जीवन की व्याख्या अथवा कल्पना की अतिरंजना या आदर्शवादी विचारधारा की परम्परा मात्र मानते हैं। उनकी दृष्टि व्यापक है, इसीलिए उनकी दृष्टि मे उपन्यास की सीमाएं भी बहुत विस्तृत हैं। वे उपन्यास को एक ऐसी धारा मानते हैं जो जीवन के चारों आयामों को अपने में संयोजित करती हुई, भूत, भविष्य और वर्तमान से तादात्म्य स्थापित करती अनवरत रूप से बहती रहती है। इसीलिए भावी युग मे उपन्यास का स्वरूप उनकी दृष्टि में अन्य समालोचकों की तरह, कल्पनायुक्त अथवा निराशावादी कभी नहीं रहा। उपन्यास को उन्होंने सदैव साहित्य की सभी विधाओं में सर्वोपरि स्थान दिया है।

निष्कर्ष और निर्णय--

डा० प्रतापनारायण टण्डन जी ने भारतीय और पाश्चात्य—पूर्वयुगीन तथा अधुनातन—उपन्यास सिद्धान्तों तथा काव्य-शास्त्रों का गम्भीर और व्यापक अनुशीलन किया है उसका आभास हमें उनकी आलोचनात्मक कृतियों से अनायास ही लग जाता है। एक विद्वान तथा मनीषी में जिस धैर्य, सयम, वाक्चातुर्य और विषय प्रतिपादन की क्षमता अपेक्षित है, वह डा० प्रताप-नारायण टण्डन में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। समालोचना प्रवृत्ति, उनकी प्रारम्भ से ही रही है (आधुनिक साहित्य, सन् १९५४ में प्रकाशित हो चुका था। जो वय क्रम से सतत् प्रगतिशील रही है। अपने चिन्तन और मनन के पश्चात् उनकी हिन्दी साहित्य की जो देन अभूतपूर्व है वह हिन्दी समालोचना साहित्य में 'हिन्दी उपन्यास कला' है। उपन्यासों के सैद्धान्तिक विवेचन में उन्होंने अपनी विचारणा के साथ-साथ कहीं पर भी शास्त्रीय आधार की उपेक्षा नहीं की। पर इससे उनकी मौलिकता दबी नहीं है, उसका रूप और भी प्रस्फुटित दिखायी देता है। उनके प्रारम्भिक निबन्धों में विचार स्फुट रूप में है। उनमें जो जिज्ञासा अथवा ज्ञान पिपासा मिलती है, अपनी बात प्रतिपादित करने की क्षमता मिलती है, वह इस कृति में पूर्ण संयम और विवेक का ऐसा प्रौढ़ परिचय दे रही है जिसके द्वारा उनका पूर्ण समन्वयात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित

होता गया है भारतीय तथा पाश्चात्य औपन्यासिक सिद्धांतों का विवेचन क
उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे अत्यन्त माननीय हैं। यद्यपि इन निष्कर्षों
पाश्चात्य सिद्धान्तों और कृतियों की ओर झुकाव अधिक है, किन्तु यह स्प
ध्वनित होता है कि डा० प्रतापनारायण टण्डन कभी भी किसी मान्यता
रूढ़िवादी परम्परा में अवरुद्ध करके नहीं चले अपितु उन्होंने हृदय और बु
दोनों को ही ज्ञान राशि के उन्मुक्त हिलोरें लेते हुए सागर से मौलिक वि
के मुक्ता चुनने के लिए उदारता पूर्वक छोड़ दिया है। उस नीर-क्षीर विवेच
प्रज्ञा ने उन्हें हिन्दी समालोचकों की सर्वश्रेष्ठ कोटि में इतनी अल्पावस
में ही ला कर खड़ा कर दिया है।

अंत में कहा जा सकता है कि डा० प्रतापनारायण टण्डन की उपलब्धि
हिन्दी साहित्यको अनुपम देन हैं। उनकी वर्णन पटुता गम्भीर से गम्भीर वि
को रुक्षता के अंचल से निकाल कर कुशल, सरस और परिमार्जित कर देती
ऐसा करने में उन्हेंपर्याप्त सफलता भी मिली है। 'हिन्दी उपन्यास कला' इस
ज्वलन्त प्रमाण है।

अध्याय : ७

हिन्दी शोध : नव दिशा

शोधपरक समीक्षा की प्रवृत्ति

डा० प्रतापनारायण टण्डन की सर्जनात्मक प्रतिभा एवं आलोचनात्मक प्रबुद्धता के इस संक्षिप्त मूल्यांकन के पश्चात् उनकी कारयत्री प्रतिभा के संबंध में कुछ कहना युक्तिसंगत नहीं लगता। अब हम उनकी शोधात्मक समीक्षाओं का अनुशीलन करेंगे, जिनके अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनुसंधान क्षेत्र में भी उनकी देन अद्वितीय है। इस प्रकार का अनुसंधानात्मक कार्य उन्होंने किसी संस्था या सरकार की ओर से निर्देशित होकर नहीं किया, इसमें उनका स्वयं का परिश्रम है और अपनी ही सहज सवेद्य बुद्धि की लगन है। ये शोधपरक समीक्षाएं लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० (स्पेशल) हिंदी के लिए लिखा गया शोध प्रबन्ध 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में वर्ग भावना' पी० एच० डी० की थीसिस 'हिंदी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास' और डी० लिट्० की थीसिस 'समीक्षा के मान और हिंदी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियां' शीर्षकों से प्रकाशित हो चुकी हैं। 'निबन्ध और आलोचना' वाले अध्याय में जो विवेचन किया गया है, उसमें लेखक का समालोचक के रूप में व्यक्तित्व इतना नहीं उभरता जितना कि सिद्धांतों का सूक्ष्म विवेचक रूप उभरता है। किंतु ये समीक्षाएँ, समीक्षक प्रवर डा० प्रतापनारायण टण्डन की सजग बुद्धि और संयमित समीक्षाओं पर प्रकाश डालती हैं।

इससे पूर्व कि हम डा० प्रतापनारायण टण्डन की शोध सम्बन्धी रचनाओं

की समीक्षा करें, पृष्ठ भूमि के रूप में इनसे पहले के विद्वानों द्वारा प्राप
गई उपलब्धियों का विकास-क्रम के अनुसार विवेचन करना आवश्यक
समते है।

हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में जो विविध प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं, उन
एक शोध परक समीक्षा प्रवृत्ति भी है। इस प्रवृत्ति का विकास-इतिहास
पुराना नही है। बीसवी शताब्दी में भारत में विविध विश्वविद्यालयों से स
शोध कार्य के रूप में प्राचीन साहित्य की खोज और मूल्यांकन के साथ
आधुनिक साहित्य की विविध प्रवृत्तियों के विषय में भी वृहत् प्रबन्धों
रचना की गई है। शोध के अनेक रूप निर्धारित होकर वैज्ञानिक प्रणाली
उनकी रचना भी हो रही है। ज्यों-ज्यों उच्च शिक्षा का प्रसार हो रहा
शोध कार्य भी प्रगति कर रहा है।

हिंदी तथा हिंदी से सम्बन्धित शोध कार्य के इतिहास को देखने से
होता है कि इसका आरंभ भारत में न होकर विदेशी विश्वविद्यालयों में हुआ
ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सर्वप्रथम सन् १९१८ में लन्दन विश्वविद्यालय द्वा
'तुलसीदास का धर्म दर्शन' (Theology of Tulsidas) शीर्षक प्रबन्ध
जे० एन० कारपेंटर को 'डाक्टर ऑफ डिविनिटी' की उपाधि प्रदान की गई
लेकिन भारतीय विश्वविद्यालयों में इसका आरंभ सन् १९३१ से मान
चाहिए, जब कि प्रयाग विश्वविद्यालयो द्वारा डा० बाबूराम सक्सेना
'अवधी का विकास' (Evolution of Aubadhi) शीर्षक प्रबन्ध पर डी
लिट्० की उपाधि प्रदान की गई। इसके बाद से हिन्दी में शोध कार्य की ओ
अभिरुचि तीव्रता से बढ़ी है।

इस प्रवृत्ति का विकास इतनी तीव्रता से तथा इतना विविधतापूर्ण हु
है कि उसके इतिहास का सम्यक् रूप एक साथ प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है
समीक्षा विधा दो रूपों में विकसित हुई है, साहित्य विषयक शोध प्रवृत्ति औ
भाषा वैज्ञानिक शोध प्रवृत्ति ; क्योंकि हमारा सम्बन्ध केवल साहित्य विषय
शोध से है, अतः हम उसी के विकास का इतिहास अति संक्षेप में देने का
प्रयत्न करेंगे। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी लिख देना आवश्यक है, कि
[illegible] ऐसी शोध कृतियों के नाम आ गए हैं, जिनका प्रकाशन अभी तक
[illegible] है। साहित्य विषयक शोध प्रवृत्ति के भी तीन रूप दृष्टिगत हो

हैं—१-कवि परक शोध प्रवृत्ति, २-सम्प्रदाय परक शोध प्रवृत्ति और ३-शास्त्रपरक शोध प्रवृत्ति। अब हम इन तीनों के इतिहास का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

१—कविपरक शोध प्रवृत्ति—हिंदी मे कवि परक शोध प्रवृत्ति के अन्तर्गत सर्वप्रथम डा० बलदेवप्रसाद मिश्र का नाम लिया जा सकता है। उनका शोध ग्रन्थ 'तुलसी दर्शन' शीर्षक से सन् १९३८ मे डी० लिट्० की उपाधि के लिए नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत किया गया था। किसी कवि के ऊपर स्वतन्त्र अध्ययन से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम शोध कृति थी। इसके बाद महाकवि तुलसीदास से ही सम्बन्धित अन्य शोध-कर्ताओं द्वारा प्रस्तुत शोध ग्रंथों मे 'तुलसीदास : जीवनी और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन' लेखक डा० माताप्रसाद गुप्त, 'तुलसीदास और उनका युग'—लेखक डा० राजपति दीक्षित और 'तुलसीदास जीवनी : और विचारधारा,—लेखक डा० राजाराम रस्तोगी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

महाकवि सूरदास के जीवन और कृतित्व पर स्वतंत्र अध्ययन प्रस्तुत करने वाले डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूर : जीवनी और कृतियों का अध्ययन' विषय पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। इनके अतिरिक्त डा० हरवंशलाल शर्मा ने 'सूरदास और उनका साहित्य', डा० मनमोहन गौतम ने 'सूर की काव्य कला' जैसी शोध कृतियां हिंदी साहित्य को प्रदान की। तुलसी और सूर के अतिरिक्त अन्य कवियों पर शोध करने वाले समीक्षकों में डा० नगेन्द्र 'रीतिकाल की भूमिका मे देव का अध्ययन', डा० विपिनविहारी त्रिवेदी 'चन्द बरदायी और उनका काव्य', डा० किरणचन्द शर्मा 'केशवदास : उनके रीति काव्य का विशेष अध्ययन,' डा० कमलकुलश्रेष्ठ 'जायसी : उनकी कला और दर्शन', डा० विशम्भरनाथ भट्ट 'रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला,' डा० छोटेलाल 'मीराबाई', डा० अम्बादत्त पंत 'अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति,' डा० मनोहरलाल गौड़ 'घनानन्द और मध्यकाल की स्वच्छन्द काव्य धारा', डा० महेशचन्द्र सिंहल 'संत सुन्दरदास', डा० गोवरधनलाल शुक्ल 'कवि परमानन्द और उनका साहित्य', डा० श्यामशंकर दीक्षित 'परमानन्ददास : जीवनी और ग्रंथ', डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित 'संत कवि मलूकदास', डा० हीरालाल दीक्षित 'आचार्य केशवदास', डा० महेन्द्र-

कुमार 'मतिराम : कवि और आचार्य', डा० गोविन्द त्रिगुणायत 'कबीर और उनकी विचारधारा', डा० प्रेमशंकर तिवारी 'प्रसाद का काव्य', डा० ज्ञानव अग्रवाल 'प्रसाद का काव्य और दर्शन', डा० उमाकान्त गोयल 'मैथिलीशर गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता' तथा डा० कमलाक पाठक 'गुप्त जी का काव्य विकास' आदि विद्वानों के नाम विशेष उल्लेख हैं।

इन अनुसंधाताओं की रचनाएं कवियों के व्यक्तित्व और उनके कृतित की सम्यक् समीक्षा प्रस्तुत करने के साथ, उनके दृष्टिकोण तथा युगी परिस्थितियों में उनके क्षेत्र का निर्धारण करती हैं। कविपरक समीक्षा-शोध प्रवृत्ति अब भी प्रवाहमान है, और अनेक अनुसंधित्सु अनुसंधान कार्य में ल हुए हैं; इससे हिंदी साहित्य के अनेक अछूते कोनों और काल की पर्त के नीचे दबे हुए कवियों के महत्वशील ग्रंथ पाठकों की दृष्टि में आ रहे हैं—जिनसे हिंद साहित्य का समृद्ध भण्डार और भी समृद्ध हो रहा है।

२. सम्प्रदायपरक शोध प्रवृत्ति—'हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' शीर्षक प्रबन्ध की रचना करके डा० पीताम्बरदास बड़थ्वाल ने सन् १९३४ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की। इस ग्रंथ में लेखक ने हिंदी शोध के क्षेत्र में एक नवीन क्षेत्र और दिशा की ओर संकेत किया, जिसका प्रसार परवर्ती युग में भी दिखायी देता है।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विविध साम्प्रदायिक काव्य सम्प्रदायों के शोधात्मक अध्ययन की परम्परा का प्रचलन डा० दीनदयालु जी गुप्त द्वारा सन् १९४४ में प्रयाग विश्वविद्यालय से 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' शीर्षक प्रबन्ध पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त कर किया गया। हिंदी साहित्य के शोध इतिहास में यह ऐसा प्रथम सम्प्रदायपरक अनुसंधान कार्य है जिसमें अष्टछापी काव्य धारा का विचारपूर्ण अनुशीलन किया गया हो। इसमें डा० दीनदयालु गुप्त द्वारा अष्टछाप के अन्तर्गत गिने जाने वाले आठ कवियों सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, तथा छीतस्वामी के जीवन, काव्य और विचारधारा का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के बाद अन्य शोध कर्ताओं ने भी इससे प्रेरणा लेकर इन कवियों पर स्वतंत्र अध्ययन किये।

डा० मुन्शीराम शर्मा ने सर्वप्रथम 'भारतीय धर्म साधना और सूर साहित्य' नामक प्रबन्ध की रचना द्वारा आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और हिंदी में भक्तिभावना और धर्म साधना के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान दिया। भक्तिभावना के विस्तृत अध्ययन से सम्बन्धित दूसरी शोध कृति की रचना डा० मुन्शीराम शर्मा द्वारा 'वैदिक भक्ति और हिंदी के मध्य-कालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति' शीर्षक से की गयी। बाद में यह ग्रंथ 'भक्ति का विकास' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बहुत व्यापक है।

हिन्द्येतर भाषाओं के साम्प्रदायिक कवियों के अध्ययन की दिशा मे अन्य महत्वपूर्ण कृति डा० विनयमोहन शर्मा की 'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत सन्त साहित्य पर 'मध्यकालीन सन्त साहित्य' के लेखक डा० रामखेलावन पाण्डेय तथा 'संत कवि रविदास और उनके पंथ' शीर्षक प्रबन्ध के लेखक डा० भगवत् व्रत मिश्र ने भी कार्य किया।

सम्प्रदायपरक शोध प्रवृत्ति के अन्तर्गत अन्य समीक्षकों में 'रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' के लेखक डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव, 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' के लेखक डा० भगवतीप्रसाद सिंह, 'स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उनका वाणी साहित्य' के लेखक डा० गोपालदत्त शर्मा, 'जायसी के परवर्ती सूफी कवि' की लेखिका श्रीमती डा० सरला शुक्ला, 'नाथ सम्प्रदाय के हिन्दी कवि' के लेखक डा० शान्तिप्रसाद चन्दोला, 'शिवनारायणी सम्प्रदाय के संदर्भ में हितहरिहर वंश का विशेष अध्ययन' के लेखक डा० विजयेन्द्र स्नातक, 'हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' के लेखक डा० सत्येन्द्र, 'सिद्ध साहित्य' के लेखक डा० विमलकुमार जैन के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन विद्वानों ने हिंदी साहित्य की शोधात्मक प्रवृत्ति के इतिहास को नवीन दिशाएँ दी हैं। हिंदी साहित्य का समृद्ध भण्डार इन रचनाओं की उपलब्धियों से समृद्ध हो रहा है। अनुसन्धित्सुओं की सतत् वृद्धिशील जिज्ञासा वृत्ति, उन्हें इस दिशा की ओर प्रेरित कर नित्य नये क्षेत्रों की खोज करा रही है। हिन्दी साहित्य में नित्य नयी दिशाएं खुल रही हैं, सम्प्रदाय परक नवीन सिद्धान्त सामने आ रहे हैं। फिर भी उस क्षेत्र मे काफी आयाम अछूते हैं। यह सन्तोष

की बात है कि साहित्य का सजग शोधार्थी उस ओर से उदासीन नहीं है
साहित्य साधना के मन्दिर में अपनी साधना के पुष्प चढ़ाने के लिए
प्रयत्नशील है। अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि इसका
उज्ज्वल है।

४. शास्त्रपरक शोध प्रवृत्ति—काव्य शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक वि
सम्बन्धी कार्य शास्त्रपरक शोध प्रवृत्ति कहलाता है। इस प्रवृत्ति के प्रारम्
श्रेय डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' को है। उन्होंने 'हिन्दी काव्य शास्
विकास' शीर्षक प्रबन्ध की रचना करके प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा सन् १
में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। इस विषय पर प्रस्तुत किया गया
ग्रंथ अपने ढंग की सर्वप्रथम शोध रचना है। अन्य प्रवृत्तियों की तरह का
में इस क्षेत्र में भी साहित्य शास्त्र के विविध सम्प्रदायों तथा प्रवृत्तियों से संब
शोध कार्य हुए। डा० भगीरथ मिश्र इस दिशा में दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी
साहित्य शास्त्र के सभी सम्प्रदायों का ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाङ्गीण अध्
प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं को है। सन् १९४७ में लखनऊ विश्वविद्यालय द्
'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' शीर्षक प्रबंध पर इन्हें पी. एच. डी.
उपाधि प्रदान की गई थी।

इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत साहित्य शास्त्र के अध्ययन सम्बन्धी शोध
करने वालों में 'हिन्दी छन्द शास्त्र के लेखक डा० भोलाशंकर व्यास, 'म
विज्ञान के प्रकाश में रस सिद्धान्त का अध्ययन' के लेखक डा० छैलबिहारी गु
'राकेश' तथा 'आधुनिक हिंदी काव्य में छन्द योजना' के लेखक डा० पुत्तूल
शुक्ल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य की इस नवीनतम विधा का भण्डार हिन्दी के कर्मठ शोध
र्थियों द्वारा जिस गति और तीव्रता से भरा जा रहा है, उसे देखते हुए इस
भविष्य काफी समुन्नत एवं उज्ज्वल कहा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में एक दूसरे दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होगा
कि जीवन की विषम जटिलता और संघर्ष संकुलता ने न केवल सर्जनात्मक
साहित्य में ही विविधता एवं दुरूह अस्पष्टता ला दी, वरन् प्रबुद्ध एवं कर्म
अनुसंधित्सु भी इससे पराङ्मुख नहीं हो पाया। फलतः इस

वाग्जाल मे दिग्भ्रमित होने के अवसर अल्प नही है। पहले जिन अनुसंधित्सु एवं उनकी कृतियो का उल्लेख किया गया है, उनके अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि आज के समीक्षक या अनुसंधाता मे मौलिक चिंतन का वैविध्य एवं व्यापक दृष्टिकोण की न्यूनता है। कारण यह है कि अधिकांश शोधकर्ता बहु-अधीत होने पर भी तत्व चिन्तन की गौणतावश अपने अध्ययन का सम्यक् निर्वाह अपनी कृतियो मे नही कर पाये हैं, और यत्र-तत्र बहक-से गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अनुसंधायियों ने वैयक्तिक प्रभाव के अभिव्यंजन को ही समालोचना का एकांत पक्ष समझ कर स्वतंत्र और मौलिक चिंतन के नाम पर स्वैरवादी विचारो की मात्र अभिव्यक्ति कर दी है। स्वतन्त्र और मौलिक चिंतन मे जहाँ तथ्यपूर्ण विवेचन सामने आने चाहिए—ऐसे विवेचन कि सबको ग्राह्य हो सकें, वहाँ सर्वत्र 'अपनी ढपली अपना राग' सुनायी दे रहा है। जिससे चिंतन शक्ति का ह्रास तो हो ही रहा है, शोध की गरिमा को भी आघात पहुँच रहा है और नवीनता खोजने की चाह मे 'नये गाँव मे बावला ऊँट छोड़ने' की प्रवृत्ति का समावेश अधिकता से हो रहा है। राजनैतिक मतवादों का दुरुपयोग भी इन शोधायियों मे बहुतायत से मिलता है, परिणाम यह हुआ है कि साहित्यालोचन मे जीवन की व्यापकता से उद्भूत उन सिद्धान्तो की न्यूनता होने लगी है, जो किसी देश-काल और समाज से ऊपर उठकर सार्वभौम साहित्य के मानदण्ड बन सकते और जिनके कारण रचनात्मक साहित्य को नूतन दिशा प्राप्त होती। दूसरे अर्थों मे, किसी भी अनुसंधित्सु ने साहित्य के प्रतिमान विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से स्थापित नही किये। उनका दृष्टिकोण साहित्य को विशुद्ध बौद्धिक एव भावात्मक सत्थिति मे ग्रहण करने का न होकर, केवल अपना पक्ष प्रतिपादित करना और अपने पक्ष के इतर आलोचना-प्रत्यालोचना मात्र रहा है।

नवीनता और पाश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित नवयुवक शोधायियों के प्रादुर्भाव से हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में दो विशिष्ट वर्गों का उदय हो गया है। एक वर्ग पुरातन पंथियो का है, जो नवीनता की ग्राह्य प्रवृत्तियों मे भी आंख मूंदकर सर्वत्र दोष ही दोष देखता है और अपने स्थान पर अंगद पादारोपण किये हुए कूप मडूक की तरह उसी से सन्तुष्ट रहता है,—एक कदम भी इधर-उधर हिलना-डुलना नही चाहता। दूसरा वर्ग उन नवीनतान्वेषी युवक शोधायियों

या है जिनकी आंखों के सामने विदेशीपन का चश्मा इतनी जकड़न के चढ़ गया है, कि उन्हें विदेशियों के अनुकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं सू अन्धानुकरण की यह प्रवृत्ति उनमें इतना व्यापक रूप ग्रहण कर गयी वे प्राचीन शास्त्र परम्परा को सड़ी-गली और समय बाह्य घोषित कर आधुनिक युग चेतना तथा जीवन शक्ति समीक्षण का अभाव पाने लगते हैं उसके नाम पर सदा नाक भौं सिकोड़ते हैं। इन नवयुवकों की यह यहां तक बढ़ी हुई प्रतीत होती है कि वे बिना किसी सोच-विचार के भा (प्राचीन अथवा अधुनातन) रचना को विदेशीय किसी भी रचना की में हीन घोषित करने से नहीं हिचकिचायेंगे, और ऐसा करके गर्व का अ करेंगे। परिणाम यह होता है कि दोनों श्रेणी के विचारक अपने व्यापक तथा मानवोपयोगी विचारधारा से विमुख होकर साहित्य समीक्षण के मा भटक जाते हैं। वस्तुतः आज के अनुसंधानार्थी के सम्मुख एक ओर जहाँ प्रा साहित्य शास्त्र की भी ऐसी प्रभूत सामग्री का अक्षय कोष है, जिसके परि से समीक्षा की भित्ति ढहढहाकर गिर पड़ेगी, अथवा एकक्षेत्रीय ही बन पायेग दूसरी ओर अधुनातन वैज्ञानिक युग की विशिष्टता ने उसे जो नूतन वि धारा और अभिनव दृष्टि प्रदान की है, वह भी उसके लिये किसी रू उपेक्षणीय नहीं कही जा सकती। दोनों ही रूपों का तत्व चिन्तन से उद् मौलिकता के द्वारा सम्यक् निर्वाह ही किसी शोध कृति को सार्वकालि सार्वदेशीय और सार्वजनीन बना सकता है।

इन सब शोध कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रभाषा के गौ शाली आसन पर आसीन हिन्दी के सामने आज भी वही समस्याएँ हैं, जो प थीं। साहित्य समालोचना के स्वतन्त्र मान निर्धारण की समस्या आज हमारे सामने है। कुछ व्यक्ति तो इस प्रश्न पर विचार करना ही व्यर्थ समझते वे हिन्दी को अन्य भाषाओं के साहित्य की तुलना में सर्वसम्पन्न समझते हैं अ इस प्रकार दृढ़ आस्था जमाये बैठे हैं कि किसी के कुछ कहने-सुनने का उन प्रभाव नहीं होता। उन्हें हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा में इतनी प्र सामग्री दिखायी पड़ती है कि वे इसी के आधार पर उसे गौरवशाली मान लगते हैं। ऐसे शोधार्थी आवश्यकता से अधिक आशावादी हैं और उनक धारणा में अपनी वस्तु को सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित करने वाली मूढ़ता है। इस बिल्कुल विपरीतगामी प्रवृत्ति दूसरे वर्ग के व्यक्तियों की है। उन्हें अप

साहित्य और समालोचना में मात्र हीनता ही दृष्टिगत होती है। इस वर्ग की समझ मे यह नहीं आता कि हिंदी की भी अपनी स्वतंत्र परम्परा है और उसका भी अक्षय विकासवादी ज्ञान कोष है। यह वर्ग पाश्चात्य विचारधारा और भौतिक संस्कृति की चकाचौंध में अपने व्यक्तित्व को ही तिरोहित-सा कर बैठा है, और इसके प्रतिमान इतने अधिक 'पराश्रित' है कि उसे हिन्दी के प्राचीन साहित्य समालोचन में रूढ़ि और संकीर्णता ही दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः इसके मूल में उसके अज्ञान का थोथा दम्भ और पाश्चात्य घुट्टी की प्रेतछाया ही प्रदर्शित होती दीखती है। इन दोनों वर्गों की हठवादिता से घबड़ा कर एक तीसरे प्रकार के शोधार्थी सामने आए है, जिनका दृष्टिकोण सामंजस्य पूर्ण है, किन्तु उनके पास ज्ञान गुरुता की इतनी कमी है कि वे न्यायाधीश के पद पर आसीन होकर स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चिन्तन के आधार पर निर्णय दे सकने में अक्षम हैं।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की बहुमुखी प्रतिभा, गहन अध्ययन, पाश्चात्य दृष्टिकोण का उदार ग्रहण और भारतीय प्राचीन काव्य शास्त्रीय परम्पराओं का गूढ़ अनुशीलन चिन्तन की मौलिकता से संयुक्त होकर एक नवीन दृष्टिकोण को जन्म देती है, जिसमें न कोई पूर्वाग्रह है और न ही किसी विचार-विशेष के प्रति हठवादिता या दुराग्रह। उन्होंने दोनों पक्षों का उदारता पूर्वक अनुशीलन किया है और ज्ञान की गुरुता से दोनों के ही उपादेय क्षेत्रों को अपनी शोध रचनाओं में समावेश करके नयी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। इनकी शोध रचनाओं में न तो भारतीय दृष्टिकोण के विरुद्ध हठवादिता है और न पाश्चात्य दृष्टिकोण के ग्रहण का दुराग्रह; अपितु दोनों का सम्यक् निर्वाह कर विरल समीक्षा के प्रतिमान खोजने की चेष्टा दिखायी देती है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की तीन शोध कृतियों–'हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना। प्रेमचन्द युग', 'हिन्दी उपन्यास मे कथाशिल्प का विकास' तथा 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ' में प्रथम को तो उनकी समीक्षात्मक उपलब्धियों का प्रवर्तन काल कह सकते हैं, दूसरी को प्रसार काल कह सकते हैं और तीसरी कृति उनकी पूर्ण परिपक्व ज्ञान निधि की अनुपम उपलब्धि है।

'हिन्दी उपन्यास मे वर्गभावना : प्रेमचन्द युग' शीर्षक शोध प्रबन्ध में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में चित्रित जमींदार

वर्ग, उच्चवर्ग, पूंजीपति वर्ग, महाजन वर्ग, मध्यम वर्ग, क्लर्क वर्ग, अन्य सायी तथा निम्न वर्ग और श्रमिक वर्ग का रहन-सहन, बौद्धिक जीवन विचारधारा का सम्यक् निरीक्षण किया है। 'हिन्दी उपन्यासों में कथा का विकास' शीर्षक प्रबन्ध में उनकी अनेक मौलिक चिन्ता धारायें मिल जिनका पूर्ण परिपाक 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की वि प्रवृत्तियाँ' शीर्षक प्रबन्ध में मिलता है। अब हम डा० टण्डन जी के स सम्बन्धी प्रतिमानों के अध्ययन एवं मूल्यांकन का प्रयत्न करेंगे, जिससे दिशा में प्रदान की गयी उपलब्धियों से अवगति हो सके।

साहित्य के स्वरूप पर विचार--

'हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास' नामक प्रबन्ध में डा० प्र नारायण टण्डन ने साहित्य की परिभाषा, उद्देश्य, उसके विषय साहित्य श शाश्वतता तथा साहित्य का आधार आदि पर विचार किया है। ये वि उनके मौलिक चिन्तन पर तो प्रकाश डालते हैं ही, पाठकों के अध्ययन लिए अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री भी प्रदान कर देते हैं, जिस एक ही स्थान पर पाठकों को सब 'कुछ' प्राप्त हो जाता है।

साहित्य की परिभाषा—साहित्य विषयक परिभाषाओं में डा० प्रता नारायण टण्डन ने भारतीय और पाश्चात्य, दोनों ही मतों को लिया है अन्यान्य आलोचकों की तरह साहित्य के स्वरूप पर उन्होंने अपने मत क आरोपण नहीं किया। फिर भी साहित्य का मूल प्रयोजन वे आत्मानुभूति ही मानते हैं। उन्होंने लिखा है, 'साहित्य में मनुष्य अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है।'* डा० प्रतापनारायण टण्डन ने आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के साहित्य के प्रयोजन सम्बन्धी कथन की भी व्याख्या की है। वाजपेयी जी ने लिखा है कि 'साहित्य की सृष्टि आत्मानुभूति की प्रेरणा से होती है' † तो

* हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २०।

† आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४६४।

डा० प्रतापनारायण टण्डन लिखते हैं—'साहित्य के प्रयोजन के विषय में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—'साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति है। यहां 'प्रयोजन' और 'आत्मानुभूति' शब्दों पर विचार कर लेना आवश्यक है। 'प्रयोजन' शब्द कभी निमित्त के अर्थ में आता है और कभी उद्देश्य के अर्थ में व्यवहृत होता है। इससे कभी हेतु या कारण का अर्थ लिया जाता है, और कभी फल या कार्य का। विशेषकर हिन्दी में इसके प्रयोगों में बड़ी विभिन्नता है। यहां हम इसका प्रयोग हेतु या प्रेरक के अर्थ में कर रहे हैं। आत्मानुभूति साहित्य का प्रयोजन है, इसका अर्थ हम यह लेते हैं कि आत्मानुभूति की प्रेरणा से ही साहित्य की सृष्टि होती है।* साहित्य में वे यथार्थता के विषय में कहते हैं—"साहित्य, सही अर्थों में तभी साहित्य कहा जायेगा, जब उसमें किसी सत्य को प्रस्तुत किया गया हो। सत्यता उसका सर्वप्रथम महत्वपूर्ण गुण है। प्रभावात्मकता इसी से सम्बद्ध विशेषता है। जो साहित्य सत्य पर आधारित नहीं होगा, वह प्रभावात्मकता की दृष्टि से भी हीन होगा। अतः साहित्य में यथार्थ का अभाव नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह मनुष्य की अनुभूतियों को तीव्रता नहीं दे सकेगा और अपने उद्देश्य से हट जायेगा।"†

वैसे 'आत्मानुभूति' शब्द दर्शन से सम्बन्धित है और 'यथार्थवाद' की सीमा से आबद्ध है, किन्तु उनका अन्तःसूत्र मानस से सन्निहित होने के कारण पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया जा सकता। डा० नगेन्द्र साहित्य का सम्बन्ध दार्शनिक अतिवादों से न मानकर जीवन से मानते हैं; ‡ लेकिन डा० प्रताप-नारायण टण्डन उस अभिव्यक्ति को यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि जो साहित्य सत्य-यथार्थ के धरातल पर आधारित नहीं होगा, वह प्रभावात्मकता की दृष्टि से भी हीन होगा। इस दृष्टि से इनके द्वारा प्रति-पादित साहित्य के उद्देश्य या प्रयोजन समाज सापेक्ष्य हैं और जीवन के अधिक निकट हैं, फलतः अधिक सही हैं। क्योंकि कालान्तर में वही साहित्य अपनी

---

* हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ २१

† वही, पृष्ठ २१

‡ विचार और विवेचन : डा० नगेन्द्र (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ६५

सार्थकता स्थिर रख पायेगा जो मानव जीवन के सार्वभौम और मा
प्रश्नों के निदान लिए सदा होगा। इसलिए डा० प्रतापनारायण ट
दृष्टिकोण अधिक व्यापक और सशक्त है।

साहित्य के विषय—साहित्य को 'रसो वै सः' कहकर हमारे मनी
षी ने परमानन्द सहोदर कह दिया है। क्योंकि वह हमारी रुचि का प
करके उसका स्तर ऊँचा उठाता है। लेकिन डा० प्रतापनारायण ने
अनुराग-विराग तथा सुख दुःख को ही साहित्य का विषय माना है। वे
है—"सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है, कि मूल रूप से अनुराग
तथा सुख-दुःख ही साहित्य के विषय हैं। • • • प्रभाव की दृष्टि
जायें तो मनुष्य पर किसी देखी हुई साधारण घटना की अपेक्षा किसी प
घटना का प्रभाव अधिक गहरा और स्थायी रूप से पड़ता है। मनुष्य
के माध्यम से अपने आवेष्टन के विभिन्न पहलुओं के ज्ञान को अर्जि
चाहता है, क्योंकि उनका सम्बन्ध सीधे उसके जीवन से होता है। इ
मनुष्य के कार्यकलापों के विषय में उसे निर्देशित करने की चेष्टा कर
यह संसार से व्यक्ति का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का
करता है।"*

जैसा कि हम अभी पहले लिख चुके हैं, साहित्य मानव सापेक्ष्य होत
अतः उसका मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इस दृष्टिकोण
और अधिक व्यापक रूप में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने देखा, और
साहित्य विषयक विचारों को उसी के अनुसार पूर्णता प्रदान की। वस्तुत
साहित्यकार की चेतना स्पष्ट रूप से यह देखती है और अनुभव करती है
मानव रूप चिरन्तन काल से परिवर्तनशील रहा है और प्रत्येक युग में न
तत्त्वों को ग्रहण करता है। अतः साहित्य भी कभी उससे प्रेरणा लेकर
कभी एकरसता के जीवन से ऊबे मानव को नवीन दिशा की प्रेरणा देकर
नये (युगानुरूप) रूपों का ग्रहण करता चलता है; अतः हर नये युग में न
नये विषयों की आवश्यकता होती है; पर यह आवश्यकता होती मानव सा
ही है।

* हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण
पृष्ठ ५१।

साहित्य का आधार—साहित्य का आधार क्या है, इस प्रश्न पर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन के विचार सर्वथा मौलिक हैं, पर ऐसे मौलिक नहीं हैं कि मौलिकता की होड़ में काल्पनिक हो गये हों। उनके ये मौलिक विचार अधिक शाश्वत और मस्तिष्क ग्राह्य हैं।

प्रेमचन्द ने तो साहित्य का आधार जीवन माना है। जीवन की आधार शिला पर ही साहित्य के महल, अटारियां और गुम्बद बनते हैं ; और जैनेन्द्र आनन्द को साहित्य का आधार बताते हैं। उनके अनुसार जीवन का उद्देश्य आनन्द ही है, मनुष्य जीवन पर्यन्त आनन्द की खोज में पड़ा रहता है, लेकिन साहित्य का आनन्द इस आनन्द से ऊंचा है, इससे पवित्र है, इसका आधार सुन्दर और सत्य है। ऐश्वर्य या भोग के आनन्द में ग्लानि छिपी हुई है ; इससे अरुचि भी हो सकती है, पश्चाताप भी हो सकता है ; पर सुन्दर साहित्य के द्वारा जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अखंड है, अमर है।' *

प्रश्न होता है, साहित्य सर्जन का आधार यदि जीवन मान लिया जाये, तो उसे प्रेरणा कौन देगा ? प्रेरणा देने से तो साहित्य सृजित हो नहीं जाता, इसके लिये कवि या साहित्यकार की अपनी रुचि भी होनी चाहिये। एक ही घटना को एक साधारण व्यक्ति देखता है, किन्तु उसके हृदय में उस घटना का कोई प्रभाव नहीं होता, वह कोई साहित्य नहीं लिख पाता, किन्तु उसी घटना को एक संवेदनशील साहित्यकार देखता है और उसके हृदय से उमड़ी साहित्य-धारा सबको आनन्द मे आप्लावित कर लेती है। क्रौंच वध बहेलिये द्वारा न जाने कितनी बार हुए होंगे, न जाने कितनों ने देखा होगा, पर कुछ अर्थ न निकला, पर आदिकवि वाल्मीकि ने देखा, उनका आर्द्र हृदय पिघल पड़ा और 'मा निषाद् प्रतिष्ठाम्·······' के रूप में 'रामायण' की सर्जना का अक्षय स्रोत खुल गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य का मूल आधार न तो जीवन ही है और न आनन्द ही। ये दोनों तो प्रबुद्ध एवं सहृदय साहित्यकार की प्रेरक शक्तियां हैं—जीविका को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली शक्तियां हैं—मूल

---

* विचार वल्लरी (सं जैनेन्द्र कुमार), पृष्ठ २८।

कथा साहित्य के साथ ही विदेशी उपन्यासों के प्रभाव को भी अस्वीकारा नहीं है। साथ ही उनकी विवेचना में दृष्टव्य यह है कि विभिन्न युगीन उपन्यासों का मूल्यांकन उन्होने तत्कालीन परिस्थितियों में तो किया ही है, आधुनिक युग के लिए उनकी उपादेयता के आकलन से भी नहीं चूके हैं। हिन्दी के प्राचीनतम कथा-साहित्य (भारतेन्दु युग से पूर्व) की कृतियों पर समालोचना करते हुए वे कहते है ;—'वास्तव मे जिस आदि कथा साहित्य और उसकी विविध विकसित धाराओं का प्रभाव परवर्ती विकास युगों में लक्षित होता है ० ० यों तो इन सभी कृतियों का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से है, या भाषा की दृष्टि से ; साहित्यिकता तथा कलात्मकता की दृष्टि से नहीं। परन्तु यह एक महत्वपूर्ण बात है कि इन कथा कृतियों ने कथा परम्परा की कड़ी के रूप मे न केवल भावी कथा साहित्य को भूमि दी, वरन् एक क्षीण सूत्ररेखा से उसे सम्बद्ध भी किया।' *

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास पर डा० टण्डन जी के विचार—हिन्दी उपन्यासों मे सर्वप्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास कौन सा है, इस पर विद्वानों मे मतभेद है। पर यह मतभेद ऐसा नहीं है कि उसका निराकरण न किया जा सके। बुद्धि तुला पर तथ्यों को तौलने पर यथार्थ सामने आ ही जाता है। यह मतभेद हिन्दी के दो उपन्यासों—लाला श्री निवासदास लिखित परीक्षागुरु' और प० श्रद्धाराम फुल्लोरी कृत 'भाग्यवती' उपन्यास—को लेकर है। इसी तर्क-वितर्क के संघर्ष में तीसरा उपन्यास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'पूर्णप्रभा चन्द्र' है। लेकिन इस उपन्यास को हम इस विवाद की सीमा से इसलिये परे कर देते हैं, क्योंकि यह कृति गुजराती से अनूदित मात्र है। अनुवाद मल्लिका देवी ने किया था और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसे शोधा मात्र था। † अब हमारे सामने दो ही उपन्यास 'परीक्षागुरु' और 'भाग्यवती' रह जाते हैं। इसमे कौन सा उपन्यास प्रथम कहा जाये, इसी पर मतभेद है। डा० प्रतापनारायण टण्डन 'परीक्षागुरु' उपन्यास को ही सर्वप्रथम मौलिक

---

* हिन्दी उपन्यसों में कथाशिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १२३-१२४

† वही, पृष्ठ १४५

माना, डा० प्रतापनारायण टण्डन ने भी कैसे अपना मन्तव्य इस
दे डाला ? इतना ही नहीं, इस विषय में वे आगे लिखते हैं—'भाग्य
मौलिक रचना है, तो निश्चय ही उसे हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक
माना जा सकता है, किन्तु हिन्दी का प्रथम सफल और मौलिक उपन्य
श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' ही है × × ।' *

समझ नही आता डा० प्रतापनारायण टण्डन को 'भाग्यवती' उ
मौलिकता के विषय में सन्देह किन सूत्रों से हो गया, जो 'यदि मौलि
है; तो' जैसे वाक्य लिखने की प्रेरणा दे गये। उसकी मौलिकता तो
है, प्रकाशन भी 'परीक्षा गुरू' से पूर्व ही हुआ, अतः उसे उनको दृढ़
मौलिक उपन्यास (सर्व-प्रथम) उपन्यास लिखना चाहिये था। कि
ऐसा न करके इतने महत्वपूर्ण विषय पर भी चलताऊ रूप से अन्य
का ही अनुकरण किया, ऐसा इस प्रबुद्ध समीक्षक के लिये ठीक जंच
और न ही इसकी उनसे आशा ही की जा सकती थी।

शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों की संभावन पर विचार—

'हिन्दी उपन्यास कला' की विवेचना करते हुए हम लिख चुके हैं
प्रतापनारायण टण्डन की उपन्यास के भविष्य के विषय में आशाज
उज्ज्वल मान्यतायें हैं, जिसमे सुन्दर भविष्य के दर्शन होते हैं † किन्तु
उनके उपन्यास सम्बन्धी शिल्पगत विचारों का अवलोकन करेंगे।

डा० प्रतापनारायण टंडन यत्र-तत्र संसार भर के उपन्यासों के
हिन्दी उपन्यासों का रूप स्थिर करते चले हैं। इस दृष्टि से
दृष्टि एक सीमा मे संकुचित न रह कर सम्पूर्ण विश्व तक विस्त
लेकिन फिर भी, इस समन्वय मे भी, उनकी नजर की बारीकी अप

* हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण
पृष्ठ १४६
* हिन्दी उपन्यास कला : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १७३।

विषय को नहीं छोड़ती। आज के और प्राचीन उपन्यासों के शिल्पगत अन्तर का स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं। × × × आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं में जो औपन्यासिक कृतियाँ उपलब्ध थी, उनमें और आज के उपन्यासों मे, इस दृष्टि से भारी भेद पाया जाता है। लेकिन यहाँ केवल हिन्दी उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में ही इस विकास का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जायेगा।" *

डा० प्रतापनारायण टंडन जी के अनुसार हिन्दी उपन्यास में जो प्रगति हुई है, जीवन के परिवर्तित मानदण्डों से अपना तादात्म्य स्थापित करते चलते इन उपन्यासों की जो रूप-रेखा निर्धारित हुई है, उसे देखकर यह नही लगता कि महान प्रतिभाओ के अभाव से गतिरोध उत्पन्न हो गया हो। अभी तक तो वर्तमान मानव जीवन के अनुरूप अपने साहित्य को बनाने मे उपन्यासकारों को सफलता ही मिलती गयी है, यद्यपि आज संभवतः संसार की प्रत्येक समृद्ध भाषा के साहित्यकारों के सामने यह समस्या अत्यन्त गम्भीर रूप मे उपस्थित है।† लेखक यह कह कर हिन्दी उपन्यासों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है, कि ससार की सभी भाषाओं के उपन्यासकारों के सामने इस प्रकार की गतिरोध की समस्या आ खड़ी हुई है, किन्तु हिन्दी के सामने यह प्रश्न महत्वहीन है, क्योकि इस क्षेत्र मे उन प्रतिभाओं के अभाव के चिन्ह भी दृष्टिगत नहीं हो रहे है जिनके समान शक्तिशाली और क्षमतावान प्रतिभाओं के न होने से इसकी संभावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, और बहुत शीघ्र ही गतिरोध के बादल साहित्याकाश पर छा जाते हैं। ‡

आज का उपन्यासकार इस बात का स्पष्ट अनुभव करता है कि आज का पाठक उपन्यास को इस उद्देश्य से नहीं पढ़ता था, जिस उद्देश्य से सौ वर्ष पूर्व का पाठक पढ़ता था, वह यह भी जानता है कि उपन्यास के मूल रूप में भी पूर्ण परिवर्तनशीलता लक्षित नही होनी चाहिये, जिससे उस विधा से पूर्ण

* हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३४७।

† वही, पृष्ठ ३४६।

‡ वही, पृष्ठ ३४६।

वह उस जीवन खण्ड को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सामने रख सकता है, जिसे व्यक्त करने का उसका प्रमुख उद्देश्य होता है। अतीत की इन घटनाओं के समावेश-सम्बन्धी शिल्प के सम्बन्ध में डा० प्रतापनारायण टण्डन लिखते हैं—'शिल्प की दृष्टि से यह उत्तम होता है कि वे किसी विचारधारा के सन्दर्भ में उड़ती सी आयें और सार की बात प्रकट करती चली जाएँ, जिससे वर्तमान के स्वरूप निर्माण का रहस्य प्रकट होता हो, न कि वे घटनाएँ उपन्यास की मूल कथा को आक्रान्त कर दें।' *

आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के पीछे नये विकास की संभावनायें लक्षित होती हैं। डा० टण्डन इस विकास को आकस्मिक नहीं मानते और न किसी विशेष अवसरों की देन ही मानते हैं। उनके अनुसार 'सामयिक विचारधाराओं में ही, पुरातनता के बीच, नये विकास के रूप सदैव दिखायी देते हैं और आगे चल कर विकास को प्राप्त होने पर वे ही नवीनता का रूप प्राप्त कर लेते हैं।' †

यहाँ डा० प्रतापनारायण टण्डन की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि अवलोकनीय है। वे विकास को एक शाश्वत नियम के रूप में ग्रहण करते हैं और विकसित नियमों को ही नवीन रूप का प्राप्त होना ही स्वीकारते हैं। इस दृष्टिकोण से एक ओर साहित्य की अनवरुद्ध धारा का प्रतिपादन होता है तो दूसरी ओर उस सामञ्जस्यकारी मनोवृत्ति का भी परिचय मिलता है जो सबको अपने में और अपने में सबको देखने की भावना से विश्वजन हिताय कार्य करती है।

जे० डब्ल्यू० बीच ने आधुनिक युग के उपन्यासों पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया है कि ज्यों-ज्यों उपन्यास कला का विकास हुआ है, त्यों-त्यों उपन्यास लेखक की छाया उपन्यास पर कम होती चली गयी है। उपन्यास कला के प्रौढ़ता को प्राप्त होने का ही एक यह परिणाम हुआ है कि अब वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये, कथा को शृंखलाबद्ध करने के लिये अथवा

---

* हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३५२।

† वहीं, पृष्ठ ३४८।

अलग हट जाये । अतः पुराने उपन्यासों में और आज के उपन्यासों में जी के अनुसार जो महत्वपूर्ण अन्तर मालूम होता है, वह उसके कथ क्षेत्र का है । यद्यपि बाह्य और आन्तरिक रूपों से सम्बद्ध अन्य अनेक भी खोजे जा सकते हैं, पर मूल महत्व इसी दिशा को है । मनोवैज्ञानि पा लेने से उपन्यासों का कलेवर ही बदल गया (यद्यपि आत्मा वही रह कथानक तत्व का क्रमशः ह्रास ही होता गया है ।* यहाँ डा० प्रताप टण्डन ने दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं, (१) इस कथानक—ह्रास के से कारण हैं ? (२) क्या यह कथानक—ह्रास युग की आवश्यकताओं स्वरूप हुआ है ? फिर दोनों का निदान भी प्रस्तुत किया है । साथ अनुसार उपन्यासों ने पुराने ढंग के चरित्र-चित्रण को छोड़ा भी नहीं कथा भेद में इतना अन्तर अवश्य है कि आज यह आवश्यक नहीं सम कि किसी बड़े या महत्वपूर्ण उपन्यास के लिये कथा का फैलाव भी अधिक अथवा जटिल होना चाहिए । आज ऐसे भी अनेक उच्चकोटि न्यास मिल जायेंगे, जिनमें केवल एक सप्ताह, एक दिन, कुछ घन्टों चन्द मिनटों की कथा है । और यह एक तथ्य है कि श्रेष्ठता या कल में वे उन उपन्यासों से हीन नहीं कहे जा सकते जिनमें एक लम्बी अ जीवन-घटनाओं को एक सूत्र में पिरोया गया है । यह कहने की आव नहीं होनी चाहिये कि अपेक्षाकृत इन उपन्यासों में ही अधिक प्रभाव, मार्मिकता और अधिक तीखापन पाया जाता है । †

डा० प्रतापनारायण टंडन के अनुसार द्वन्द्व के समावेश से भी घटना फैलाव कम करके उसके कथा-शिल्प में मौलिकता का विकास किया है । का उपन्यासकार उन बातों को व्यर्थ समझता है, जिनका समावेश कथावृत्ति में करना पूर्ववर्ती उपन्यासकार आवश्यक समझते थे । आज के न्यासकार के सामने अतीत का महत्व इतना ही है कि उनकी पृष्ठभूमि

---

* हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण पृष्ठ १५० ।

† वही, पृष्ठ १५० ।

यह उस जीवन खण्ड को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सामने रख सकता है, जिसे व्यक्त करने का उसका प्रमुख उद्देश्य होता है। अतीत की इन घटनाओं के समावेश-सम्बन्धी शिल्प के सम्बन्ध में डा० प्रतापनारायण टण्डन लिखते हैं—'शिल्प की दृष्टि से यह उत्तम होता है कि वे किसी विचारधारा के सन्दर्भ में उड़ती सी आयें और सार की बात प्रकट करती चली जाएं, जिससे वर्तमान के स्वरूप निर्माण का रहस्य प्रकट होता हो, न कि वे घटनाएँ उपन्यास की मूल कथा को आक्रान्त कर दें।' *

आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के पीछे नये विकास की संभावनायें लक्षित होती हैं। डा० टण्डन इस विकास को आकस्मिक नहीं मानते और न किसी विशेष अवसरों की देन ही मानते हैं। उनके अनुसार 'सामयिक विचारधाराओं में ही, पुरातनता के बीच, नये विकास के रूप सदैव दिखायी देते हैं और आगे चल कर विकास को प्राप्त होने पर वे ही नवीनता का रूप प्राप्त कर लेते हैं।' †

यहाँ डा० प्रतापनारायण टण्डन की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि अवलोकनीय है। वे विकास को एक शाश्वत नियम के रूप में ग्रहण करते हैं और विकसित नियमों को ही नवीन रूप का प्राप्त होना ही स्वीकारते हैं। इस दृष्टिकोण से एक ओर साहित्य की अनवरुद्ध धारा का प्रतिपादन होता है तो दूसरी ओर उस सामञ्जस्यकारी मनोवृत्ति का भी परिचय मिलता है जो सबको अपने में और अपने में सबको देखने की भावना से विश्वजन हितार्थ कार्य करती है।

जे० डब्ल्यू० बीच ने आधुनिक युग के उपन्यासों पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया है कि ज्यों-ज्यों उपन्यास कला का विकास हुआ है, त्यों-त्यों उपन्यास लेखक की छाया उपन्यास पर कम होती चली गयी है। उपन्यास कला के प्रौढ़ता को प्राप्त होने का ही एक यह परिणाम हुआ है कि अब वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये, कथा को शृंखलाबद्ध करने के लिये अथवा

---

* हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास : डा. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३५२।

† वही, पृष्ठ ३४८।

किसी रहस्य के स्पष्टीकरण के लिए स्वयं उपन्यास के रंगमंच पर
अच्छा नहीं समझता।*

वस्तुतः आज जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में नित्य नवीन मनो
उदय हो रहा है उससे कभी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता
एक कारण यह भी रहा है कि उसके सही-सही मूल्यांकन की चेष्टाएं
हुयी हैं। यहां लेखक उपन्यासों की कमियों को अपनी दृष्टि में
करता; उधर भी उसकी दृष्टि जाती है, पर संभल कर। लेकिन इस का
उपन्यासों के प्रति दिखायी गयी उदासीनता का ही परिणाम मानना
प्रतापनारायण टंडन इस बात को भली प्रकार समझते हैं, इसीलिये
कि 'इस उदासीनता का ही यह फल हो रहा है कि हिन्दी उपन्यास
मोड़ों पर आकर आगे बढ़ने की चेष्टा करते हुए भी, किसी निश्चि
पर अग्रसर नहीं हो पा रहा है।† फिर भी वे उसके प्रति आशावान
लिखते हैं कि—'इस प्रकार के किये गये और किये जा रहे प्रयत्न उपन्यास
क्रियाशीलता के परिचायक और हिन्दी उपन्यास के भावी उन्नत और
रूप का आभास देने वाले हैं। इसके साथ ही एक बात और भी मह
वह यह कि जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस ओर हिन्दी के किसी
ने मार्ग निर्देशन का कार्य नहीं किया, यद्यपि अब आलोचकों का ध्यान
आकर्षित होता जा रहा है। हमारा अनुमान है कि एक ओर यह प्रवृत्ति
अजागरूकता तथा इस क्षेत्र में उनकी अकर्मण्यता का परिचय देती
दूसरी ओर इसकी प्रगति के विषय में उपेक्षा भाव की भी परिचायक है।'

यहां पर डा० प्रतापनारायण टण्डन के विचार उपन्यासों से हट कर
निक आलोचकों की आलोचना में प्रवृत्त हो गये हैं। लेखक एक कुश
न्यासकार है, इस कारण इस विधा से उसकी अपनत्व-भावना, सहज

---

* Twentieth Century Novel : J. W. Beach.

† हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास : डा. प्रतापनारायण
पृष्ठ ३५८।

‡ वही, पृष्ठ ३५८।

शीलता का होना स्वाभाविक ही है, और तब उसके प्रति प्रदर्शित किया जाने वाला उपेक्षाभाव उसे कदापि सहन नहीं है; इसीलिये उन्होंने दो-चार खरी-खोटी—पर यथार्थ—हिन्दी के समालोचकों को भी सुना दी हैं। इसमें उनका आक्रोश उनके द्वारा प्रदर्शित उपेक्षा-भाव के कारण ही है। इस पर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन उपन्यासों के भविष्य से निराश नहीं हैं, बल्कि आशान्वित ही हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि किसी भी भाषा की उन्नति या स्तरीकरण के लिये चालीस, पचास या सौ वर्ष बहुत कम हैं।*

यदि हम विश्व की अन्य भाषाओं के उपन्यासों का आनुपातिक और तुलनात्मक अध्ययन करें तो देखेंगे कि उन भाषाओं को, जिन्हें आज समृद्ध कहा जाता है, अपने निर्माण में कई-कई सौ वर्ष लगाने पड़े हैं। अतः हिन्दी—और हमारा तात्पर्य निश्चय ही खड़ी बोली से है—भले ही उसकी सीमायें चारों ओर विस्तार से फैली हुई नहीं हैं—यदि हमारे सौ वर्षों से भी कम—अस्सी या पच्चासी वर्ष—समय के प्रयत्नों का फल है, तो भविष्य कुछ निराशा-जनक नहीं है। अपितु, इसके विपरीत, हिन्दी की औपन्यासिक प्रगति, इस बात का स्पष्ट संकेत करती है, कि भविष्य में—यदि उसका विकास क्रम और गतिशीलता ऐसी ही रही—यह संसार की समृद्ध भाषाओं के उपन्यास-साहित्य से समता कर सकेगा।†

समीक्षा और शोध पर डा० टण्डन जी के विचार—

'हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास' में उनकी अनेक मौलिकतायें प्रतिभासित होती हैं, किन्तु शोध-समीक्षा सम्बन्धी उनकी अन्यतम कृति 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ' है। इस ग्रन्थ का समीक्षा-विषय मात्र हिन्दी भाषा में उपलब्ध साहित्य न होकर 'विश्व समीक्षा शास्त्र का सैद्धान्तिक इतिहास तथा विविध देशों की प्रमुख भाषाओं तथा

---

* हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ ३५८।

† वही, पृष्ठ ३५६।

किसी रहस्य के स्पष्टीकरण के लिए स्वयं उपन्यास के रंगमंच पर आ
अच्छा नहीं समझता।*

वस्तुत: आज जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में नित्य नवीन मनोवृ
उदय हो रहा है उससे कभी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है
एक कारण यह भी रहा है कि उसके सही-सही मूल्यांकन की चेष्टाएं
हुयी हैं। यहां लेखक उपन्यासों की कमियों को अपनी दृष्टि से बहि
करता; उधर भी उसकी दृष्टि जाती है, पर संभल कर। लेकिन इस कम
उपन्यासों के प्रति दिखायी गयी उदासीनता का ही परिणाम मानता
प्रतापनारायण टंडन इस बात को भली प्रकार समझते हैं, इसीलिये
कि 'इस उदासीनता का ही यह फल हो रहा है कि हिन्दी उपन्यास
मोड़ों पर आकर आगे बढ़ने की चेष्टा करते हुए भी, किसी निश्चि
पर अग्रसर नहीं हो पा रहा है।† फिर भी वे उसके प्रति आशावान
लिखते हैं कि—'इस प्रकार के किये गये और किये जा रहे प्रयत्न उपन्यास
क्रियाशीलता के परिचायक और हिन्दी उपन्यास के भावी उन्नत और
रूप का आभास देने वाले हैं। इसके साथ ही एक बात और भी महत्
वह यह कि जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस ओर हिन्दी के किसी आ
ने मार्ग निर्देशन का कार्य नहीं किया, यद्यपि अब आलोचकों का ध्यान इ
आकर्षित होता जा रहा है। हमारा अनुमान है कि एक ओर यह प्रवृत्ति
अजागरूकता तथा इस क्षेत्र में उनकी अकर्मण्यता का परिचय देती
दूसरी ओर इसकी प्रगति के विषय में उपेक्षा भाव की भी परिचायक है।‡

यहां पर डा० प्रतापनारायण टण्डन के विचार उपन्यासों से हट कर
निक आलोचकों की आलोचना में प्रवृत्त हो गये हैं। लेखक एक कुशल
न्यासकार है, इस कारण इस विधा से उसकी अपनत्व-भावना, सहज

* Twentieth Century Novel : J. W. Beach.
† हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास : डा. प्रतापनारायण
पृष्ठ ३५८।
‡ वही, पृष्ठ ३५८।

हीनता का होना स्वाभाविक ही है, और तब उसके प्रति प्रदर्शित किया जाने वाला उपेक्षाभाव उसे कदापि सहन नहीं है; इसीलिये उन्होंने दो-चार खरी-खोटी—पर यथार्थ—हिन्दी के समालोचकों को भी सुना दी हैं। इसमें उनका आक्रोश उनके द्वारा प्रदर्शित उपेक्षा-भाव के कारण ही है। इस पर भी डा० प्रतापनारायण टण्डन उपन्यासों के भविष्य से निराश नहीं हैं, बल्कि आशान्वित ही हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि किसी भी भाषा की उन्नति या स्तरीकरण के लिये चालीस, पचास या सौ वर्ष बहुत कम हैं।*

यदि हम विश्व की अन्य भाषाओं के उपन्यासों का आनुपातिक और तुलनात्मक अध्ययन करें तो देखेंगे कि उन भाषाओं को, जिन्हें आज समृद्ध कहा जाता है, अपने निर्माण में कई-कई सौ वर्ष लगाने पड़े हैं। अतः हिन्दी—और हमारा तात्पर्य निश्चय ही खड़ी बोली से है—भले ही उसकी सीमायें चारों ओर विस्तार से फैली हुई नहीं हैं—यदि हमारे सौ वर्षों से भी कम—अस्सी या पच्चासी वर्ष—समय के प्रयत्नों का फल है, तो भविष्य कुछ निराशा-जनक नहीं है। अपितु, इसके विपरीत, हिन्दी की औपन्यासिक प्रगति, इस बात का स्पष्ट संकेत करती है, कि भविष्य में—यदि उसका विकास क्रम और गतिशीलता ऐसी ही रही—यह संसार की समृद्ध भाषाओं के उपन्यास-साहित्य से समता कर सकेगा।†

समीक्षा और शोध पर डा० टण्डन जी के विचार—

'हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास' में उनकी अनेक मौलिकतायें अभिव्यक्त होती हैं; किन्तु शोध-समीक्षा सम्बन्धी उनकी अन्यतम कृति 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ' है। इस ग्रन्थ का समीक्षा-विषय मात्र हिन्दी भाषा में उपलब्ध साहित्य न होकर 'विश्व समीक्षा शास्त्र का सैद्धान्तिक इतिहास तथा विविध देशों की प्रमुख भाषाओं तथा

---

* हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ १२८।

† वही, पृष्ठ १२६।

परिवर्तनों के कारणों की खोज की गयी है और वे स्थायी हैं अथवा उनमें स्थायित्व है तो क्या सम्यक्ता है और यदि वे अस्थायी अपूर्णता है, इसकी विशिष्ट रूप से–अनुसन्धानात्मक रूप से–विवेचन है।* इस दृष्टि से इस कृति में नवीन खोजें भी हैं और उपलब्ध नवीन प्रकार से प्रस्तुतीकरण भी है। इन दोनों को ही इस विषय-क्रम के अनुसार विभाजित करके वैज्ञानिक रूप से गति दी गय कृति का प्रत्येक अध्याय अपने में पूर्ण है और अनेक नवीन उपलब्धि हुए हैं।

इस शोध प्रबन्ध के पहले अध्याय में सैद्धान्तिक रूप से समीक्षा व्यापक स्वरूप की विवेचना की गयी है। समीक्षा का सम्बन्ध प्राचीन जोड़ कर समीक्षक प्रवर डा० प्रतापनारायण टण्डन ने 'समीक्षा' शब्द सन्दर्भों में नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। फिर समीक्षा और शोध के स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। एक स्थूल दृष्टि डालने पर समीक्षा पर्याय से दीखते हैं, पर उनकी यह व्याख्या पढ़ कर दोनों में पर्याप्त गत होने लगता है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने शोध का अर्थ, शोध के शोध का क्षेत्र, शोध का विभाजन, शोधकर्ता की योग्यताएं, तथा प्रकारों का उल्लेख किया है। यहीं पर उनके चिन्तन में काफी प्र वर्गीकरण में वैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। समीक्षा के सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए उन्होंने समीक्षक और लेखक का दृष्टिकोण और दे हुए पाठक, लेखक और समीक्षक के अनिवार्य गुणों की ओर संकेत किया सन्दर्भ में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है, कि उत्तम लेखक के लिए जो गुण दयता, सुशिक्षा, निष्पक्षता, उदारता, सौन्दर्यानुभूति, रचनात्मक प्रति पर अधिकार तथा मूल्यांकन का दृष्टिकोण) आवश्यक हैं, उन्हीं गुणों में भी होना चाहिये, तभी पाठक उस साहित्य का पूर्ण आनन्द ले पायेगा तरह समीक्षक की दृष्टि भी इन्हीं गुणों से ओतप्रोत–वाद-विवाद तटस्थ होनी चाहिए, अन्यथा समीक्षा पक्षपात पूर्ण हो जायेगी।

---

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ : डा नारायण टण्डन, पृष्ठ ३३

समीक्षक के दायित्वों पर विचार करते समय यह संकेत किया गया है कि यह कार्य एक वैज्ञानिक और शास्त्रीय कार्य है, अतः विषय की पूर्ण योग्यता का होना परम आवश्यक है। जहां तक समीक्षा के क्षेत्र का प्रश्न है, उसका विस्तार भी उतना ही है जितना साहित्य का है।

समीक्षा के लिए चिन्तना शक्ति का होना आवश्यक है। समीक्षा के क्षेत्र में जब किसी वैचारिक मतवाद को प्रश्रय मिलता है, तब यह इसलिए नहीं होता कि उसे किन्हीं नवीन शैलियों को ग्रहण करना अनिवार्य है। अपितु इस-लिए कि उस पर किसी वाद अथवा विचार विशेष का प्रभाव न लद जाये। इसीलिए समीक्षक शास्त्रीय आधारों का निर्वाह करता है। अतः किसी भी युग में समीक्षा के मान निर्धारण से पूर्व पहले के प्रचलित सिद्धान्तों का परीक्षण अनिवार्य हो जाता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने समीक्षा के नवीन मान निर्धारित किये हैं, क्योंकि साहित्य में नये-नये मोड़ों का उदय, नवीन वैचारिक मूल्यों का निर्धारण होने से समीक्षक की हैसियत से उन्हें समृद्ध बनाना, और विभिन्न मानदण्डों के आधार पर तौल कर सजाना, संवारना और निखारना आवश्यक हो जाता है। साहित्य नित्य नये मोड़ ले रहा है, इन मोड़ों को किस रूप में ग्रहण किया जाये, किन संज्ञाओं से अभिहित किया जाये, इसी का समाधान दिया गया है, इस के साथ उनके सामने यह प्रश्न भी रहा है कि वे अपनी पूर्ववर्ती महान् परम्पराओं की उपेक्षा नहीं करते और न ही उनकी उपलब्धियों को अस्वीकार करते हैं, लेकिन साथ ही युगीन यथार्थ का पल्ला भी नहीं छोड़ पाते। इस शोध ग्रन्थ में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने इन्हीं प्रश्नों की विचार भूमि में मान निर्धारित किये हैं, और इन मान निर्धारण में केवल हिन्दी की प्रवृत्तिगत पृष्ठभूमि की व्याख्या ही नहीं दी है, विश्व समीक्षा की प्राचीन और युगीन विचार भूमियों का अध्ययन भी किया गया है।

दूसरे अध्याय में पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के विकास और विविध सिद्धान्तों के स्वरूप पर उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विचार किया गया है। पाश्चात्य समीक्षा का प्राचीनतम केन्द्र यूनान होने के नाते सबसे पहले वहीं के समीक्षा-त्मक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण हुआ है। यूनान में समीक्षा विषयक विचार स्वतन्त्र रूप से तो मिलते ही हैं, अन्य विषयों की विवेचना करते समय

अप्रत्यक्ष और प्रासंगिक रूप से भी उनके अन्तर्गत इनकी चर्चा की है।
एक विचित्र सत्य है कि यूनान में सर्वप्रथम राजनीतिक विचारों का
होमर के महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडेसी' में मिलता है।*

होमर, हेसियड, पिंडार, गोर्जियास, एरिस्टाफेनीज, सुकरात, प्ले
विचारकों के उन चिन्तन सूत्रों की व्याख्या इसमें की गई है, जिन
यूनानी वैचारिक परम्परा के बीज थे। काव्य कला, नाटक, भाष
तथा समीक्षा के स्वरूप का निदर्शन करने वाले मन्तव्यों के आधार प
दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण किया गया है। इसी संदर्भ में आइस्रोक्रेटीज,
लस, सोफोक्लीज तथा यूरीपाइडीज के विचारों की भी चर्चा की
तत्पश्चात् पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के प्रवर्तक अरस्तू के विचारों के
पर कवि के स्वरूप, काव्य और कला के स्वरूप और तत्व, दुखान्तक नाट
उसके तत्व, सुखान्तक नाटक, महाकाव्य तथा भाषण कला आदि का वि
किया गया है। अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त की व्याख्या भी इसी स
की गई है, क्योंकि अरस्तू ने अनेक कलाओं की भांति काव्य कला
स्रोत भी अनुकरण को ही माना है। वह काव्य की आत्मा के रूप
अनुकरण की व्याख्या करता है। यही नहीं, उसने यहाँ तक कहा है कि
काव्य, दुखान्तक नाटक, गीति काव्य, मुरली वादन तथा वीणा वादन,
अनुकरण की विविध प्रणालियाँ हैं। इनमें पारस्परिक भिन्नता यही है
सबकी शैलियाँ पृथक्-पृथक् रूप से स्वतन्त्र हैं।

अरस्तू के पश्चात् यूनान की इस महान् वैचारिक परम्परा के अ
थियोफ्रैस्टस तथा लोंजाइनस की भी चर्चा की गई है। थियोफ्रैस्टस
अरस्तू की भांति ही कला के विवेचन की परम्परा का प्रसार किया। लो
नस को साहित्य शास्त्रीय महत्व की दृष्टि से अरस्तू के बाद यूनान का
महान् विचारक माना जाता है। उसने साहित्य में उदात्तता के तत्
विवेचना की है। उदात्तता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसने बता
अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता को ही उदात्तता कहते हैं। उ

* राजनीतिक विचारों का इतिहास : कन्हैयालाल वर्मा, पृ०

विचार से संसार के अनेक महान् साहित्य सृष्टा केवल अभिव्यक्ति या भाषण के गुण के फलस्वरूप ही अमर हो चुके हैं। साहित्य उदात्तता की सम्भावनाओं के संदर्भ में उसने कुछ मूल तत्वों की विवेचना की है। लोंजाइनस ने स्पष्ट और दृढ़ रूप से यह प्रतिपादित किया है कि साहित्य की एकमात्र कसौटी सर्वयुगीन रूप से आनन्ददायी होना है। लोंजाइनस ने साहित्य के मूल्यांकन की समस्या पर विचार करते हुए एक समीक्षक के लिए कुछ योग्यताओं का भी निर्धारण किया है। उसके विचार से समीक्षक को कला, दर्शन, सौन्दर्य-शास्त्र और समालोचना का सम्पूर्ण अध्ययन, अनुभव और ज्ञान होना चाहिए, तभी वह अपने गुरुतर कार्य का निर्वाह उचित प्रकार से कर सकेगा। लोंजाइनस के साथ ही प्राचीन यूरोप की इस यूनानी चिंतन परम्परा का अन्त हो गया। इसीलिए लोंजाइनस का नाम इस सुदीर्घ परम्परा की अन्तिम कड़ी के रूप में उल्लिखित किया जाता है। इसके बाद जो यूनानी विचारक हुए, उन्होंने इस परम्परा की समृद्धि में कोई योग नहीं दिया। साहित्य के चिन्तन का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र भी एथेन्स न रहा और एक नई वैचारिक परम्परा का आरम्भ हुआ।

यूनानी साहित्य चिन्तन की परम्परा के अन्त के पश्चात् यूरोप में साहित्य और कला का चिन्तन केन्द्र रोम बन गया, जहाँ लैटिन समीक्षा का आरम्भ और विकास हुआ। यह नवीन वैचारिक परम्परा स्वतन्त्र रूप से बहुत महत्वपूर्ण होते हुए भी अंशतः यूनानी परम्परा के अनुकरण पर ही विकसित हुई। इस रोमीय परम्परा के अन्तर्गत पहला उल्लेखनीय विचारक सिसरो हुआ। सिसरो ने मुख्य रूप से भाषण शास्त्र से सम्बन्धित चिन्तन किया। भाषण शास्त्र विषयक उसके महत्वपूर्ण विचारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के साथ ही साथ काव्य के तत्व तथा समीक्षा के स्वरूप से सम्बन्ध रखने वाले उसके कुछ विचारों का भी संकेत इस संदर्भ में किया गया है। तत्पश्चात् रोमीय चिन्तन की परम्परा के अन्तर्गत आने वाले दूसरे महान् विचारक होरेस के काव्य के स्वरूप, काव्य और अनुकरणात्मकता, नाट्य कला, शैली, विवेचन तथा समीक्षात्मक विचारों का उल्लेख किया गया है। उसकी महत्वपूर्ण देन यह थी कि उसने अनुकरण की नई परिभाषा बनाई और उसकी मौलिक प्रयोगात्मकता पर बल दिया। होरेस के पश्चात् क्विन्टीलियन का आविर्भाव हुआ। उसने रोमीय साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते हुए अपने

विचारों की स्थापना की। क्विन्टीलियन के साथ ही साथ रोम की श
लिक परम्परा का भी अन्त हो गया।

यूनान तथा रोम की परम्पराओं की समाप्ति के पश्चात् यूरोप में पुन
कालीन स्थिति आती है। इस पुनर्जागरण काल के साथ ही कई मौ
अन्तराल के पश्चात् पुनः साहित्य समीक्षा के स्वरूप का प्रसार हुआ।
सोलहवीं शताब्दी से अंग्रेजी समीक्षा का व्यवस्थित रूप में आरम्भ
जिसके अन्तर्गत स्टीफेन हॉज, सर टॉमस विल्सन, सर जॉन चीक, अर्शा
विचारकों के साथ ही साथ कुछ अन्य चिन्तकों के विचारों का भी वि
किया गया है, जिनमें सर फिलिप सिडनी का नाम विशेष रूप से उल्ले
है। सिडनी के काव्य विषयक विचारों तथा अनुकरण सिद्धांत के सम
कारणों की ओर भी यहाँ संकेत किया गया है। सिडनी भी अरस्तू की
काव्य को अनुकरण की ही एक कला मानता था। सिडनी के पश्चात्
जेम्स, एडमंड स्पेंसर, गैब्रियल, हार्वे, विलियम वेब, पुटन हाम, से
डेनीयल आदि के प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर उनके सिद्धान्तों की विवेचन
गई है। फ्रांसिस बेकन के सिद्धांतों में काव्य से सम्बन्धित विचारों व
उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। सर जॉन हेरिंग्टन, फ्रांसिस मं
जॉन वेब्सर, विलियम वाघन, बोल्टन, पीयम तथा टॉमस कैम्पियन के
ही साथ इस युग के महत्वपूर्ण चिन्तक बेन जानसन के कुछ सिद्धान्तों का
चय भी प्रस्तुत किया गया है।

सोलहवीं शताब्दी तक फ्रांसीसी समीक्षा का जो विकास मिलता है, उ
अन्तर्गत विशेष रूप से वुकेशियो तथा देशियें आदि के विचार ही मुख्य
इसी प्रकार से सोलहवीं शताब्दी तक इटैलियन समीक्षा के अन्तर्गत द
पैट्रीयार्क, वीडा तथा पैट्रीज की चर्चा की गई है। सोलहवी शताब्दी तक स
समीक्षा में संत इसीडोर, लल और लुई विवे के विचारों का उल्लेख किया
है। तत्पश्चात् १७वीं शताब्दी के अन्तर्गत इटली, फ्रांसीसी, जर्मन तथा अं
समीक्षा के विकास पर विचार किया गया है। प्रारम्भिक अंग्रेजी समीक्षको
इस शताब्दी के सर विलियम डेवनेंट, टॉमस हॉब्स, जॉन मिल्टन, एब्रा
काउली आदि के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। जॉन ड्राइडन इस शताब्दी
महान् चिंतक था। उसके विचारों में काव्य के स्वरूप, काव्य में कल्पना त

काव्य में लयात्मकता, काव्य और महाकाव्य, नाटक, हास्य रचना और प्रहसन, कला और चित्रकला, अनुवाद की कला तथा प्रमुख समीक्षात्मक विचारों का परिचय दिया गया है। ड्राइडन इस शताब्दी का ऐसा समीक्षक था, जिसमें यूरोप की पूर्ववर्ती महान् परम्पराओं की विशद अवगति के साथ ही साथ असाधारण विवेक शक्ति थी। इसलिए उसका महत्व इस समय तक के अंग्रेजी समीक्षकों में अन्यतम है। इस शताब्दी के अन्तर्गत ही अन्य अंग्रेजी समीक्षकों में टॉमस राइमर, टॉमस स्प्रेट, विलियम विंस्टेमली, सर विलियम टेम्पिल, रिचर्ड बेंटली, जरेमी कोलियर, सर टॉमस पोप, ब्लाउंट आदि का भी उल्लेख किया गया है।

१८वीं शताब्दी में पाश्चात्य समीक्षा के विकास के अन्तर्गत इटली, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी तथा इंगलैंड की समीक्षा परम्पराओं का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जॉन डेनिस, एडवर्ड विशी, प्रिरर, जोसफ एडीसन, सर रिचर्ड स्टील, फ्रांसिस एटरबरी, जोनेदन स्विफ्ट, एलेक्जेंडर पोप, जेम्स हेरिस, जॉन ब्राउन आदि की चर्चा अंग्रेजी समीक्षकों के अन्तर्गत की गई है। इस शताब्दी की प्रमुख वैचारिक विभूति के रूप में डॉ० सेमुअल जानसन को मान्य किया गया है, क्योंकि उनका वैचारिक व्यक्तित्व और महत्व असाधारण था। आधुनिक युगीन समीक्षा के अन्तर्गत इटली के क्रोचे की चर्चा की गई है, जिसने एक सौंदर्य शास्त्री और दार्शनिक होते हुए भी साहित्य चिंतन के क्षेत्र को विशद रूप से प्रभावित किया। फ्रांसीसी समीक्षा के अन्तर्गत ज्याँ पॉल सार्त्र का उल्लेख भी किया गया है। वह वर्तमान समय का महान् चिंतक है। स्पेन की समीक्षा के अन्तर्गत विविध प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए आधुनिक जर्मन चिंतन में लेसिंग की चर्चा विशेष रूप से की गई है। आधुनिक युगीन रूसी समीक्षा में लोमोनोसोव, बेलिंस्की, मिखायलोवस्की तथा टॉलस्टाय के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। आधुनिक युगीन अमेरिकी समीक्षा में हेनरी जेम्स, स्टेडमैन तथा स्पिनगार्न की चर्चा विशेष रूप से की गई है। आधुनिक युगीन अंग्रेजी समीक्षकों में विलियम वर्ड्स्वर्थ, कॉलरिज, कॉरलाइल, मैथ्यू आर्नल्ड, आई० ए० रिचर्ड्स, टी० एस० इलियट तथा ई० एम० फार्स्टर आदि विचारकों के प्रमुख मन्तव्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य समीक्षा परम्पराओं का महत्व और समीक्षात्मक स्वरूपों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में संस्कृत समीक्षा शास्त्र के विकास का

परिचय देते हुए विविध सिद्धान्तों के स्वरूप का स्पष्टीकरण किया
भारत की चिंतन परम्पराओं में प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र की
अन्यतम है। रचनात्मक साहित्य और शास्त्रीय क्षेत्रों में उसकी उ
आज भी असाधारण रूप में मान्य हैं। संस्कृत में समीक्षा शास्त्र क
महत्व बताया गया है। यहाँ तक कि समीक्षा शास्त्र को वेद का सा
तक माना गया है। अनुमान लगाया जाता है कि प्राचीनता की दृि
संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा विशेष रूप से महत्व रखती है औ
तक उसका प्रसार मिलता है। परन्तु साहित्य शास्त्रीय नियमन और
की दृष्टि से भरत मुनि प्रथम साहित्य शास्त्री हैं, जिन्होंने अपने 'नाट्
नामक ग्रंथ में साहित्य शास्त्र का सम्यक् निरूपण प्रस्तुत किया है। इस
में संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा के प्रवर्तक आचार्य के रूप में मुि
को मान्य करते हुए उनके सिद्धान्तों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।
साहित्य शास्त्र में जो विभिन्न सम्प्रदायों का प्रसार हुआ है, उनमें रस
के प्रतिष्ठापक के रूप में भी भरत मुनि को मान्यता दी जाती है। भर
ने रस का विवेचन करते हुए उसका सम्यक् निरूपण प्रस्तुत किया। इस
में रस का महत्व, रस का विभाजन, भाव वर्णन, रस और भाव, रस उ
रस देवता, रस वर्णन, शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स
अद्भुत रसों की व्याख्या की गयी है। अलंकार विवेचन के सन्दर्भ में
रूपक, दीपक और यमक का परिचय है। साथ ही काव्य के गुण, काव्य के
और अभिनय के प्रकार का परिचय प्रस्तुत करने के साथ परवर्ती युगों में
मुनि की मान्यता की ओर भी संकेत किया गया है। भरत मुनि के प
मेधावी और भट्टि नामक आचार्यों का उल्लेख किया गया है।

भामह के द्वारा प्रणीत "काव्यालंकार" ग्रंथ के आधार पर काव्य स
काव्य लक्षण, काव्य के भेद, महाकाव्य, नाटक, कथा, गाथा, वैदर्भी,
गौड़ीय भेद, दोष वर्णन तथा गुण-वर्णन की परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत
हुये उनका महत्व प्रस्तुत किया गया है। सातवीं शताब्दी के आचार्य दण
सिद्धान्तों का परिचय देते हुए काव्य के भेद, महाकाव्य, गद्यकाव्य के
आख्यायिका, कथा और चम्पू, काव्य की रीतियाँ, काव्य के गुण।
दोष के साथ अलंकार विवेचन भी किया गया है। फिर उद्भट के
चलात्मक विचारों के पश्चात् वामन के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में काव्य।

अलंकार, काव्य का प्रयोजन, काव्य के अधिकारी, काव्य की रीतियाँ, रीति के भेद, काव्य के अंग तथा काव्य के भेद की व्याख्या की गयी है। ६वीं शताब्दी के आचार्य रुद्रट के काव्य और अलंकार सम्बन्धी विचारों के साथ आनन्दवर्द्धन के ध्वनि विषयक विचारों का निरूपण किया गया है। अभिनव गुप्त, राजशेखर, मुकुल भट्ट, धनंजय, भट्ट तौत, भट्ट नायक, कुन्तक, महिम भट्ट, भोज, मम्मट, क्षेमेन्द्र आदि की व्याख्या भी इसी सन्दर्भ में की गयी है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य में सर्वाधिक महत्व दिया और अपने "औचित्य विचार चर्चा" नामक ग्रन्थ में औचित्य निरूपण करते हुए औचित्य का स्वरूप स्पष्ट किया। उन्होंने पद-औचित्य, काव्य-औचित्य, प्रबन्ध-औचित्य, गुण-औचित्य, अलंकार-औचित्य, रस-औचित्य, तत्व-औचित्य, सत्-औचित्य, स्वभाव-औचित्य तथा प्रतिभा-औचित्य की व्याख्या की। फिर सागर नन्दी, रुय्यक, मह्लक, हेमचन्द्र, रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, वाग्भट्ट (प्रथम), जयदेव, शारदा तनय, भानुदत्त, विद्याधर, विश्वनाथ, शोभाकर मित्र, विद्यानाथ, वाग्भट्ट (द्वितीय), अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ, केशव मिश्र, विश्वेश्वर पंडित तथा अन्य आचार्यों के सिद्धान्तों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। अन्त में, रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति पर बल देने के अनुसार सैद्धान्तिक रूप से उपर्युक्त आचार्यों का विभाजन और आपेक्षिक महत्व स्पष्ट करते हुए इस सुदीर्घ और महान् परम्परा की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के चौथे अध्याय में रीति कालीन हिन्दी साहित्य के विकास और विभिन्न सिद्धान्तों के स्वरूप की व्याख्या की गयी है। रीति कालीन हिन्दी समीक्षा शास्त्र की आधार-भूमि उसकी पूर्ववर्ती भाषा-परम्पराएं रही हैं। उनमें से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा से है। उसी से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करके रीति कालीन हिंदी आचार्यों द्वारा अपने साहित्य सिद्धान्तों का निरूपण किया। हिन्दी रीति साहित्य की परम्परा के अन्तर्गत सर्व-प्रथम पुंड अथवा पुष्य तथा कृपा राम की चर्चा की गयी है। गोप, मोहनलाल मिश्र तथा नन्ददास का उल्लेख भी इसी संदर्भ में किया गया है। फिर हिन्दी रीति शास्त्र के प्रतिष्ठापक आचार्य के रूप में "कवि प्रिया" और "रसिक प्रिया" आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रणेता केशवदास के सिद्धान्तों के अन्तर्गत कवियों के प्रकार, कवि-रीति-वर्णन, काव्य-दोष-वर्णन, अलकार वर्णन, रस विवेचन, नायक-भेद, नायिका-भेद, रस के अंग, वियोग शृंगार तथा अन्य रसों की

व्याख्या की गयी है। सुन्दर कवि की चर्चा भी इसी संदर्भ में की गयी आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी के काव्य स्वरूप, काव्य के भेद, काव्य-पु के गुण, रस-निरूपण, रस के अंग, अलंकार-निरूपण, शब्द-शक्ति-नि ध्वनि-निरूपण आदि से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत किया गया है मणि के परवर्ती आचार्यों में तोष, जसवन्त सिंह, हेमराम, शम्भू शम्भाजी एवं मंडन आदि आचार्यों का उल्लेख किया गया है। मति भूषण की चर्चा के साथ कुलपति के काव्य का लक्षण, काव्य का काव्य के कारण, काव्य के भेद, शब्द-अर्थ-निरूपण, शब्द-शक्ति-निरूप निरूपण, रस-निरूपण, दोष-निरूपण, गुण-निरूपण, रीति-निरूपण कार-निरूपण की व्याख्या की गयी है। इसी प्रकार से सुखदेव मिश्र गोपाल राम, बलिराम, बलबीर, कल्याणदास, श्री निवास और त्रिवेदी के विचारों का भी उल्लेख किया गया है।

आचार्य देव के काव्य-निरूपण, अलंकार निरूपण, रस निरूपण व्याख्या के साथ इसी अध्याय में सूरति मिश्र, गोप, याकूब खां, कु भट्ट तथा श्रीपति के परिचय के साथ आचार्य श्रीपति के स्वरूप, काव्य के दोष, अलंकार-निरूपण तथा रस के निरूपण की व्य गयी है। इसी प्रकार के रसिक सुमति, श्रीधर, कुन्दन बुन्देलखंडी, वे गोदुराम, वेनीप्रसाद, संगराम, गंजन, भूपति, वीर, वंशीधर तथा दल आदि का उल्लेख किया गया है। आचार्य सोमनाथ मिश्र के सिद्धान्तों रूप से काव्य-निरूपण, शब्द-शक्ति-निरूपण, ध्वनि निरूपण, रस-निरूप निरूपण, गुण-निरूपण, अलंकार-निरूपण की व्याख्या की गयी है। कि गोविन्द, रसलीन, रघुनाथ बंदीजन, उदयनाथ कवीन्द्र आदि के उल्लेख आचार्य भिखारीदास के काव्य-स्वरूप-निरूपण, शब्द-शक्ति-निरूपण, का निरूपण, रस-निरूपण, अलंकार-निरूपण आदि की व्याख्या की गयी है कवि, शम्भूनाथ मिश्र, रामकृष्ण, लाला गिरधारी लाल, चन्द्रदास, बैरीसाल, समनेस, शिवनाथ, रतन, ऋषिनाथ, जनराज, उजियारे, रंग खाँ, चंदन, देवकी नन्दन, यशवंत सिंह, जगत सिंह, राम सिंह, मा बेनी प्रवीन, रणधीर सिंह, नारायण, रसिक गोविन्द तथा प्रताप सा उल्लेख किया गया गया है। प्रताप साहि के सिद्धान्तों में विशेष रूप से निरूपण, शब्द-शक्ति-निरूपण, रस-निरूपण, काव्य-गुण निरूपण और

दोष-निरूपण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अन्त में नवीन आचार्यों की चर्चा के साथ रीतिकालीन साहित्य शास्त्र की परम्परा का सिंहावलोकन करते हुए यह संकेत किया गया है कि लगभग एक सहस्त्र वर्षों तक प्रसारित यह परम्परा मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य शास्त्र के अनुकरण पर विकसित हुई। संस्कृत और रीति साहित्य शास्त्रों में मुख्य भेद यह रहा कि संस्कृत के आचार्य मूल रूप से काव्य शास्त्रज्ञ थे, जब कि हिन्दी के प्रधानतः कवि। उद्देश्यगत इस विपरीतता के कारण उनके सिद्धान्त-निदर्शन मे परस्पर भिन्नता रहने के कारणों की ओर भी अन्त में संकेत किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पांचवें अध्याय में पाश्चात्य और भारतीय समीक्षा परम्पराओं के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्राचीनता की दृष्टि से यदि इन दोनों परम्पराओं में पर्याप्त साम्य मिलता है, तो चिन्तन की दृष्टि से पर्याप्त भेद भी। दोनो ही के प्राचीनतम रूप सूत्रात्मक शैली मे उपलब्ध होते हैं। जहाँ तक काव्य के प्रयोजन का सम्बन्ध है, पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों मे कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता है। होमर, हेसियड, अरस्तू, वामन, रुद्रट, कुन्तक, मम्मट तथा विश्वनाथ आदि के विचारो में काव्य के उद्देश्य के रूप से आनन्द-प्राप्ति को ही मान्य किया गया है। पश्चात्य विचारकों ने आनन्दानुभूति के साथ ही साथ मानव कल्याण भी उसका एक उद्देश्य बताया है। अरस्तू ने उपदेशात्मक अथवा नैतिक आदेश की शर्त भी लगा दी है। क्योंकि उसके विचार से काव्य सत्य का निरूपण करता है। भारतीय दृष्टिकोण भी काव्य के उपर्युक्त उद्देश्यों से असहमति नहीं रखता, यद्यपि भारतीय विचारकों ने काव्य की आत्मा के अन्वेषण की ओर ही अधिक ध्यान दिया है।

काव्य के विविध रूपों के विश्लेषण के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने नाटक और महाकाव्य को प्रधानता दी है। काव्य के मुक्तक तथा अन्य रूपों का उल्लेख उन्होंने अप्रासंगिक रूप में किया है। भाषण अथवा वक्तृता की उन्होंने विशेष चर्चा नहीं की। इसके विपरीत पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने आरम्भ से ही भाषण कला को प्राथमिकता दी है। इस विषय मे प्रारम्भिक चिन्तन तो टीसियस आदि ने ही आरम्भ कर दिया था, परन्तु इसका विशद विवेचन यूनानी चिन्तकों में सर्वप्रथम अरस्तू ने ही किया। रोम

के साहित्य शास्त्रियों में भी सिसरो ने भाषण शास्त्र को साहित्य अधिक महत्व प्रदान किया। उनका विचार था कि कलात्मकता तथा की दृष्टि से भाषण शास्त्र साहित्य की अपेक्षा प्राथमिक महत्व का है। यूरोप के पुनर्जागरण कालीन चिन्तक सर टॉमस विल्सन ने कला का विवेचन किया। इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य शास्त्रि मय की एक प्रमुख विधा के रूप में भाषण कला को मान्यता दी हमारे देश में उसे इतना महत्व नहीं दिया गया।

जहाँ तक साहित्य के नाट्य रूपों का सम्बन्ध है, प्राचीन भार साहित्य-शास्त्र में सर्व प्रथम भरत मुनि ने नाटक की व्याख्या करते "नाट्यशास्त्र" नामक ग्रन्थ में उस पर विचार किया। भरत के पश्च चिन्तकों में भामह, धनंजय आदि ने नाटक के विविध अंगों और गम्भीर व्याख्या प्रस्तुत की। पाश्चात्य साहित्यकारों में भी सर्वप्रथ पश्चात् यूरीपाइडीज और अरस्तू ने काव्य की भाँति ही नाटक को करण का एक माध्यम माना। रोमीय चिन्तकों में होरेस ने तथा पु कालीन चिन्तकों में बेन जानसन और उसके पश्चात् डा० जानसन कला और नाट्य रूपों का विश्लेषण किया। इस सम्बन्ध में उल्लेख यह है कि भारतीय चिन्तकों ने काव्य की भाँति ही नाटक का मूल रस को ही मान्य किया है, जब कि पाश्चात्य विचारकों ने उसके अ को प्रधानता देते हुये उसकी व्याख्या की है।

भारतीय समीक्षा शास्त्र का आरम्भ करने वाले भरत मुनि रस सिद्धान्त के भी प्रतिष्ठापक माने जाते हैं। उन्होंने रस की शास्त्रीय करते हुये उसे नाटक और काव्य की आत्मा के रूप में मान्य किया काव्य और नाटक में रस विवेचन को उन्होंने मुख्यता दी। आनन्दवर्द्ध रस के औचित्य का विशेष रूप से समर्थन किया। अभिनव गुप्त ने उत्पत्ति नाटक में ही बताई। धनंजय ने रस को सर्वोपरि बताया यहाँ जितना महत्व रस को प्रदान किया गया, पाश्चात्य समीक्षा में उ महत्व अनुकरण को; अरस्तू ने भी काव्य और नाटक की मूल प्रेरणा करण को सिद्ध किया। यहाँ तक कि उसने कलाओं का विभाजन भी अनु आधार पर किया और काव्य, नाटक तथा संगीत को अनुकरण के

प्रकार माना। कहने का आशय यह है कि भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण में इस क्षेत्र में अन्तर यह रहा है कि पाश्चात्य चिंतन व्यावहारिक रहा, जबकि भारतीय चिन्तन में सैद्धान्तिकता अधिक रही।

काव्य-भेदों के निरूपण के सम्बन्ध में प्राचीन संस्कृत साहित्य में भामह ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने गद्य और पद्य रूपों की विस्तार से व्याख्या की। दंडी ने भी इसी प्रकार का वर्गीकरण किया। वामन का काव्य-विभाजन का आधार भी गद्य और पद्य ही रहे। आनन्दवर्द्धन ने महाकाव्य के भेद करते हुए रस-प्रधान महाकाव्य को इतिवृत्त-प्रधान महाकाव्य से श्रेष्ठ कहा। नाटक में भी उन्होंने रस-विवेचन की मुख्यता निर्देशित की। धनंजय ने रूपक के दस भेद बताते हुए उनकी चर्चा और व्याख्या की। भोज ने [काव्य और दृश्य काव्य का वर्गीकरण किया। मम्मट, विश्वनाथ तथा जगन्नाथ ने भी श्रेष्ठता के आधार पर काव्य के भेद प्रस्तुत किये। जहाँ तक इस विषय मे पाश्चात्य दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, प्लेटो ने सबसे पहले गीति काव्य, नाटक, नाटक और महाकाव्य के रूप में इनका वर्गीकरण किया। अन्य विचारकों मे लोंजाइनस तथा सिसरो आदि ने भी प्रायः पूर्ववर्ती सिद्धान्तो के आधार पर अपने मत प्रस्तुत किये। भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण मे इन विषयों के सम्बन्ध मे मुख्य अन्तर यह रहा है कि जहाँ भारतीय दृष्टिकोण में इन पर बल देते हुए विस्तार के साथ सिद्धान्त रचना हुई है, वहाँ पाश्चात्य चिन्तन के क्षेत्र मे इन पर इतना अधिक गौरव नही दिया गया है। यहाँ तक कि प्लेटो आदि अनेक विचारकों ने कभी-कभी रचनात्मक दृष्टिकोण से भी नाटक आदि का विरोध किया।

पाश्चात्य और भारतीय सिद्धान्तो की स्वरूपगत सर्वांगीणता की ओर भी इसी अध्याय मे सकेत किया गया है। संस्कृत साहित्य में अलंकार सिद्धान्त का व्यापक प्रसार मिलता है और अनेक विचारकों द्वारा की गई इसकी विशद व्याख्या उपलब्ध है। भरत, भामह, दंडी, वामन, रुद्रट आदि ने अलंकार को महत्व देते हुए उसका सम्यक् विवेचन किया है। अलंकार की ही भाँति जो अन्य सम्प्रदाय हैं, उनमे रस, रीति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति का महत्व प्रतिपादित हुआ है। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के क्षेत्र में काव्य में अलंकार को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया गया। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका

उसे व्यापक क्षेत्रीय प्रसार और मान्यता मिली। रस के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव नामक चार अंग माने गये हैं। प्रमुख रसों की संख्या नौ बतायी गयी है, जो शृंगार, वीर, करुण, अद्‌भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र तथा शान्त हैं। इनमें से प्रत्येक रस का पृथक्-पृथक् निरूपण और व्याख्या की गयी है। इस सिद्धान्त का भारतीय साहित्य शास्त्र में इस कारण व्यापक क्षेत्रीय प्रसार रहा, क्योंकि इसके अन्तर्गत काव्य के कला और भाव पक्षों का संतुलन मिलता है।

भारतीय संस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत प्रमुख सम्प्रदायों में अलंकार सिद्धांत भी एक है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में अलंकार भी सुदीर्घ परम्परा मिलती है। संस्कृत में इसके प्रवर्तक आचार्य भामह थे, यद्यपि उनका अलंकार विभाजन न तो बहुत विस्तृत है और न प्राचीनतम। भरत मुनि ने अपने "नाट्य शास्त्र" में अलंकार वर्णन करते हुए केवल चार अलंकार स्वीकृत किये थे। आगे चलकर उनकी संख्या सैकड़ों में हो गयी। भामह, दंडी तथा उद्‌भट आदि ने भी अलंकार-निरूपण प्रस्तुत किया। अलंकारों का विभाजन मुख्यतः शब्दालंकार के रूप में हुआ है। अलंकार सिद्धांत कवि की अभिव्यक्ति और कला की प्रौढ़ता का मापक है। काव्य के सौन्दर्य और प्रभाव की वृद्धि में अलंकार एक सशक्त माध्यम का काम करता है। इसीलिए उसकी परम्परा वर्तमान समय तक अक्षुण्ण रूप से प्रवाहशील मिलती है।

संस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त रीति सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। इसका प्रवर्तन आचार्य वामन ने किया। वामन के अतिरिक्त भी संस्कृत साहित्य शास्त्र में ऐसे अनेक विचारक हुए, जिन्होंने रीति की विवेचना की। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में घोषित किया। रीति का शाब्दिक अर्थ "मार्ग" या "पंथ" है। प्राचीन युग में काव्य क्षेत्रीय दो मार्ग माने जाते थे। इनमें से प्रथम वैदर्भ मार्ग था और द्वितीय गौड़ीय मार्ग। वामन ने इनमें पांचाली को और जोड़ दिया तथा इसकी सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत की। राजशेखर ने भी इन्हीं को मान्यता दी। रुद्रट ने इनमें एक चौथी रीति लाटीया भी जोड़ दी। आगे चल कर भोज ने आवन्ती तथा मागधी के रूप में दो और रीतियों को मान्यता दी। इस प्रकार से, रीतियों की कुल संख्या छः हो गयी, यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने वामन की ही तीन

यूरोप में यथार्थवाद तथा उसके पश्चात् अतियथार्थवाद के साहित्यिक विचारधाराओं का प्रसार हुआ। यथार्थवाद साहित्य में के अनुकरण पर विशेष रूप से बल देता है। कल्पनात्मकता तथा कता इसी यथार्थवाद का विकसित रूप है। यह भी एक प्रकार निरात्मक चिन्तन है। सिद्धान्ततः अतियथार्थवादियों के अनुसार साहित्य को पूर्णतः बौद्धिक नहीं होना चाहिए, क्योंकि वैसा होने से वैदग्धिक अनुभूतियों के अंतर्विरोध के चिन्तन की सम्भावनायें जायेंगी। अतियथार्थवादी विचारधारा के समर्थकों के अनुसार आधु समाज में मान्य नैतिक दृष्टिकोण भी निरर्थक है। अतियथार्थवाद यथार्थवाद की निर्धारित सीमाओं का विस्तार करता था। इसे प्रकृ कहा जाता है। कुछ लोग इसका आधार "दादावाद" को भी मानते अध्याय में पाश्चात्य विचारधाराओं में से कुछ का परिचयात्मक प्रस्तुत करते हुए अन्त में यह सकेत दिया गया है कि इनमें परिवर्तन की ओर विस्तार की भी प्रवत्ति है। आदर्शवाद यदि साहित्य में उदात को अधिक महत्व देता है, तो यथार्थवाद यथार्थानुकारिता पर, अभि वाद यदि अभिव्यक्ति की शैली पर गौरव देता है; तो रूपवाद उसकी रूपात्मकता पर। किसी न किसी रूप में ये वैचारिक विस्तार का ही करते हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के सातवें अध्याय में भारतीय वैचारिक आन्दोलन स्वरूप और सैद्धान्तिक आधार स्पष्ट किया गया है। भारतीय समी अन्तर्गत जो सैद्धान्तिक आन्दोलन आविर्भूत हुए, उनका क्षेत्र प्रायः साहित्य शास्त्र ही रहा। आगे चल कर हिन्दी रीति शास्त्र की परम्परा उन्हीं के अनुसार निर्देशन दिये। ये आन्दोलन मुख्यतः काव्य की आत्म अन्वेषण से सम्बन्धित हैं और परस्पर भिन्नता होते हुए भी एक दूसरे के कहे जा सकते हैं। इनमें से प्राचीनतम रस सिद्धान्त है, जिसके प्रवर्तक मुनि माने जाते हैं। भरत मुनि ने विभाव, अनुभाव, तथा संचारी भाव सहयोग से रस की निष्पत्ति बतायी। आगे चल कर इस सिद्धान्त का जो भी विकास हुआ, उसके मूलरूप में भरत मुनि का यही सिद्धान्त बिद्य रहा। भरत मुनि ने रस का जो स्वरूप-विवेचन किया, वह नाटक पर आ रित था। आगे चल कर काव्य पर इस सिद्धान्त का आरोपीकरण हुआ औ

उसे व्यापक क्षेत्रीय प्रसार और मान्यता मिली। रस के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव नामक चार अंग माने गये हैं। प्रमुख रसों की संख्या नौ बतायी गयी है, जो शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र तथा शान्त हैं। इनमें से प्रत्येक रस का पृथक्-पृथक् निरूपण और व्याख्या की गयी है। इस सिद्धान्त का भारतीय साहित्य शास्त्र में इस कारण व्यापक क्षेत्रीय प्रसार रहा, क्योंकि इसके अन्तर्गत काव्य के कला और भाव पक्षों का संतुलन मिलता है।

भारतीय संस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत प्रमुख सम्प्रदायों मे अलकार सिद्धांत भी एक है। संस्कृत साहित्य शास्त्र मे अलंकार भी सुदीर्घ परम्परा मिलती है। सस्कृत मे इसके प्रवर्तक आचार्य भामह थे, यद्यपि उनका अलंकार विभाजन न तो बहुत विस्तृत है और न प्राचीनतम। भरत मुनि ने अपने "नाट्य शास्त्र" मे अलंकार वर्णन करते हुए केवल चार अलंकार स्वीकृत किये थे। आगे चलकर उनकी सख्या सैकड़ो मे हो गयी। भामह, दडी तथा उद्भट आदि ने भी अलंकार-निरूपण प्रस्तुत किया। अलंकारों का विभाजन मुख्यतः शब्दालंकार के रूप मे हुआ है। अलंकार सिद्धात कवि की अभिव्यक्ति और कला की प्रौढ़ता का मापक है। काव्य के सौन्दर्य और प्रभाव की वृद्धि मे अलंकार एक सशक्त माध्यम का काम करता है। इसीलिए उसकी परम्परा वर्तमान समय तक अक्षुण्ण रूप से प्रवाहशील मिलती है।

सस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त रीति सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। इसका प्रवर्तन आचार्य वामन ने किया। वामन के अतिरिक्त भी संस्कृत साहित्य शास्त्र में ऐसे अनेक विचारक हुए, जिन्होने रीति की विवेचना की। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में घोषित किया। रीति का शाब्दिक अर्थ "मार्ग" या "पंथ" है। प्राचीन युग मे काव्य क्षेत्रीय दो मार्ग माने जाते थे। इनमे से प्रथम वैदर्भ मार्ग था और द्वितीय गौडीय मार्ग। वामन ने इनमे पाचाली को और जोड़ दिया तथा इसकी सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत की। राजशेखर ने भी इन्हीं को मान्यता दी। रुद्रट ने इनमे एक चौथी रीति लाटीया भी जोड़ दी। आगे चल कर भोज ने आवन्ती तथा मागधी के रूप में दो और रीतियों को मान्यता दी। इस प्रकार से, रीतियों की कुल संख्या छः हो गयी, यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने वामन की ही तीन

काव्य रीतियों का अनुमोदन किया, फिर भी इस परम्परा के विचारकों की व्याख्या करते हुए रीति विभाजन के आधार, रीति के तत्त्व, रीति के मक हेतु, रीति का प्रवृत्ति और शैली की दृष्टि से भेद, कवि मार्ग, शैली तथा दोष आदि की विस्तार से व्याख्या की। इस सिद्धान्त को आगे च संस्कृतेतर भाषाओं में भी मान्यता मिली।

संस्कृत साहित्य शास्त्र में प्रवर्तित वक्रोक्ति सिद्धान्त की स्थापना कुन्तक ने की। इस सिद्धान्त के अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य की आत वक्रोक्ति का प्रयोग और अर्थ विविध आचार्यों ने पृथक्-पृथक् रूप में कि भामह ने शब्द वक्रता तथा अर्थ वक्रता के सम्मिलित रूप को वक्रोक्ति दंडी ने वक्रोक्ति को वाङ्मय का एक भेद माना और वक्रता, चामत्व अथवा अतिशयोक्ति के अर्थ मे उसे स्वीकार किया। वामन ने दशों अर्थालंकार माना। रुद्रट ने उसे शब्दालंकार का एक भेद स्वीकार। आनन्दवर्द्धन ने वक्रोक्ति को अर्थालंकार, अभिनवगुप्त ने सामान्य अलंका मम्मट तथा रुय्यक ने उसे विशिष्ट अलंकार के रूप में ही मान्य किया सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक ने प्रसिद्ध कथन से भिन्न वर्णन को वक्रोक्ति बताया। यह शैली लोक व्यवहार से भिन्नता रखती है। र वक्रोक्ति के छः भेद किये—वर्ण-विन्यास वक्रता, पद-पूर्वार्द्ध वक्रता, पद-प वक्रता, वाक्य-वक्रता, प्रकरण-वक्रता तथा प्रबन्ध-वक्रता। इन सबके भी उपभेद करते हुए उन्होंने उन सबकी व्याख्या की। इससे यह सिद्ध वक्रोक्ति सिद्धान्त मुख्यतः काव्य में निहित चामत्कारिक तत्वों को नि करने वाला सिद्धान्त है। इस दृष्टि से यह एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत है, जिसमे अनेक प्रकार की पूर्ववर्ती वैचारिक संकीर्णताओं का अभाव है।

इस अध्याय में, अन्तिम सिद्धान्त के रूप में ध्वनि सम्प्रदाय का प प्रस्तुत किया गया है। इस सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्द्ध के अनुसार ध्वनि ही काव्य की आत्मा है। उन्होंने ध्वनि काव्य को सर्व कोटि का काव्य बतलाया है। ध्वनि सिद्धान्त विषय-कोटीय व्याख्या दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इसके स्वरूप के स्पष्टीकरण के साथ शब्द शक्तियों की व्याख्या करते हुए उनके भेदों और उपभेदों का नि है। ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार काव्य और ध्वनि के भी आद

होते हैं, जिनकी इसमें चर्चा की गयी है। इस प्रकार से, काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग का परीक्षण करने वाले प्रमुख भारतीय शास्त्रीय सिद्धान्तों का परिचय इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के आठवें अध्याय मे पाश्चात्य और भारतीय वैचारिक आन्दोलनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की आधार भूमि के सन्दर्भ मे इन दोनो के स्वरूप पर विचार किया गया है। पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद के तत्वों की व्याख्या करते हुए उसकी समीक्षात्मक परिणति का भी निर्देश किया गया है। क्रोचे अभिव्यंजना को एक ऐसी आन्तरिक अभिव्यक्ति मानता है, जिसका सम्बन्ध मन से है। अभिव्यंजना की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए वह यह कहता है कि जो भी वाह्य अभिव्यंजना हम अभिव्यक्त करते हैं, वह पूर्व रूप मे हमारे हृदय में आन्तरिक रूप से अभिव्यक्त हो चुकी होती है। इसलिए इस संसार मे जो कुछ भी प्रकट मे है, वह मानसिक कार्य या व्यापार का ही वाह्य रूप है और समस्त कला की रचना का मूल आधार मन ही है। इस प्रकार से, क्रोचे ने काव्य में कल्पना-तत्व का महत्व स्वीकार करते हुए काव्य की आत्मा के रूप मे उसकी प्रतिष्ठा की है और काव्य के अन्य तत्वो को अप्रधान बताया है। जहाँ तक भारतीय विचारधारा का सम्बन्ध है, उसमे कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है, जिसके अनुसार कल्पना को काव्य की आत्मा माना गया हो।

पाश्चात्य समीक्षा के यथार्थवादी आन्दोलन के अनुसार साहित्य में यथार्थानुकारिता का महत्व सबसे अधिक है। हिन्दी मे भी यह प्रवृत्ति विद्यमान मिलती है और पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप इसमे वैभिन्न्य और विकास लक्षित होता है। हिन्दी मे ये दोनो प्रवृत्तियां विविध रूपो मे दिखाई देती पाश्चात्य साहित्य मे प्रतीकवादी आन्दोलन भी अपेक्षाकृत अधिक नियोजित मे मिलता है। हमारे देश मे प्रतीक की शैली बहुत प्राचीन है, परन्तु प्र अथवा आधुनिक युग मे इसे एक संगठित आन्दोलन का रूप नहीं दिया र पाश्चात्य अतियथार्थवादी विचारधारा पूर्व कालीन रोमाण्टिक साहित्य प्रवृ के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में आरम्भ हुई। हमारे यहाँ भी उसका धिक प्रभाव देखा जा सकता है। अस्तित्ववादी विचारधारा मूलतः दर्शन है। जहाँ तक अस्तित्ववाद की साहित्यिक परिणिति का सम्बन्ध है, वह र

दनावाद से प्रभावित कही जा सकती है। युद्धोत्तरकालीन पाश्चात्य इसका समावेश व्यापक रूप में मिलता है। हिन्दी के भी नवीन साहि पर इसका प्रभाव न्यूनाधिक रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय रस सिद्धान्त काव्य की आत्मा का अन्वेषण करने वाला है। क्रोचे आदि ने पाश्चात्य चिन्तन के क्षेत्र में जिस सहजानुभूति व की है, वह रसानुभूति से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस विषय से भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण में मुख्य अन्तर यह है कि यहां पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है और वहां अनुकरण पर। भारतीय सिद्धान्त व्यापकता और सम्यक्ता की दृष्टि से साहित्य जगत में वि अरस्तू ने अपने ग्रन्थ "रिटारिक" में अलंकार का प्रयोग भारतीय अ किया है, वल्कि भाषण कला तथा काव्यांग के सन्दर्भ में ही इसे प्रयु है। वह अनुकरण पर गौरव देता था, जब कि हमारे यहाँ अलंकार की आत्मा के रूप में मान्य किया गया है। भारतीय ध्वनि सिद्धान्त की आत्मा का अन्वेषक है। इसका विस्तार इतना अधिक है कि सिद्धान्त इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु पाश्चात्य दृष्टिकोण में तात्विक विश्लेषण करने वाला ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं मिलता।

भारतीय रीति सिद्धान्त काव्य में गुणों को अलंकार की अपेक्षा महत्व देता है। इसमें विशिष्ट पद रचना या विशिष्ट काव्य शैली क कहा गया है। इसकी तुलना पाश्चात्य प्रतीकवाद से की जा सकती शैली की विशिष्टता पर गौरव देता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर य प्रतीकवाद जहाँ देश, काल और शैली की ओर ही संकेत करता है, स सिद्धान्त उसे काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करता है। वक्रोक्ति सिद्धान्त काव्य में चामत्कारिक तत्वों को महत्व देता है। अभिव्यंजनावादी विचारक भी उक्ति की मार्मिकता पर गौरव देते हैं अभिव्यंजनावादी दृष्टिकोण मूलतः दार्शनिक और सौन्दर्यवादी है, वक्रोक्ति सिद्धान्त विशुद्ध अन्वेषण युक्त और साहित्य शास्त्रीय। इस प्रमुख भारतीय और पाश्चात्य आन्दोलनों की तुलना करते हुए इस अ अन्त में यह संकेत किया गया है कि इनमें दृष्टिकोणगत कुछ मौलिक पाश्चात्य चिन्तन धाराएँ प्रायः एकांगी हैं और काव्य के किसी एक

सम्बन्ध रखती हैं। उनमें स्थानीयता भी अधिक है। वैयक्तिकता का आग्रह तथा अन्य सीमायें भी उनके प्रसार में बाधक हुईं। इसके विपरीत भारतीय सिद्धान्त अधिक सामयिकता का परिचय देते है और विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि-कोण से चिन्तन का रूप प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के नवें अध्याय में आधुनिक हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों का परिचय देते हुए उनके अन्तर्गत आने वाले प्रमुख समीक्षकों के सैद्धान्तिक विचारों को संक्षेप मे परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा की पृष्ठभूमि हिन्दी रीति साहित्य शास्त्र रहा है। जिस प्रकार से संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा से आधार तथा प्रेरणा-ग्रहण करके रीति शास्त्र का विकास हुआ था, उसी प्रकार से आधुनिक हिन्दी समीक्षा का विकास रीति शास्त्र से प्रभावित रहा। रीति शास्त्र के अन्तर्गत जो प्रमुख विचारक हुए हैं, उन्होंने आधुनिक हिन्दी समीक्षा के विकास और उसके आरम्भिक कालीन विचारकों को विशेष रूप से प्रभावित किया। आधु-निक हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों के अन्तर्गत इस अध्याय मे सर्व-प्रथम ऐतिहासिक समीक्षा की प्रवृत्ति का आरम्भ, विकास, मुख्य विशेषतायें तथा प्रमुख समीक्षकों की चर्चा की गयी है, जिनमें गार्सा द तासी, डा० शिव-सिंह सेंगर, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दर दास, प० रामचन्द्र शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, तथा प० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सुधार परक समीक्षा की प्रवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की विविध समीक्षा कृतियों के आधार पर उनकी साहित्यिक मान्यताओं का परिचय प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् तुलनात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति के स्वरूप के अन्तर्गत उसका आरम्भ और विकास स्पष्ट करते हुए मुख्यतः मिश्रबन्धु, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० कृष्णबिहारी मिश्र, लाला भगवानदीन तथा शचीरानी गुर्टू आदि के समीक्षात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है।

आधुनिक हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र मे जो विशिष्ट प्रवृत्तियाँ क्रियाशील दिखाई देती हैं, उनमें से शास्त्रीय समीक्षा की प्रवृत्ति भी एक है। समीक्षा के इस दृष्टिकोण को प्राचीनता, सैद्धान्तिकता तथा विशुद्धता की दृष्टि से उच्चतर कोटि का मान्य किया जाता है। इस प्रवृत्ति की पूर्व परम्परा के अन्तर्गत हम

अध्याय में कविराज मुरारिदीन, प्रतापनारायण सिंह, कन्हैया
जगन्नाथप्रसाद "भानु", रामशंकर शुक्ल "रसाल", सीताराम शा
दास केडिया, अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", बिहारीलाल
बन्धु, डा० श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, सीता
लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ
आदि के प्रमुख सिद्धान्तों और मान्यताओं का परिचय दिया गया है
छायावादी समीक्षा की प्रवृत्ति का उल्लेख हुआ है। आधुनिक हिन्दी
क्षेत्र मे द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रू
वाद का जन्म हुआ था। इसके प्रमुख विचारकों ने इसे एक सुनियो
प्रदान किया। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत जयशंकर "प्रसाद", सूर्यका
सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, शांतिप्रिय द्विवेदी तथा गंगाप्रसाद
के प्रमुख विचारो का परिचय दिया गया है।

आधुनिक युग की साहित्यिक विचारधाराओं में प्रगतिवादी समीक्षा
भी एक है। हिन्दी साहित्य में इसका आरम्भ मुख्यतः विदेशी साहित्य
स्वरूप हुआ था। इसका विकास यथार्थवादी प्रवृत्ति से संयुक्त होकर
प्रवृत्ति के अन्तर्गत राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० रामवि
शिवदान सिंह चौहान, मन्मथनाथ गुप्त, डा० रांगेय राघव तथा श्री
शर्मा आदि के मुख्य विचारों को प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी
की विशिष्ट प्रवृत्तियों में व्यक्तिवादी समीक्षा की प्रवृत्ति भी क्रियाशील
विचारधारा सामयिकता का विरोध न करते हुए भी साहित्य में
प्रयोगों का समर्थन करती है। हिन्दी के आधुनिक साहित्य में इस वि
को प्रयोगवादी आन्दोलन के पर्याय के रूप में समझा जाता है। इस
अन्तर्गत जिन विचारकों के मन्तव्यों का उल्लेख किया गया है, उनमें
नन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय", गिरिजाकुमार माथुर, डा० धर्मवी
तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके
मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति की भी चर्चा की गयी है। इस
के अन्तर्गत मुख्यतः जैनेन्द्र कुमार, तथा इलाचन्द्र जोशी आदि के वि
प्रस्तुतीकरण किया गया है।

आधुनिक हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में एक प्रवृत्ति शोधपरक समीक्षा

कही जा सकती है। वर्तमान शताब्दी में भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में वृहत् के रूप में जो शोध कार्य हो रहा है, उसके अन्तर्गत विकसित रूपों को इस प्रवृत्ति अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रवृत्ति के कई रूप मिलते हैं, जिनमें से प्रथम साहित्य विषयक शोध की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के प्रथम रूप अर्थात् कवि परक शोध प्रवृत्ति के अन्तर्गत डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, डा० व्रजेश्वर वर्मा, डा० माताप्रसाद गुप्त तथा डा० हरवंशलाल शर्मा आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, यद्यपि अन्य भी अनेक ऐसे नाम हैं जो इसी के अन्तर्गत रखे गये हैं। इसी प्रथम वर्ग के अन्तर्गत सम्प्रदाय परक शोध प्रवृत्ति में डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० मुंशीराम शर्मा, डा० विनयमोहन शर्मा तथा अन्य विद्वानों का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रवृत्ति के तीसरे रूप अर्थात् शास्त्र परक शोध प्रवृत्ति के अन्तर्गत डा० रमाशंकर शुक्ल "रसाल", डा० भगीरथ मिश्र, डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', डा० भोलाशंकर व्यास, डा० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश', तथा डा० पुत्तूलाल शुक्ल आदि के नामों का उल्लेख किया गया है। इस प्रवृत्ति का एक रूप भाषा वैज्ञानिक शोध की प्रवृत्ति के रूप में भी मिलता है। इसके भी अनेक रूप हैं, जिनमें से ऐतिहासिक रूप के अन्तर्गत डा० उदयनारायण तिवारी, डा० बाबूराम सक्सेना आदि, व्याकरणिक के अन्तर्गत डा० धीरेन्द्र वर्मा, तथा कामताप्रसाद गुरु, बोलीपरक के अन्तर्गत डा० हरिहर प्रसाद गुप्त डा० अम्बाप्रसाद सुमन, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० कृष्णलाल हंस आदि तथा तुलनात्मक के अन्तर्गत मुख्य रूप से डा० कैलाशचन्द्र भाटिया का उल्लेख किया गया है।

हिन्दी में व्याख्यात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति का आरम्भिक रूप भारतेन्दु युग में ही आभासित होने लगता है, यद्यपि इसके अन्तर्गत केवल प्राचीन ग्रन्थों की टीका और व्याख्या मिलती है। आगे चलकर इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत जो उल्लेखनीय समीक्षक हुए, उनमें ललिताप्रसाद सुकुल, परशुराम चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डा० सत्येन्द्र, प्रभाकर माचवे तथा रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' आदि के विचारों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों में अन्तिम समन्वयात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के मूल में पाश्चात्य तथा भारतीय समीक्षा शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों के समन्वय की भावना है। इसीलिए इसका आधार अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। इस प्रवृत्ति का आरम्भिक रूप डा० श्यामसुन्दर दास तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल

आदि की कृतियों में मिलता है। आगे चल कर डा० विनयमोहन शर्मा, वाजपेयी, डा० नगेन्द्र तथा डा० देवराज आदि ने इस प्रवृत्ति को सम्भावनाएं प्रदान की। इस अध्याय के अन्त में निष्कर्ष रूप में यह सं गया है कि आधुनिक हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में जो विशिष्ट प्रवृत्तियां हैं, उनमें पर्याप्त विविधता और समयानुकूलता लक्षित होती है। ये हिन्दी समीक्षा की व्यापक आधार भूमि और सम्भावनाओं का द्योतन क इनमे जहां एक ओर प्राचीनता की अनुगामिनी प्रवृत्तियां हैं, वहां दू आधुनिक चिन्तन की नवीनतम प्रणालियों का भी परिचय प्राप्त होता।

प्रस्तुत प्रबन्ध के दसवें और अन्तिम अध्याय में उपसंहार के रू सम्यक् मान के निर्धारण की आवश्यकता और सम्भावनाओं पर विचा गया है। समीक्षा के स्वरूप और विकास का अध्ययन करने पर यह ज्ञा है कि विविध युगों में विभिन्न वैचारिक मान्यताएं जन्म लेती हैं औ सैद्धान्तिक एकांगिता के कारण उनका ह्रास हो जाता है। वैचारि की प्रधानता ही इस अनुगमन का मुख्य कारण है। इस अध्याय प्रतापनारायण टण्डन की विचार भूमि काफी सशक्त एवं मौलिक है शब्दों में कहा जा सकता है कि अब तक के अध्यायों में अध्ययित सा सार एवं अपने चिन्तन का परिणाम डा० टण्डन जी ने इसमें समाविष्ट क है। इस अध्याय के अन्त में समग्र रूप में इस मत की स्थापना की कि समीक्षा का समन्वित परिवेश युग और प्रवृत्ति की संकुचितता होना चाहिए। प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा मानदण्डों में प्रकार साहित्य के आन्तरिक अथवा बाह्य रूप का परीक्षण है, आज की इसमें भी ऊपर अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की परख होनी चाहिये। शब्दों में कहा जा सकता है कि उन्होंने समीक्षा का समन्वयात्मक मा ही सम्मत किया है। इसमें उनकी सूक्ष्मदर्शिता और मौलिक चिन्तन के समन्वय का स्पष्ट आभास मिलता है। हिन्दी समीक्षा शास्त्र के ऐति प्रथम बार डा० प्रतापनारायण टण्डन ने समीक्षा का लेकर नूतन समन्वयात्मक दृष्टिकोण उपस्थित किया है, जो उनके नवीन और क्रान्तिकारी द्योतक है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा

विशिष्ट प्रवृत्तियां' का विवेचन करते समय स्पष्ट हो जाता है कि यह अनुपम शोध ग्रन्थ है और इसका आधार वैज्ञानिक है। प्रत्येक अध्याय अपने-अपने विषय को अपने में समेटे हुए होने पर भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न न होकर क्रमानुसार आबद्ध है।

माननिर्धारण की आवश्यकता पर विचार

उपसंहार के अध्याय में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सम्यक् मान के निर्धारण की आवश्यकता और उसकी सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः, इस पर विचार करते समय उन्होंने अपने इस शोध का सार प्रस्तुत कर दिया है। इसमें वैयक्तिक चिन्तन तो प्रखर है ही, गहन अध्ययन के चिन्ह भी स्पष्ट लक्षित होते हैं।

समीक्षा के लिये सम्यक् मानदण्डों का निर्धारण करते समय डा० टण्डन जी ने किसी एक पक्ष को विशेष महत्व नहीं दिया है। यद्यपि समीक्षक की सीमाएं उन्हें घेरती अवश्य हैं, पर बाँध नहीं पाती। लेखक उनसे अलग खड़ा होकर विश्व-समीक्षा शास्त्र पर दृष्टिपात करता हुआ अपने निर्णय देता है। अपने ये निर्णय वह किसी हठवादिता के कारण नहीं, अपितु स्वाभाविक स्थिति के कारण ही देते हैं। उनका स्पष्ट मत है, कि 'युग परिवर्तन के साथ प्रायः सदैव ही नवीनता का आविर्भाव होता है। यह नवीनता दीर्घकालीन संक्रान्ति और गतिरोध का परिणाम होती है। फलतः प्राचीन प्रवृत्तियों का ह्रास होने लगता है। यह ह्रासात्मकता किसी निश्चित समय पर नहीं होती इसका आधार अनिश्चयात्मक स्थिति है।' *

साहित्य का मानदण्ड कैसा होना चाहिये, इस पर विचार करते समय उन्होंने बताया है कि—साहित्य के मूल्यांकन में ऐसे मानदण्डों का निर्धारण

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियां : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ० ८९७।

शाश्वत होता है जो युग के यथार्थ का बोधक हो, इसी प्रकार समीक्षा का भी यथार्थ बोधक होना आवश्यक है, अन्यथा उसका कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। इसी तरह यदि समीक्षा किसी कृति—आलोच्य कृति—के एक ही पक्ष विशेष की समालोचना करती है, तब भी सम्पूर्णता के अर्थ में उसकी कोई उपादेयता नहीं है। प्राचीन हिन्दी समालोचना केवल गुण-दोषों पर ही आधारित थी, इसी प्रकार पाश्चात्य समीक्षा बाह्य पक्ष निरूपण की ओर ही विशेष बल देती थी; इसी कारण इनका स्थायित्व नहीं हो सका और परिवर्तन के समय ने सबको अपने रास्ते से मिटा दिया। अतः समीक्षा में आलोचना साहित्य की अनुभूति (भाव पक्ष) और अभिव्यक्ति (कला पक्ष) के परीक्षण की पूर्ण समता होनी चाहिये।

अनुभूति तथा अभिव्यक्ति के सम्बन्ध पर विचार

वैसे स्थूल रूप से देखने पर अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में पूर्ण विभिन्नता लक्षित होती है; एक का सम्बन्ध हृदय से है और दूसरे का मस्तिष्क से, किन्तु डा० प्रतापनारायण टण्डन ने दोनों में अन्तर्सम्बन्ध माना है* हम देखते हैं कि श्रेष्ठ साहित्यकार की रचना में अनुभूति पक्ष जितना प्रबल होगा, अभिव्यक्ति पक्ष भी उससे कम सबल नहीं होगा। दूसरे शब्दों में श्रेष्ठ साहित्यकार की अनुभूति स्वाभाविक रूप से निर्दोष रहती है, क्योंकि अनुभूति की अभिव्यक्ति के माध्यमों पर उसका विशेष रूप से अधिकार रहता है। डा० टण्डन जी के अनुसार एक उच्च कोटि का रचनात्मक साहित्यकार अपनी अनुभूति को जो अभिव्यक्ति देता है, वह एक काल्पनिक अथवा चामत्कारिक वस्तु नहीं होती, वरन् स्वाभाविक रूप से, उस अनुभूति की सत्यता के अनुपात में कलात्मक परिपूर्णता से युक्त होती है।† इसीलिये अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम स्थूलतः कलात्मक और वैज्ञानिक विशेषतायें रखते हुये भी, एक प्रकार की एकात्मकता से युक्त है। किसी भी श्रेष्ठ साहित्यकार की भावना उसकी

---

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ : डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ० ८६६।

† वही, पृ० ६२१।

नियम किसी एक कृति के आधार पर होते हैं, अतः दूसरी कृति की समीक्षा में इन नियमों को भी ताक पर रख देना पड़ेगा, और नवीनतम मानदण्ड की अपेक्षा होगी।

वस्तुतः प्रत्येक साहित्यकार की अपनी-अपनी विशेषतायें होती हैं। इसी कारण साहित्य में अनेकरूपता है। विश्व के महानतम साहित्यकारों में इसी कारण से हम भारी विषमता देखते हैं। महर्षि वेदव्यास, होमर, कालिदास, शेक्सपीयर, मिल्टन, तुलसी, सूर, बिहारी, कीट्स, टालस्टाय, शोलोखोव, आदि महान् मनीषियों में कठिनाई से शायद ही एक दो ऐसे मिलेंगे जो स्थूल अर्थों में परिवेशगत एकात्मकता रखते हैं।* यद्यपि मूल मानव-अनुभूतियों के रूप तथा अभिव्यक्ति के स्तर की प्रौढ़ता की दृष्टि से उन सबमें आश्चर्यजनक समानता दिखायी देती है।†

सम्यक् मान के स्वरूप पर विचार

अन्त में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सम्यक् मान के स्वरूप विचार किया है। उनके ये विचार किसी मतवाद विशेष से आगृहीत नहीं हैं, अपितु उनके पीछे उनका—स्वयं का—प्रबुद्ध विवेक है। इस मान निर्धारण में उन्होंने सर्वथा नवीन दिशा के संकेत दिये हैं; जैसा कि हम अभी लिख चुके हैं, समन्वयात्मक समीक्षा की दिशा की ओर मार्ग दर्शन विश्व साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा कराया गया है। इस दृष्टि से वे विश्व समीक्षा साहित्य के प्रबुद्ध साहित्यकारों की प्रथम श्रेणी में अग्र स्थान पर आसीन हो जाते हैं। सम्यक् मान निर्धारण के स्वरूप पर विचार करते समय वे लिखते हैं—

'समीक्षा का कार्य इतिहास का मूल्यांकन और आलोचनात्मक सिद्धान्तों का परीक्षण है। समीक्षात्मक उद्देश्यों की यह बहुरूपता उसकी रूपात्मक भिन्नता का कारण होती है। इसलिये हमारे विचार से समीक्षा का समन्वित

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ: डा० प्रतापनारायण टण्डन, पृ० १२१।

† वही, पृ० १२२।

परिवेश युग और प्रवृत्ति की संकुचितता से मुक्त होना चाहिये भारतीय मानदण्डों की तरह अनुभूति प्रधान और न ही पाश्च की तरह अभिव्यक्ति प्रधान होना चाहिये, अपितु [आलोच्य सा व्यक्त मूल अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति की परख करनी च न तो पूर्ण रूढ़िवादिता का पिष्टपेषण हो और न नवीनता क आग्रह, वरन् इनके मध्य का मार्ग होना चाहिये। उसमें युगीन ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिये।

'जहाँ तक उसके निर्धारण की संभावनाओं का प्रश्न है, वे त हैं, जब साहित्य की विभिन्न युगीन कृतियों (महान कृतियों) और का संयोजन करके वैयक्तिक विकास के साथ उनका संतुलन समीक्षा का मान और आदर्श स्वयं उत्कृष्ट कृतियाँ होती हैं।'* इ

*इतना होते हुए भी डा० प्रतापनारायण टण्डन जी की दृ*ष्टि भारतीय ही है; चाहे वर्तमान समय की साहित्यिक प्रगति भले ही देशों की महत्तर उपलब्धियों से हीन हो, किन्तु डा० प्रतापनारायण यह स्पष्ट कथन है कि विकास के किसी भी युग में प्राचीन सि उनकी परम्पराओं का परित्याग नहीं किया जा सकता। अतः हम उ *करेंगे और उनके महत्वपूर्ण अंशों को स्वीकृत करके* शास्त्रान्वेषण को जाग्रत करते हुये उसकी चेतना की पृष्ठभूमि में नयी संभाव चिन्तन करेंगे।†

विचार और निष्कर्ष

इस दृष्टि से यह शोध-प्रबन्ध हिन्दी शोध के इतिहास के क्षे नयी दिशा का संकेत करता है। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों साहित्य से सम्बन्धित जो शोध कार्य हुआ है, उसको देखकर इस ग्रं

* समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ : डा० नारायण टण्डन, पृष्ठ ६२४।

† वही, पृष्ठ ६२४।

व्यापक आधार पर रचित सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास कहा जा सकता है। इसमें पहली बार सफलतापूर्वक यह स्पष्ट किया गया है कि साहित्य और समीक्षा का परस्पर गहरा सम्बन्ध है, अतः एक विधा में उत्पन्न ह्रासात्मकता के कारण दूसरी विधा का भी ह्रास हो सकता है।

विश्व समीक्षा की पृष्ठभूमि में रचित यह शोध प्रबन्ध डा० प्रतापनारायण टण्डन के व्यापक दृष्टिकोण का सहज ही आभास दे देता है। विचारों की परिपक्वता, गहनता और अनुभूति की मौलिकता उनके चिन्तन में निखार पैदा कर देती है इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि उन्होंने विवेच्य विषयों का अनुशीलन अत्यन्त विवेकशील प्रज्ञा से किया है। सर्वप्रथम उनका यथा-संभव पूर्ण आकलन किया है, फिर उनके विश्लेषण में प्रवृत्त हुये हैं। उनकी इन विवेचनाओं से निस्सदेह इस युग की समीक्षा को एक विशेष प्रकार की गति और प्रौढ़ता मिली है।

सारांश यह कि डा० प्रतापनारायण टण्डन के ये विवेचन उनकी सैद्धान्तिक समीक्षा के अत्यन्त भव्य स्वरूप हैं। इनको देखकर हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि डा० प्रतापनारायण टण्डन ने एक ओर जहाँ साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष और समीक्षा की समीक्षात्मक पृष्ठभूमि का गवेषणापूर्ण विश्लेषण कर अपनी तथ्य ग्राहिणी प्रज्ञा का परिचय किया है, वहाँ दूसरी ओर अनेक मौलिक चिन्तनाओं के बल पर समीक्षा के नवीन मान निर्धारित कर आगामी लेखकों और समीक्षकों को एक प्रशस्त मार्ग का प्रदर्शन भी किया है।

अध्याय : ८

उपसंहार

नूतन साहित्य-धारा

हिन्दी साहित्य की पूर्व-लिखित विधाओं को गतिशील करने मे डा० प्रतापनारायण टण्डन द्वारा दिये गये योगदान पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर प्रतीत होता है कि हिन्दी ही नही, अपितु विश्व की सभी भाषाओं में, कुछ ही ऐसे साहित्यकार होंगे जो इस तरह के साहित्य-सर्जक और प्रबुद्ध समीक्षक दोनों ही हों। सर्जनात्मक साहित्य की इन विविध विधाओं मे किसी एक विधा का पूर्ण ज्ञाता एवं उसको नवीन मोड देने वाला मिल सकता है; यह भी हो सकता है कि वह सुधी समालोचक अथवा शोधकर्ता के रूप मे भी प्रख्याति प्राप्त हो, किन्तु सर्जनात्मक और समीक्षात्मक दोनों ही प्रकार के साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी परिष्कृत प्रतिभा एवं विवेकशील प्रज्ञा का कुशल परिचय देना—इस प्रकार कि उनका जो भी क्षेत्र देखा जाय अपने मे पूर्ण मिलेगा—उस विधा पर नवीन आलोक फेंकता मिलेगा—यदा-कदा ही युग-प्रवर्तक साहित्यकारों मे प्राप्त होता है।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, डा० प्रतापनारायण टण्डन का अब तक का समस्त (आलोच्य) साहित्य उनके विद्यार्थी काल से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में यह समस्त साहित्य एक मनःस्थिति विशेष पर केन्द्रित होने के नाते उनकी बहुमुखी प्रतिभा की एक न्यूनतम उपलब्धि मात्र है। इस युवक साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, जिससे

उसकी आगामी सम्भावनाओं पर प्रकाश पड़ सके। विचारणीय है कि जो अपनी युवाकालीन (एक अपरिपक्व मनःस्थिति में) प्रौढ़ साहित्य की रचना कर चुका है, वह अपने प्रौढ़ मस्तिष्क से सर्जना की मनःस्थिति में स्थित होकर, साहित्य सर्जना करेगा साहित्य की वह कितनी बड़ी उपलब्धि होगी, यह कल्पनातीत है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने उपन्यास भी लिखे और कई नाटकों का प्रणयन किया और एकांकियों का भी; एक बौद्धिक की प्रतिभा से संयुक्त होकर बौद्धिक कविता की सर्जना की तो अपने विचारों से प्रेरित होकर मौलिक निबन्धों की भी; एक कुशल सा रूप में समालोचना साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान दिया। एवं वैज्ञानिक गवेषणा बुद्धि के साथ महान शोधार्थी भी। उनकी प्रति न होकर बहुमुखी है, और अधकचरी बहुमुखता उसमें नहीं है। झंझाओं से जूझते हुए, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों से संघर्ष करते हुए और पथ पर अपनी शिक्षा को गति देते हुए जो भी साहित्य उन्होंने लि किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। एक सर्वगुविधा सम्पन्न साहित्यक चिन्तन की परिपक्वता-काल मे अपने साहित्य को जो प्रौढ़ि दे पा उनके साहित्य से इस समय भी अछूती नहीं है। संघर्ष उनके लिए उनकी मुस्कुराहटें दूसरों के लिए हैं।

उपन्यास क्षेत्र में उन्होंने उपन्यास साहित्य को सस्ते रोमांटिक प्रे से ऊपर उठाकर बौद्धिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। अब तक के उ को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि इसका सम्बन्ध दर्शन अथवा के मस्तिष्क से भी हो सकता है। 'अजय की डायरी'—डा० देवराज, और द्वीप'—अज्ञेय जैसे दो-तीन अपवादों को छोड़ कर; क्योंकि उपन्यास रीडिंग में समाप्त करने की, घटना प्रधान कथा मात्र समझा जाता रहा है, उसे अन्य विषयों की तरह वह मान्यता प्राप्त नहीं होती, जो उसे सि साहित्य की श्रेणी में ला सके।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने पहली बार उपन्यास साहित्य में एक कारी पग उठाया, और उसे केवल मनोरंजन का माध्यम ही न ब जीवन के मधुर और अनुभूतियों का आस्वादन भी कराया। 'अजय की

(डा० देवराज कृत) आदि उपन्यास यद्यपि उससे पूर्व इस सम्बन्ध में कार्यशील हो चुके थे, किन्तु उनमें जीवन को इतने ऊँचे धरातल पर लाकर प्रतिष्ठित कर दिया है, जो सामान्य धरातल के व्यक्ति की तो कौन कहे, प्रबुद्ध पाठक भी सहज ग्राह्य नहीं कर पाता; अतः उनकी गुत्थियाँ बनी रहने के कारण—कोई निदान न मिलने पर, गति नहीं मिलती, बोझिलता ही बनी रहती है। 'रुपहले पानी की बून्दें' डा० प्रतापनारायण टण्डन का हिन्दी मे इस दृष्टिकोण से प्रथम उपन्यास है, जिसने दार्शनिक पहलू को सामने रख कर मृत्यु के विविध आयामों को खोजने की चेष्टा की है और उसको (उपन्यास को) कल्पना के घेरे से निकाल कर यथार्थ के मंच पर ला खड़ा किया है; वह यथार्थ जो कल्पना के माध्यम से ही यत्र-तत्र देखा-परखा गया है, अनुभूत भी है; और पर्यवेक्षित भी है।

डा० टण्डन जी की रचनाओं में मृत्युबोध

डा० टण्डन जी के सृजनात्मक साहित्य की मुख्य विशेषता उनका मृत्यु अथवा उसी की सहोदरा पीड़ा—असह्य यन्त्रणाओं का गहरा बोध है। 'रुपहले पानी की बूंदें' में प्रकाश और अचला की कथा में अचला की मातृत्व की उद्दाम भूख 'मृतकन्या का जन्म और उससे पूर्व अचला का मृत्यु की भयानक यन्त्रणाओं' से लड़ना आदि का सशक्त चित्रण हुआ है। मौत के प्रत्याशित-अप्रत्याशित रूपों और उनके प्रकटीकरण के विभिन्न प्रकारों की कुशल अभिव्यक्ति से यह उपन्यास भरा पड़ा है।

'रीता' में भी रीता का अन्त मे स्वयं को मृत्यु की गोद में छोड़ देना, प्रसव कालीन भयानक यन्त्रणाओं को सहना, मरने को चाह होते हुए भी मौत से संघर्ष पर इच्छा शक्ति की प्रबलता के कारण उसकी गोद मे चले जाना मृत्यु की विभीषिकाओं का गहरा बोध कराता है।

'अभिशप्ता' की नायिका निशा तो आदि से अन्त तक मृत्यु के अनिश्चित झूले में झूल रही है; वह जानती है कि उसकी जिन्दगी कुछ घण्टों की है (डाक्टर—यमराज सहोदर—ने उसकी जीवन सीमा चार घण्टे निर्धारित कर दी है), इससे उसे निराशा के साथ ही सान्त्वना भी हुई है; कम से कम इन भयानक यातनाओं से त्राण तो मिलेगा ही, किन्तु फिर भी संघर्ष करती है,

जीवन की चाह उसे मृत्यु से संघर्ष को ही बाध्य करती है ; यद्यपि व
है कि मृत्यु से लोहा लेना सरल काम नहीं और अन्त में उसे हारना ह
वह मृत्यु से संघर्ष में हारती है, और उपन्यास के अन्त में इसका आ
जाता है।

'वासना के अंकुर' में भी गंगा और रमेसुर का मृत्यु की या
जूझना, गरमी की बीमारी से फूटा हुआ कोढ़ और गंगा से संभोग—
बोधों में भी जीवन की कामना की पुष्टि करता है। रमेसुर अपने
निराश है, असह्य पीड़ाएं उसको मर्मान्तिक वेदनाएं दे रही हैं, फिर
जीना चाहता है, अच्छी तरह जीना चाहता है ; गंगा उसका रोग ले
उसकी वासना स्फुटित हो जाती है और रमेसुर बच जाता है, पर
तो एक ग्रास चाहिये ही ; रमेसुर नहीं गंगा ही सही। गंगा मृत्यु के प्र
-अप्रत्याशित रूपों मे उलझती जा रही है, वह संघर्ष करती है, पर सं
मान जाते हैं और एक दिन वह सब कुछ छोड़ कर मृत्यु का आलिंग
लेती है।

कहानियों में भी मृत्यु बोध कम नहीं उभरा है। 'शून्य की
टी. बी. का मरीज मृत्यु से भयभीत है। पर इसका मृत्यु बोध अन्य मृ
से भिन्न है। कहानी का नायक जीवन के सत्य को पा चुका है, उसे तथा
मोह से छुटकारा मिल गया है, फिर भी वह जीवन की चाह को अपने
से नहीं, दूसरों के माध्यम से अपने प्रतिरूप रूप से जीवित रहना चा
फलतः मृत्यु के आलिंगन को प्रस्तुत है—उसे अब मरने से भय नहीं
अन्त में एक आत्मज्ञानी की तरह कह उठता है—आ मृत्यु, आ,
प्रस्तुत हूं।

'शून्य की पूर्ति' कहानी का मृत्यु बोध आत्मज्ञानी का सा मृत्युबोध
तटस्थ भाव से अन्य वस्तुओं की तरह उसका भी निरीक्षण करता है
शरीर को उसी प्रकार छोड़ने को तैयार हो जाता है जैसे मनुष्य पुराने
को छोड़ कर नये ग्रहण कर लेता है। क्योंकि उसे विश्वास होता है कि अ
अमर है, वह कभी नष्ट नहीं होती, पुनः अन्य शरीर धारण कर लेती है।

'गोरी के......' मे भी इसी प्रकार का मृत्युबोध है, पर है वह पूर्ण नि
ऊपक। जमींदार की बहू के मर जाने पर सहना का उसकी मजार पर

फटकना उसकी आत्मा के टूट जाने का संकेत है। 'मृतात्मा से साक्षात्कार' में डा० सेन का बिहारी लाल की आत्मा से साक्षात्कार और मृत्यु की विभीषिकाओं तथा उससे उत्पन्न ऊहापोह में डोलना नायक की विशेष मनःस्थिति से उद्भूत मृत्युबोधों का स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। 'वह शाम' यद्यपि फिक्शन है, फिर भी अप्रत्याशित मौत पर घर वालों एवं रिश्तेदारों में सन्नाटा, रुदन का करुण स्वर एवं उसकी प्रतिक्रियाएँ आदि का कुशल चित्रण हुआ है।

'स्वर्ग यात्रा' नाटक में मृत्यु कामी राजपूत कुल उत्पन्न अर्डकमल, सादूल और कोडमदे का मृत्यु के अनेक रूपों से संघर्ष, अपमान एवं पराजय में मृत्यु का अधिष्ठान आदि इसी प्रकार के मृत्यु बोधों का संकेत करते हैं। अपमानित जीवन से मृत्यु कहीं अच्छी है, यह इस नाटक से अच्छा आभासित होता है, इसी कारण सादूल कम सेना के होते हुए भी अर्डकमल से लड़ जाता है, और मृत्यु को प्राप्त होता है ; कोडमदे भी अपने सद्यः पति की मृत्यु पर वैधव्य के अपमानित जीवन के भार को लिए हुए जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना उत्तम समझती है, इसी लिए स्वयं चिता में बैठकर मृत्यु का वरण कर लेती है। 'नवाब कनकौवा' में यह मृत्यु बोध दूसरे ही प्रकार का है। नवाब कनकौवा हारते हैं, पर मृत्यु की गोद में नहीं जाते, फलतः उन्हें गधे पर सवार करके सिर मूंड कर काला मुँह करके शहर मे घुमा कर अपमानित किया जाता है। और उनका जीवन नरक तुल्य हो जाता है। 'नौ हजार की चपत' में हरीश के समस्त अर्जित धन का नाश होना और असहाय की तरह इधर-उधर घूमना अर्थाभाव से उत्पन्न मृत्यु के अन्य रूपों का बोध कराता है। यहाँ मृत्यु के अन्य रूपों का अप्रत्यक्ष आभास होता है, पर वह है स्पष्ट ही।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की कविताओं में भी मृत्युबोध अच्छा उभरा है। अपितु दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मौत के अनेक रूपों, भूत, भविष्यत् और वर्तमान के रूपों, का सफल अभिव्यंजन उनकी कविताओं में हुआ है। यहाँ मृत्यु का गहन अध्ययन है। 'अन्धी दृष्टि' उपन्यास में तो एक छोटी-सी शिशु कन्या की मृत्यु की असह्य यातनाओं और विभीषिकाओं का चित्रण हुआ है। अन्धी बालिका रीति जन्म से अन्धी है, वह भगवान के संसार को देखना चाहती है, अनुभव करना चाहती है, फलतः हाथ-पैर मारती है, पर कोई फल नहीं होता; सब उस पर हँसते हैं, उसकी अशक्तता का परिहास

करते हैं, मम्मी उसे डांटती-फटकारती हैं, पापा सहानुभूति जता स्नेह, वह वात्सल्य नहीं दे पाते, जो रीति चाहती है। पापा की स संबल दीखती है, पर उसका अन्तःकरण अशान्त है, कोई उसे स्नेह वह रोती है, कलपती है, अपने दमित आक्रोश से उत्पन्न आँसुओं पर रो नहीं सकती, घुट-घुट कर लम्बी साँसे लेती है। लेकिन डा की कविताओं मे मृत्युबोध प्रस्तर प्रतिमाओं के माध्यम से उभर युग देखे हैं, शताब्दियों से शहरों, भवनों और व्यक्तियों के बन होते देखा है, फलतः उनका मृत्युबोध अधिक सशक्त है, अधिक या उसमें अधिक साधारणीकरण शक्ति है।

मूर्तियाँ पाषाणी हैं, वे बोल नहीं सकतीं, लम्बी-लम्बी सां सकतीं। अन्धी शिशु-कन्या रीति अपनी वेदना को—मृत्यु की पीड़ा तो कर सकती है, यह दूसरी बात है कि उसकी वेदना के प्रति प्रकटीकरण किस प्रकार हो। लोग रीति को सहानुभूति तो देते दिखाते हैं; पर इन नग्न प्रतिमाओं को ? आते-जाते भ्रमणार्थी उ स्पर्श करते हैं और अपने खुरदरे हाथों से उनके काल के प्रहार कोमल अंगों को मसलते हैं। वे देखती हैं, मर्मभेदी चीत्कार करती हैं कर नहीं पातीं, वर्जित नहीं कर पातीं, क्योंकि बेबस हैं। उनकी चीत्कार भी कोई नहीं सुन पाता, वे मूक जो हैं; अतः उनकी व्यथा खुलती नहीं, और दृढ़ से दृढ़तर होती जाती है। मूर्तियाँ आती मृत्यु चुनती हैं, अपना 'अजन्मा' सौंदर्य खो बैठी हैं, अतः चाहती हैं कि म को अमर सन्देश दे दें, जिससे वह भौतिकता की चरमोन्नति को ही का सत्य माने बैठा है, उससे आगे की भी सोच सके।

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन की रचनाओं में मौत का साम्रा है और उसका अवलोकन अनेक रूपों में किया गया है। उनकी कवि कार' में तो चित्रकार ही मौत का चितेरा है, जिसे लोग अब नहीं कभी—जब मृत्यु उनके केश पकड़ कर खींचेगी—उसे जानेंगे, पहचानेंगे डा० टण्डन भी स्वयं भी मृत्यु के प्रत्याशित, अप्रत्याशित दोनों रूपों के चितेरे हैं, ऐसे चितेरे जो चित्र ही नहीं बनाते उन्हें जीवनदान भी और इस प्रकार के चित्र उनकी सभी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

शिल्पगत प्रयोग—कथानक, पात्रों का चरित्रांकन और भाषागत प्रयोगों में डा० प्रतापनारायण टण्डन ने नित्य—नवीन कल्पनाओं का आश्रय लिया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों ने उनकी रचनाओं को नवीन रूप दे दिया है। यह उनकी शैली विशेष का ही प्रमाण है, कि कथानक पुराने होते हुए भी नवीन लगते हैं और रुचि को परिष्कृत करते है। भावों की सम्प्रेषणता, शैलीगत विविधता और अपूर्व बौद्धिकता उनके प्रयोगों की विशेषताएँ हैं। उनके इन्हीं प्रयोगों के बल पर उनके कथानक विश्व-स्तरीय लगते हैं; सार्वभौम सत्यों को सहेजते दीखते हैं। यद्यपि ये प्रयोग इतने परिपक्व नहीं हैं, कि समूच चेतना को प्रतिबिम्बित कर रहे हों, फिर भी उनका परिमाण ऐसा है कि इसका आभास अवश्य हो जाता है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के उपन्यासों के शिल्प-विधान में एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके अनेक परिच्छेद अपने में स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्र से यहां पर आशय पूर्वा से और आगे से सम्बन्ध न होने से है। 'रूपहले पानी की बूँदें' और 'वासना के अंकुर' इसके अनन्य उदाहरण हैं। 'रूपहले पानी की बूँदें' उपन्यास में प्रकाश के मस्तिष्क में कौंधने वाली घटनाएँ एक-एक परिच्छेद में वर्णित होकर स्वयं में एक-एक कहानी की विशिष्टताएँ सजाये हुए हैं। इसी प्रकार 'वासना के अंकुर' में रमेमुर और गंगा के सस्मरण भी कहानी-कौशल को अपने में समेटे हुए हैं। 'अभिशप्ता' और 'रीता' में भी अनेक परिच्छेद अपने में प्राणवान कहानियाँ हैं। इस दृष्टि से उनका शिल्प कौशल अपने में अनूठा है और अपने ढंग का अकेला है।

वैयक्तिक अनुभूतियाँ

साहित्य का आदि-स्रोत मानव हृदय में उद्भूत अनुभूतियों का अभिव्यक्तिकरण है। अपने जीवन को भोगते समय, उससे सन्निकटता स्थापित करते हुए, आस-पास के वातावरण में जो-जो अनुभूतियां सहृदय साहित्यकार में उत्पन्न होती हैं, उन्हीं को किसी रचना के माध्यम से वह व्यक्त कर देता है। आदि कवि की काव्य सरिता भी इसी का परिणाम थी। महाकवि कालीदास का मेघदूत स्वयं उनके प्रिया-हीन व्यथित हृदय—की निगूढ़ अनुभूतियों का करुण संगान ही कहा जायेगा। यह दोनों की एकान्तिक अनुभूतियां ही

यों, जिन्होंने उसे शृंगार का व्यथित कवि बना दिया; कवि प्र
हृदय ही 'आंसू' बनकर हृदय वारिद से साहित्य सागर में
प्रतापनारायण टण्डन का साहित्य—यदि उनकी अनुभूतियों
जीवन का, भोगे हुए जीवन के कुछ अनुभूत क्षणों का परिणा
कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

डा० टण्डन जी के समस्त साहित्य में उनकी अनुभूतियां
उनका जीवन बोल रहा है। जीवन सागर से उनके मस्तिष
भाव-मुक्ता चुनकर साहित्य-माला में पिरो दिये हैं। और
दिये हैं कि वे दूर से ही अपनी अपूर्व झलक मार रहे हैं। च
या कहानियां, एकांकी हों या कविताएं—सर्वत्र उनका अनुभूत
है। किन्तु इस जीवन के बोल इतने अस्पष्ट हैं कि सामान्य
जीवन से सम्बन्धित ही दिखायी देते हैं।

'अन्धी दृष्टि' उपन्यास उनकी बड़ी कन्या के जीवन को
लिखा गया ज्ञात होता है, उनकी बड़ी बालिका भी नेत्र विका
और संयोग से उसका नाम भी रीता ही है, जो उपन्यास की न
सन्निकट है। रीति की कथा रीता की कथा है और रीति के प
लेखक का अपना जीवन है, उसकी अपनी अनुभूतियां हैं जो हृदय प्र
मस्तिष्क पर चढ़कर बोल रही हैं। 'रूपहले पानी की बूंदें'
विचारधारा-समाज को—भित्र वर्ग के सूक्ष्म अध्ययन से उत्पन्न हुई
के अंकुर' में लेखक के आस-पास का निम्न मध्यवर्गीय घरानों
प्रस्फुटित अनुभूतियों का चित्रण है और 'रीता' के प्रारम्भिक पृ
लेखक का जीवन चित्रित है। रमेश के माध्यम से डा० प्रतापना
अपनी गृह स्थिति का परिचय दिया ज्ञात होता है।

एकांकी और कहानियों में ये अनुभूतियाँ और भी अधिक
हैं। 'नौ हजार की चपत' एकांकी के पढ़ने से लगता है कि कहीं
ही इसी प्रकार का धोखा उठ चुका है, और उसी को कल्पना के
सामने प्रस्तुत कर देता है। क्योंकि यह तो सर्व-विदित ही है कि
डा० प्रतापनारायण टण्डन 'युग चेतना' नामक मासिक पत्रिका
मण्डल में थे और कुछ समय बाद उस पत्रिका को बन्द हो जा

'तड़ाय कनकौवा' एकांकी और 'वह काटा है' कहानी भी लेखक के पतंगबाजी के शौक से सम्बन्धित घटनाएँ ज्ञात होती हैं। लेखक स्वयं भी पतंग उड़ाने में काफी निपुण है और अपने किशोर काल में इसी प्रकार के अनेक पेंच लड़ा भी चुका है।

'वह चेहरा' कहानी डा० प्रतापनारायण टण्डन के पत्नी वियोगी हृदय से—जब उनकी पत्नी मायके चली गयी हो—निसृत सी लगती है और 'एक शाम', 'चौक से हजरतगंज तक', 'सड़क बस और यात्री' आदि उनके जीवन के कुछ ऐसे ही क्षणों के अनुभव ज्ञात होते हैं, जिन्हें उन्होंने कुशलतापूर्वक एक तार में पिरो दिया है। 'स्वर्गीय मिश्र जी' तो स्पष्ट ही लखनऊ विश्वविद्यालय के वरिष्ट प्रोफेसर डा० ब्रजकिशोर जी मिश्र के आकस्मिक निधन पर आधारित है। स्वर्गीय डा० ब्रजकिशोर जी मिश्र के प्रति लेखक के हृदय में क्या अनुभूतियाँ हैं, इन्हीं का सफल अभिव्यंजन इस कहानी में हुआ है।

'संस्कारों की दूरी' डा० प्रतापनारायण टण्डन की सबसे सशक्त और अनुभूतिपरक कहानी है। मई सन् १९६४ में उन्हें विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। वहां इसी प्रकार की अनुभूतियों का बोध हुआ होगा, जो इस कहानी में चित्रित हैं, यह निस्सन्देह है। एक प्रबुद्ध मस्तिष्क लिए हुए, भारतीय संस्कारों को हृदय में स्थान दिये हुए जब अपने संस्कारों के पूर्ण विपरीत वातावरण में वे अपने को पाते हैं तो स्पष्ट ही इसी प्रकार की अनुभूतियां उत्पन्न हुई होंगी। यहां श्रवण अथवा पर्यवेक्षण ज्ञात नहीं होता, अनुभव ज्ञात होता है; लेखक, लगता है, वहां रह चुका है और उन क्षणों को अपने साथ जिया चुका है। लेखक का सन् १९६४ का विदेश भ्रमण हमारे कथन की पुष्टि कर देता है।

वैयक्तिक अनुभूतियों की सहज और सफलतम अभिव्यक्ति यदि उनकी किन्हीं रचनाओं से सबसे सुन्दर हुई है तो वे उनकी कविताएँ हैं। उनकी कोटिक कविताएँ केवल कल्पना लोक की अप्सराओं के चित्रण का माध्यम नहीं हैं और न वे 'भुलावा देकर' इस जगत से दूर की कोड़ी लाती हैं, अपितु वे कविताएँ उनके अनुभवों को—अनुभूत क्षणों में सहेजे हुए भावों की— मंजूषाएँ हैं। इनमें लेखक के विचार और अनुभूतियों का सराहनीय संगम हुआ है।

अपने विदेश भ्रमण के दौरान डा० प्रतापनारायण टण्डन के रोम,

पिस्टोइया, फ्लोरेंस, पीसा आदि के भव्य भवन और प्रस्तर ३
उनकी चित्रकारी और सुन्दरता पर लेखक आश्चर्य कर उठता है
उसे अनुभव होता है कि यहाँ भौतिकता की होड़ इतनी तीव्र
मानव न रह कर मशीन बन गया है, फलतः वह सदैव अ
असन्तुलित रहता है, पलभर को भी इस 'व्यामोह' से हटकर देख
अवकाश नहीं है। लेखक को अनुभूति होती है कि इन्हें कहीं वि
शान्ति नहीं है, वे शान्ति चाहते है, पर उस ओर दौड़ते नहीं,
प्रयत्न नहीं करते— 'लगता है रोम, समूचा कहीं खो सा गया है।

लेखक मूर्तियों को देखता है, उनका दर्शन उसके हृदय व
नही करता वरन् और भी संवेदनशील बना देता है—उसके मा
बोल उठते हैं और वह मूर्तियों की आत्मा से अपना सम्बन्ध स्था
सुनता और बोलता हुआ लगता है। उसे अनुभव होता है कि ये
मानव को शान्ति का संदेश देना चाहती हैं, पर कोई उनके सं
नहीं है सुनने का उसे अवकाश नहीं है; फलतः कवि स्वयं उन मू
को अपने शब्दों में दोहराता है। यहां पर डा० प्रतापनारायण
अनुभव उन अनुभवों से भिन्न नहीं हैं, जैसे कोई दूरस्थ व्यक्ति व
बाद अजन्ता या ऐलोरा की गुफाओं में जाये और वहां की भव्यता
कारी से प्रभावित होकर स्वयं को उसी काल और देश का अनुभ
जिस समय और स्थान पर उनका निर्माण हुआ था।

इस दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि डा० प्रतापना
का समस्त साहित्य उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियों से परिपूर्ण है।
उनकी अपनी हैं—जीवन को जीने अथवा भोगने से मिली हैं, पर्यवेक्ष
इस पर भी भावना का अतिरेक नहीं दीखता; इन अनुभूतियों में
ही उनका प्रधान गुण है।

डा० टण्डन जी : विचारक के रूप में

डा० प्रतापनारायण टण्डन, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके
उपन्यासकार, कहानीकार, नाटक कार, एकांकी लेखक, कवि निब
और आलोचक ही नहीं हैं, स्वतन्त्र विचारक भी हैं। सर्वत्र (प्र

रचना मे) इनके विचार नवीन परिवेश में सामने आते हैं। उनका समस्त साहित्य उनके चिन्तन और विचारों की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति है। उनका एक निश्चित उद्देश्य है, और उस तक पहुँचने के लिए उन्होंने शुद्ध बुद्धि का प्रयोग किया है। साथ ही उन्होंने विचारों के माध्यम से अपने मन्तव्यों का दुरारोपण नहीं किया और न ही उनको मानने में किसी प्रकार की हठवादिता ही है; विचार स्वयं में मौलिक चिन्तन की उद्‌भावनाओं को सहेजे हुए हैं। जिस तरह तुलसी का 'स्वान्तः सुखाय' 'लोक हिताय, के रूप में व्यक्त हुआ था, उसी प्रकार डा० टण्डन जी का 'लोक हिताय' स्वान्तः सुखाय से सम्बन्धित है। उनके ये विचार उपन्यासों, कहानियों, नाटकों, एकांकियों और कविताओं के माध्यम से— अप्रत्यक्ष रूप से—प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि निबन्धों के रूप में भी उनके विचार मिलते है, किन्तु मुख्य विचार सर्जनात्मक साहित्य (कथा साहित्य) के पात्रों के द्वारा ही व्यक्त हुए हैं।

डा० प्रतापनारायण टण्डन भारतीय हैं और मनः मस्तिष्क से भारतीय हैं, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति उन्होंने बुद्धि के झरोखों पर पर परदा नहीं डाला है। जो यथार्थ है, उसे स्वीकार करने मे उन्होंने सहज उदारता दिखायी है। पाश्चात्य देशो की भौतिक प्रगति, उनके उन्नति के साधन और सुख पूर्वक जीने की—प्राप्त हुए क्षणों मे अधिकतम सुख उपार्जन-इच्छा को कभी उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि की चकाचौंध मे अवहेलना नहीं की। भारतीय प्रगति को भी वे हेय नहीं समझते किन्तु जहां तक भौतिक प्रगति की दृष्टि से तुलना का प्रश्न है, वे पाश्चात्य देशो की प्रगति को ही वरिष्ठता देते हैं। उनका निश्चित विचार है— जो यथार्थ ही है—कि पाश्चात्य देशों की प्रगति के सम्मुख हमारी कोई स्थिति नहीं है। उन्होंने समय, सीमा और प्रकृति को वैज्ञानिक उपकरणों से माध्यम ले बाँध लिया है—अपने अनुकूल कर लिया है। वहाँ पर इस दृष्टि से स्वर्ग है, अधिकतम सुविधा एवं सुख के साधन उन्होंने उपलब्ध कर लिये हैं, जबकि हम इस दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। और उनका विचार है कि फिर भी हम हठवादिता के कारण—अपनी वस्तु चाहे कैसी ही क्यो न हो सर्वश्रेष्ठ समझने की मूढ़बुद्धि के कारण—उसकी ओर से उदासीन हैं—उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं—देखते नहीं तो कम से कम ऐसा प्रदर्शित अवश्य करते हैं।

संस्कारों का अन्तर ही इसका मुख्य कारण है। उनका
है कि हम अपने संस्कारों में इतने अधिक घिरे हुए हैं कि उ
ने का अवसर ही नहीं मिलता। हम इतने अधिक सन्तोषी है
, कि प्रगति और सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न ही नहीं करते।
छोड़ कर अकर्मण्य हो जाते हैं। लेकिन इसका आशय यह नहीं
कि सन्तोष अथवा कष्ट सहिष्णुता को वे महत्व नहीं देते। डा०
ण्डन इनके प्रति उदासीन नहीं हैं। उनका स्पष्ट मत है कि ये
ानव की दिव्य विभूतियाँ हैं, किन्तु उनका उचित अनुपात में
क्त होगा। दवा का सेवन लाभकारी है, किन्तु उसका उचित
ा पान लाभ की अपेक्षा हानिकारक ही हो जाता है। यही बात
ष्ट सहिष्णुता के लिये कही जा सकती है। यदि भारत का
न्तोषी और कष्ट सहिष्णु नहीं होता तो न जाने कब की क्रान्ति
देशों का विस्तार गौण हो गया होता और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ
ती। किन्तु 'होइ है सोइ जो राम रचि राखा' की भावना प
पोषण किये व्यक्तियों से अकर्मण्यता के अतिरिक्त और आशा ही
सकती है।

भारतवासी भविष्य देखता है, उसके निर्माण में भूत और
सर्वथा भुला देता है। हमारा भविष्य बनना चाहिए, परलोक में
चाहिए, इसी आशा में और उधेड़बुन में वह इस संसार से उदासी
है—संसार को मिथ्या कहने लगता है। किन्तु क्या यह उदासीनता
है? डा० प्रकाशनारायण टण्डन कभी इसको महत्व नहीं देते।
विचार है कि भविष्य को समुन्नत बनाने के लिए—ऐसा भविष्य
कभी किसी ने देखा नहीं है, और कब आयेगा—यह भी
देना, भुला देना किसी प्रकार अच्छा नहीं कहा जा सकता।

वस्तुतः यदि वर्तमान सुन्दर बनता जाता है तो भविष्य भी
जायेगा, यह निश्चित है। आज का भविष्य [illegible] कल का वर्तमान
[illegible], आज को सुन्दर और सुखी बनाने की चेष्टा ही सही [illegible]
[illegible] कल में आज (वर्तमान) होने लगा है, वह भला ही।

जायेगा। इसके विपरीत यदि भविष्य सुधार की योजनाएँ ही बनती रहीं, तो केवल योजनाएँ ही रह जायेंगी, उनका कोई परिणाम सामने नहीं आयेगा। कारण स्पष्ट है; भविष्य कभी वर्तमान नहीं बनता, परदे के (वर्तमान के परदे के) पीछे रहता है, अतः भविष्य के लिए किये गये प्रयत्न निरी मृग तृष्णा नहीं तो और क्या हैं। हाथ में आये इह लोक को छोड़कर परलोक की समृद्धता की कामना करना, प्रत्यक्ष को छोड़कर अप्रत्यक्ष की याचना करना यदि मूढ़ बुद्धि का प्रतीक नहीं तो और क्या है।

जो मिल रहा है, सामने है, उसे समुन्नत बनाओ, उसे सुखी और समृद्ध बनाओ यही ध्येय होना चाहिए। प्राप्त वस्तु का अधिकतम मात्रा में उपभोग करना, फिर साथ ही साथ आगामी उपलब्धियों के प्रति सजग सचेष्ट रहना ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। पाश्चात्य देशों में वर्तमान के प्रति उदासीनता नहीं है। भारतवासी भूत और भविष्य में जीता है और पाश्चात्य देशों का वासी वर्तमान में जीता है—केवल वर्तमान में। वह मिले हुए पलों का अधिकतम उत्फुल्लता पूर्वक उपभोग करता है, यही कारण है कि वहाँ इतनी समृद्धता दीखती है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी उन्नति दीखती है। क्योंकि वहाँ किसी भी पहलु के प्रति उदासीनता वृत्ति नहीं बरती जाती। सब का एक निश्चित अनुपात है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन भारतीय इतिहास के मुगल कालीन तथाकथित उज्ज्वल पृष्ठ—राजपूत काल को हिन्दू गौरव और संस्कृति का प्रतीक मानने से भी हिचकते हैं। राजपूतों ने देश की आन पर मर मिटने में आश्चर्यजनक वीरता और त्याग का परिचय दिया था, इसमें कोई मतभेद नहीं है। वे त्यागी थे, बलिदानी थे, शूरवीर थे, मरना मरना जानते थे, हँसते-हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते थे, किन्तु पैर पीछे हटाना नहीं जानते थे, यह सभी निस्सदेह किसी जाति के मस्तिष्क को ऊँचा उठा सकता है। किन्तु एक तथ्य—महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे भावना प्रधान थे। भावना के आवेग में उन्होंने कभी बुद्धि का सही प्रयोग नहीं किया। अतः अपनी शक्ति का उचित स्थान पर प्रयोग न करके यत्र-तत्र अन्ध प्रदर्शन करते रहे।

वस्तुतः मुस्लिम काल में ये राजपूत दलित-हिन्दू जाति से सम्बद्ध थे। और

मुस्लिम शासकों की नीति के अनुसार निस्सन्देह शासन की
शिकार थे। इन्होंने उस रोष के प्रतिकार की चेष्टा की, और
अवसर प्राप्त हुए। यह प्रतिकार कोई सम्मिलित प्रतिकार
सबका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ था, अपने राज्य को स्थिति रखने
गया प्रयास था। और यह प्रयास भी ऐसा था कि जिसमें भाव
था। व्यक्तिगत द्वेष और स्वार्थों में देश हित का कोई मूल्य नहीं
राज यदि वीरता के मद में चूर होकर हाथ आये मोहम्मद गौ
देता तो आज भारत का इतिहास ही दूसरा होता। शत्रु को पी
चाहे शस्त्र और सेना सभी नष्ट हो जायें, स्वयं मर जायेंगे
हटेंगे, या तो स्वयं मर जायेंगे या फिर विजय श्री हमारे कदम
भावना ने न जाने कितने सुन्दर अवसरों को खो दिया, ऐसे अवस
बचने को ही बदल देते। अपनी सेना नष्ट हो जाने पर भी, शत्रु
से घिरे रहने पर भी, बचने की भावना न होना कहाँ की बुद्धि
उसी युग के वही व्यक्ति जान सकते हैं।

सत्य तो यह है कि व्यक्तिगत स्वार्थों और वचन पालन ने उन
यहाँ तक बढ़ा दिया था कि मरने या मारने के अतिरिक्त उन्हें कुछ
ही न था। वस्तुतः राजपूती आन-बान, मर्यादा और प्रतिष्ठा का द
शौर्य का अन्ध प्रदर्शन, प्रेम का विवेकहीन स्वीकरण, और अति
भावना के अतिरिक्त राजपूतों का जीवन कुछ नहीं था। शत्रु चाहे
उन्हें नष्ट करने की फिराक में है, फिर भी यदि वह शरण में आ गया
है, चाहे पुनः उन्हें उन्हीं पर वार क्यों न कर दे।

कविता के सम्बन्ध में उनके विचार स्पष्ट ही वैयक्तिक अनुभूति
में निहित हैं, जो उनके जीवन का एक भोगा हुआ सच है। उनका
है कि कविता वैयक्तिक अनुभूति प्रधान होती है, और ये अनुभूतियाँ
जीने में आती हैं, उनके पर्यवेक्षण में नहीं; क्योंकि सहज, पूर्ण अ
अभिव्यक्त्यात्मकता जिस परिपक्वता और प्रयुक्तता की आशा
कर भी अगर जीवन को जीने से ही आती है।

डा० [illegible] के विषय में आप [illegible] का वैय

पर अभिव्यक्तिकरण भी उसकी सामूहिक परिणति की पृष्ठभूमि होता है। उनका मत है कि मानव मन अपनी सारी जटिलता के बावजूद भी अन्तर्चेतना का जो स्वरूप साहित्य में विवृत करता है, वह उसकी रचना क्षेत्रीय प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का बोधक होता है। रागात्मक जीवन की संवेदनशीलता और मनुष्य की चेतनात्मक सम्पन्नता पूर्णतः एकपक्षीय होते हुए भी उसकी सृजनात्मक संभावनाओं का क्षेत्र प्रशस्त करती हैं। उनके विचार से आज की कविता का उद्देश्य लोककल्याण से हट कर आत्म प्रकाशन हो गया है; यह दूसरी बात है कि आत्म प्रकाशन में ही चाहे लोक कल्याण की भावना निहित हो; अन्यथा अब लोक कल्याण की भावना तो प्रतीक मात्र रह गयी है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के विचार से प्रेम की कोमल भावनाओं का अभिव्यञ्जन करने वाली कविता भी वैयक्तिक चेतना का ही उद्बोधन कार्य करती है। और यह वैयक्तिक चेतना आत्मानुभूति प्रधान होती है, कवि परक होती है, इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक पाठक को सुन्दर लगे। कविता की श्रेष्ठता की कसौटी अब उसकी पाठकों द्वारा प्रशंसा न रह कर, उसकी अपनी एकरूपता है। अब तो कवि अपने हृदय के भावों को व्यक्त कर देना चाहता है अतः दुरूह कल्पनाओं और अप्रस्तुत उपमाओं के गगनचुम्बी महल ढहढहा कर गिरने लगे हैं, अब कविता अलंकारों से बोझिल नहीं होती न ही आध्यात्मिक अन्तर-बोध के मिथ्या दावे ही करती है। अब कविता का उद्देश्य वाहवाही लूटना न होकर जीवनोन्नयन का प्रेरक होने के साथ-साथ चेतना का उद्बोधक हो गया है।

डा० टण्डन जी के विचार से साहित्य सर्जन के लिए यदि साहित्यकार को अध्ययनशील और प्रबुद्ध होना आवश्यक है तो उसकी रचना को पढ़ने वाले पाठक वर्ग का भी प्रबुद्ध होना आवश्यक है। अन्यथा कलात्मक माध्यम से अभिव्यक्त हुई कवि की अनुभूतियों को समझ न पाने से उसका आनन्द नहीं मिल सकता।

आज की नयी कविता के विषय में पाठकों की अनेक शिकायतें सुनने को मिलती है, कि इसमें कोई रस नहीं है, यह नीरस है, आनन्द हीन है। लेकिन इसका कारण यही है कि रीतिकालीन [illegible] सम्बन्धी कविता से इसके

संस्कारों को बांधे हुए वे पाठक कभी इससे साधारणीकरण का
कर पाते । इस संदर्भ में डा० टण्डन जी के विचार हैं—

'जो वैयक्तिक चेतना पूंजीवाद के फलस्वरूप उपजी कही
साम्राज्यवाद द्वारा पोषित बतायी जाती है, वह आधुनिक हि
पर्याप्त मात्रा में सन्निविष्ट है। छायावादी हिन्दी काव्य भी
प्रकार की चेतना का वाहक है; जिसमें बौद्धिक चिन्तन का स्वर
मिलता है। परन्तु तथाकथित नयी समझी जाने वाली कविता
चेतना न केवल इस छायावादी काव्य चेतना से भिन्न है, वरन्
तथाकथित प्रयोगवादी अथवा प्रयोगशील काव्य चेतना से भी अ
रखती। युग-युग से प्रचलित वैयक्तिक चेतना की परम्परागत
नवीन जीवन मूल्यों से कोई तारतम्य आज का कवि नहीं पाता। इ
का पाठक भी कविता में रस नहीं पाता, क्योंकि अपने संस्कारों
होने के कारण वह इस नयी वैयक्तिक चेतना की उस प्रखरता को
कर पाता जो आधुनिक बुद्धिवादी कवि का अनुचिन्तन है। मेरी प
वैयक्तिक चेतना की जो परिणति एक समष्टि होती है, वह वेदना
में ही सम्भव है।' *

इससे स्पष्ट है कि उनकी कविता की अनुभूतियाँ बौद्धिक चिन्त
परिणति हैं। वे आधुनिक बुद्धिवादी कवि की कविता की तरह के
कौशल ही नहीं हैं, वरन् उनकी बौद्धिक चेतना की अभिव्यक्ति का
और मौलिक माध्यम हैं, जो पाठक और कवि में साधारणीकरण होता

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन जी के विचार उनकी दृष्टि
हैं। वे किसी परम्परा की लकीर पर नहीं चले हैं, प्रत्युत
व्यक्तित्व है, स्वतन्त्र विचारधारा है और मौलिक चिन्तन है। अ
बातों के पीछे चलने वाली उनकी काव्यात्मक प्रतिभा नहीं है वरन् वे
युग प्रवर्तक वाली प्रतिभा के अधिष्ठाता हैं।

---

* चमकीले प्रतिबिम्ब, (कविता संग्रह) पृष्ठ ११

डा० टण्डन जी की हिन्दी साहित्य को देन

किसी भी साहित्यिक की भांति डा० प्रतापनारायण टण्डन की हिन्दी साहित्य की देन का पता उनकी रचनाओ के परिमाण और उन रचनाओं के स्तर से लगता है। उनकी रचनाएं, जो अभी युवाकाल की नवांकुरता मे ही अपनी प्रौढ़ता का परिचय दे रही हैं, भविष्य के लिए अनेक आशाप्रद संकेत देती हैं। उनकी देन हिंदी साहित्य की किसी विधा-विशेष मे नहीं है, वरन् उन्होने हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओं के साहित्य को समृद्ध किया है। अब तक वे छोटी-बड़ी करीब दो दर्जन से भी अधिक पुस्तकों की रचना कर चुके हैं।

लिखना तो उनके लिये व्यसन सा है। जब तक कुछ लिख नही लेते, उन्हे कुछ रुचिकर नहीं लगता। लिखना तो उनके लिये प्रतिदिन के भोजन से भी अधिक आवश्यक है। यह उनका व्यसन है, एक लगन है, जिसके कारण वे विषम से विषम परिस्थिति मे भी लिखते हैं। यह एक ऐसी अनवरत साधना है, जो अटूट है, अखंड है और नित्य है। जीवन मे जो-जो संघर्ष उन्होने झेले हैं, जिस प्रकार अपने स्तर को अक्षुण्ण रखा है, उसमें दूसरे के मस्तिष्क की चेतना ही विकलांग हो जाती है, फिर भी आश्चर्य है कि उन्होने साहित्य—साधना नहीं छोड़ी, वह व्यवस्थित ढंग से चलती रही, अब भी लेखन उनके लिए दैनिक भोजन की तरह है। प्रातः से रात तक व्यस्त रहेंगे, जो भी आयेगा उससे सादर और सस्नेह मिलेंगे, जितनी देर वह बैठेगा, प्रसन्नता पूर्वक उसको सहयोग देंगे, किन्तु उसके जाने के बाद—चाहें कितनी ही रात क्यों न हो गयी हो—अपना लेखनक्रम चालू कर देंगे। और तब तक लिखते रहेंगे जब तक कि दैनिक कोटा पूरा नहीं हो जाता।

लेखन में नियमपालन उनकी दृष्टि में मुख्य है। दैनिक नियम यदि किसी कार्य का बना लिया जाता है तो वह अवश्य ही सफल होता है। यही कारण है कि विषम से विषम परिस्थिति का भी उन्होंने साहस पूर्वक सामना किया और सफलता प्राप्त की।

डा० प्रतापनारायण टण्डन का साहित्य सभी के लिए है—जनसाधारण के

लिए भी और प्रबुद्ध पाठक तथा मनस्वी समीक्षकों के लिए
पाठक उसमें अपने मनोरंजन के साधारण खोज सकता है
और विचारशील आलोचक भाव मुक्ता भी चुन सकता है
की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वह स्थूल दृष्टि से देखने
रत्नों के प्रकाश का आभास नहीं देता और उसमें पैठने
उद्भावनाएं, विचार बल्लरियां और भाव-मुक्ताएं देता है।
से भी अधिक प्राप्त कर लेता है और काफी समय त
रहता है।

कविता के क्षेत्र में उनकी देन अद्वितीय है। उनकी क
रोमांटिक प्रेम गीतों की तरह लय ताल पर नृत्य करती है अ
नवीन धारा नव-गीत की तरह भावना का प्राबल्य स्वीकार।
बुद्धि और भावना का समानुपातिक महत्व स्वीकारते हुए वैया
अनुभूति का संकलन करती है। उनकी कविता की भाषा सा
हृदय सापेक्ष है, किन्तु विचारों की अर्थ ग्राहिता के कारण गर्भ
उनकी कविता कविता के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी पग है, भाव
शिल्प की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से और पाठकों की रुचि की
उसमें अनुपम पर्यवेक्षण शक्ति है, जो सर्वत्र ही नवीन आयामों
करती है।

नाटकों मे शिल्प की दृष्टि से चाहें, भले ही कोई नवीनता
होती हो, किन्तु विचार की दृष्टि से वे निश्चय ही बेजोड़ हैं।
पर एक नवीन दृष्टिकोण से विचार करना, और ऐसे दृष्टिको
व्यक्त करना, जो अब तक की प्रचलित धारणाओं को आमूल प
दे, निश्चय ही बड़े साहस का काम है। उनकी कुशल अभिव्यञ्जन
इन विचारों की नवीनता के भार से बोझिल नहीं दीखती, वरन् उ
बन गयी है; परिणामतः विचार मौलिकता रखते हुए भी स्थूल दृ
पर 'नये गाँव मे बावला ऊंट' आने जैसे नहीं लगते। पाठक यह
तादात्म्य स्थापित कर लेता है और अपने को उनके अनु
लगता है।

समीक्षा का क्षेत्र उनकी बहु-व्यापिनी दृष्टि से समानुपातिक रूप से छूटा नहीं है। समालोचना जैसे दुस्तर कार्य को उन्होंने अपनी कुशल विचार शक्ति से सहज बना दिया है। प्राचीन और अधुनातन का, पूर्व और पश्चिम का, भारतीय और पाश्चात्य का, उन्होंने इस प्रकार सम्मिलन कर विवेचन किया है कि वह हस्तामलक सा प्रतीत होता है। समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ नामक शोध ग्रन्थ में जिस कुशलतापूर्वक उन्होंने सभी भाषाओं की समीक्षा-पद्धतियों का अध्ययन प्रस्तुत करके भारतीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है, वह अपने ढंग का सबसे अद्भुत और विशिष्ट कार्य है। इसकी वर्णन शैली सहज ही प्रबुद्ध पाठक को आश्चर्य चकित कर देती है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सबसे बड़ी चीज, जो हिन्दी साहित्य को दी है, वह है उनका शिल्प गत प्रयोग। उनकी शिल्पकला सर्वत्र बौद्धिक आयाम खोजने में प्रयत्नशील दिखायी देती है। यही कारण है कि उनकी लेखन शैली सर्वत्र परिमार्जित, परिष्कृत और सहज अभिव्यक्तिपूर्ण दिखायी देती है। अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी शैलियों का उन्होंने अपनी मौलिकता से परिमार्जन करके अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है।

यह परिमार्जन का ही कारण है कि उनकी रचनाओं की शैली इन शिल्पगत प्रयोगों के कारण भानमती का पिटारा अथवा दूसरों से ली गयी नहीं लगती। प्रबुद्ध चिन्तन ने उसके रूप को एक नवीन दिशा में संजा-सवार कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उसके रूप को सवार दिया है कि वह उनका अपना हो गया है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के साहित्य का निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी कथन की सरलता और सादगी। किसी प्रकार की अस्पष्टता, दुरूहता, क्लिष्ट शब्दों के भरण में दुराग्रहिता और उलझन नहीं दिखयी देती। यद्यपि उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग प्राप्त होता है किन्तु इस प्रकार कि वे अपने रूप को छोड़ कर हिन्दी के अनुवर्ती से लगते हैं—उनका तत्सम रूप जो किसी भी भाषा में अखरने वाला हो, समाप्त हो गया है। इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी भाषा अपने सहज गम्भीर गुण से हट गयी हो। प्रामा-

लिए भी और प्रबुद्ध पाठक तथा मनस्वी समीक्षकों के लिए भी। पाठक उसमें अपने मनोरंजन के साधारण खोज सकता है तो प्रबु और विचारशील आलोचक भाव मुक्ता भी चुन सकता है। उ की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वह स्थूल दृष्टि से देखने पर अ रत्नों के प्रकाश का आभास नहीं देता और उसमें पैठने पर बं उद्भावनाएं, विचार बल्लरियाँ और भाव-मुक्ताएं देता है कि से भी अधिक प्राप्त कर लेता है और काफी समय तक उ रहता है।

कविता के क्षेत्र में उनकी देन अद्वितीय है। उनकी कविता रोमांटिक प्रेम गीतों की तरह लय ताल पर नृत्य करती है और नवीन धारा नव-गीत की तरह भावना का प्राबल्य स्वीकार करतं बुद्धि और भावना का समानुपातिक महत्व स्वीकारते हुए वैयक्तिक अनुभूति का संकलन करती है। उनकी कविता की भाषा साधार हृदय स्पर्शी है, किन्तु विचारों की अर्थ ग्राहिता के कारण गम्भीर। उनकी कविता कविता के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी पग है, भाव शिल्प की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से और पाठकों की रुचि की पु उसमें अनुपम परिवेशण शक्ति है, जो सर्वत्र ही नवीन आयामों का करती है।

नाटकों में शिल्प की दृष्टि से चाहे, भले ही कोई नवीनता न होती हो, किन्तु विचार की दृष्टि से वे निश्चय ही बेजोड़ हैं। स पर एक नवीन दृष्टिकोण से विचार करना, और ऐसे दृष्टिकोण स्थापन करना, जो अब तक की प्रचलित धारणाओं को आमूल प है, निश्चय ही बड़े साहस का काम है। उनकी सुगम अभिव्यञ्जना ...ों की नवीनता के भार से बोझिल नहीं हो गई, वरन् उन ..., परिणामतः विचार बोझिलता रखते हुए भी स्थूल दृ ... से बचता छूट जाने जैसा नहीं लगते। पाठक सहज आत्मसात् कर लेता है और आज की उनके मधुर

समीक्षा का क्षेत्र उनकी बहु-व्यापिनी दृष्टि में समानुपातिक रूप से छूटा नहीं है। समालोचना जैसे दुस्तर कार्य को उन्होंने अपनी कुशल विचार शक्ति से सहज बना दिया है। प्राचीन और अधुनातन का, पूर्व और पश्चिम का, भारतीय और पाश्चात्य का, उन्होंने इस प्रकार सम्मिलन कर विवेचन किया है कि वह हस्तामलक सा प्रतीत होता है। समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ नामक शोध ग्रन्थ मे जिस कुशलतापूर्वक उन्होंने सभी भाषाओं की समीक्षा-पद्धतियों का अध्ययन प्रस्तुत करके भारतीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है, वह अपने ढंग का सबसे अद्भुत और विशिष्ट कार्य है। इसकी वर्णन शैली सहज ही प्रबुद्ध पाठक को आश्चर्य चकित कर देती है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन ने सबसे बड़ी चीज, जो हिन्दी साहित्य को दी है, वह है उनका शिल्प गत प्रयोग। उनकी शिल्पकला सर्वत्र बौद्धिक आयाम खोजने मे प्रयत्नशील दिखायी देती है। यही कारण है कि उनकी लेखन शैली सर्वत्र परिमार्जित, परिष्कृत और सहज अभिव्यक्तिपूर्ण दिखायी देती है। अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी शैलियों का उन्होंने अपनी मौलिकता से परिमार्जन करके अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है।

यह परिमार्जन का ही कारण है कि उनकी रचनाओं की शैली इन शिल्प-गत प्रयोगों के कारण भानमती का पिटारा अथवा दूसरों से ली गयी नही लगती। प्रबुद्ध चिन्तन ने उसके रूप को एक नवीन दिशा मे संजा-संवार कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उसके रूप को संवार दिया है कि वह उनका अपना हो गया है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन के साहित्य का निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी कथन की सरलता और सादगी। किसी प्रकार की अस्पष्टता, दुरूहता, क्लिष्ट शब्दों के भरण में दुराग्रहिता और उलझन नहीं दिखायी देती। यद्यपि उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग प्राप्त होता है किन्तु इस प्रकार कि वे अपने रूप को छोड़ कर हिन्दी के अनुवर्ती से लगते हैं—उनका तत्सम रूप जो किसी भी भाषा में अखरने वाला हो, समाप्त हो गया है। इस पर भी यह नही कहा जा सकता कि उनकी भाषा अपने सहज गम्भीर गुण से हट गयी हो। प्रासा-

किसी दूसरे देश या समय की मालूम पड़े। वैचारिक गम्भीरता ने उसके रूप को परिष्कृत कर दिया है; यही कारण है कि वह अपनी सुबोधता में भी पं० रामचन्द्र शुक्ल की तरह सहज गम्भीरता नहीं छोड़ती। उनका यह दृष्टि-कोण बहुत व्यापक विशाल और उदार है। इसीलिये उन्होंने सभी भाषा रूपों का आत्मसात् करके अपने ढंग से अपनी रचनाओं मे संवारा है और नवीन गरिमाओं से संयुक्त किया है।

हमारा विचार है कि डा० प्रतापनारायण टण्डन की इन उपलब्धियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनका साहित्य अपने विकास की प्रौढ और परिपक्वावस्था में पहुँच गया है। अपनी लघु आयु मे ही उनका साहित्य उनकी प्रतिभा को देदीप्यमान कर रहा है और उन्हे विशिष्टता प्रदान कर देता है। फिर भी उनका भविष्य का रूप और भी समुज्ज्वल होगा, जो हिन्दी साहित्य के गौरव का प्रतीक होगा, ऐसी सम्भावनाएँ स्पष्ट हो हैं।

यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, कि हिन्दी का सामान्य साहित्यिक स्तर अभी विश्व साहित्य के स्तर का नहीं है, अतः किसी भी साहित्यकार के मूल्यांकन में उसके चारों ओर फैली हुई परिस्थितियों की अवहेलना भी युक्ति संगत नही लगती। फिर भी डा० टण्डन जी की प्रतिभा को देखकर यह आशा अनायास ही हो जाती है कि यदि यह कर्मठ साहित्यकार अपनी साहित्य-साधना में अनवरत लगा रहा और हिन्दी साहित्य के कोष को इसी प्रकार समृद्ध करता रहा तो अब अपनी बुद्धि की परिपक्वता और प्रौढता के काल में जिस साहित्य का सर्जन करेगा वह निस्संदेह विश्व साहित्य के समृद्ध साहित्य की कोटि मे रखा जा सकेगा।

वैसे भी यह मानने में कोई अनौचित्य नही है, कि फ्रेंच, जर्मन, रशियन, अंग्रेजी, स्पेनी आदि भाषाओं के साहित्य से जो हिन्दी साहित्य पिछड़ा हुआ है—और दूसरी भाषाओं के साहित्य के पीछे जो सैकड़ों वर्ष पुरानी परम्पराएं हैं, जबकि अभी हिंदी साहित्य का विकास काल ही है, डा० प्रतापनारायण टण्डन का साहित्य अब भी तुलनात्मक दृष्टि से (परिश्रम और परम्परा दोनों को देखते हुए) किसी भी रूप में हेय नहीं बैठता। और इस आनुपातिक दृष्टि से हम आशावान ही हो उठते हैं।

वस्तुतः डा० प्रतापनारायण टण्डन का हिंदी साहित्य में प्र
अनोखी काल की प्रेरणा का कारण है, जिसने छठी शताब्दी में शं
प्रबुद्ध मीमांसक का प्रादुर्भाव करके साहित्य की स्थिर गति को
था; और इस सीमा में उसे काफी सफलता भी प्राप्त हुयी थी।
नारायण टण्डन का साहित्य किसी भी सीमा तक हमें नैराश्य का
ोने देता, वरन् अपने उन्नत भावी रूप का आभास देते हुए दृ
र्तमान स्वरूप के महत्व का उद्घोष करता है।